भारतीय संगीत में लय और ताल का रस सिद्धान्त से सम्बन्ध

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत]

शोध-प्रबन्ध

१९९८

निर्देशिका :

डा० गीता बनर्जी

भूतपूर्व अध्यक्षा

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्त्री :

श्रीमती ललित मालवीया

वरिष्ठ प्रवक्ता, आर्य कन्या डिग्री कालेज

इलाहाबाद

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डा0 मीता बनर्जी
एम0ए0, डी0 फिल0
पूर्व अध्यक्षा
संगीत एव प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती ललित मालवीया ने "भारतीय सगीत मे लय और ताल का रस सिद्धान्त से सम्बन्ध" विषय पर यह शोध प्रबन्ध मेरे निर्देशन मे डी0फिल उपाधि हेतु प्रस्तुत किया है ।

इस शोध प्रबन्ध की विषय-वस्तु पूणत मौलिक एव शोध-परक है । अत मै सस्तुति करती हूँ कि इस शोध प्रबन्ध को परीक्षणार्थ प्रेषित किया जाय ।

मीता बनर्जी
(डॉ0 मीता बनर्जी)
निर्देशिका

अनुक्रमणिका

अष्टम अध्याय

नवम अध्याय

****

भूमिका

भारतीय विद्वानो ने सगीत को हृदयगत भावो के उदघाट्न का सफल साधन मानते हुये उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय माना है । इस कला का भौतिक लक्ष्य, ससार से ऊपर उठकर एक ऐसी मधुमती अवस्था को प्राप्त करना है जिसमे भौतिक द्वन्दो की सत्ता ही समाप्त हो जाये । उपनिषदो मे आत्मा का निर्माण पच कोषो से बताया गया है .– अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय। प्रथम दो कोष तो जीव जन्तुओं मे उपलब्ध होते है शेष तीन मानव जाति की सहज विभूति है । इन पच कोषो की महत्ता सर्वाधिक है । परम् तत्व का साक्षात्कार इसी आनन्दमय कोष का कार्य है ।

सगीत इसी परमानन्द का माध्यम है। स्वर की व्याख्या "स्वतः रजयति इति स्वर." की गयी है । जिस तरह ईश्वर अनुभव गम्य है। उसी प्रकार स्वर भी अनुभव गम्य है अर्थात स्वर का प्रत्यक्ष दर्शन नही परन्तु अक्षर का प्रत्यक्ष दर्शन है । इस हेतु स्वर निरकार ब्रम्ह तथा अक्षर सगुण ब्रम्ह के समान हैं । चूँकि निर्गुण ब्रम्ह से ही सगुण ब्रम्ह की उत्पत्ति है । इस हेतु इस दृष्टि से भी स्वर का महत्व अक्षर से अधिक दृष्टव्य होता है । विदित है कि नाद से ही स्वर की उत्पत्ति होती है और नाद को ब्रम्ह स्वर रूप माना गया है। एक स्वर ज्ञानी सगीतज्ञ यही कहेगा कि स्वर सगीत स्वय सिद्ध है । सगीत बिना भाषा के ही अपने मे परिपूर्ण है । उसके विपरीत कोई भाषा ज्ञानी यह कह सकते है कि स्वर सगीत तो मूक है क्योंकि सगीत के द्वारा अपने मन के भावो को स्पष्ट करने के लिये भाषा का आश्रय लेना पडता है । भाषा ज्ञानी बता सकते है कि वीणा, सितार, सरोद, सारगी और वासुरी इत्यादि वाद्य मे भाषा का प्रत्यक्ष बहिष्कार है। फिर भी स्वर सगीत की पूर्णता मे कोई कमी नही आती है । तन्त्र तथा सुषिर वाद्य में जब एक श्रेष्ठ

वादक मेघ और शकरा राग (वीर रस) तथा जोगिया और तोडी (करूण रस) के रोगो की अवतारणा करता है तो राग अपनी प्रकृति तथा रस के अनुकूल ही अनुभूत होता है । नाटको मे जब कहीं युद्ध का दृश्य प्रस्तुत करना होता है तो युद्ध के वातावरण को प्रखर बनाने के लिये विशेष वीर रस प्रधान धुन बजायी जाती हे । जो विलावल राग पर आधारीत है । जिसकी स्वर लिपि निम्नलिखित है ।

सा ग सा ग । सा ग मग रेसा । नी रे नी रे । नी रे गरे सासा।

स्वर सगीत भाषा रहित होने पर भी अपने मे परिपूर्ण है । इसका प्रमाण स्वरूप भगवान कृष्ण की वशी है । जिसके वादन के माध्यम से जड चेतन सभी को वे मोहित कर लेते थे । भागवत मे जिस "महारास की विस्तृत विवेचना है ऐसे महारास को रचाने के लिये श्रीकृष्ण ने केवल स्वर सगीत का सहारा लिया था अर्थात वशी वादन के द्वारा ही सोलह हजार गोपियो को मध्य रात्रि मे यमुना के निकट बुलाकर "महारास" को पूर्ण किया था । यदि भाषा के माध्यम से सोलह हजार गोपियो को एक-एक कर बुलाया जाता तो शायद इस कार्य मे कई वर्ष लग जाते , परन्तु यह स्वर सगीत की महिमा थी जो शब्द भाषा रहित वशी की धुन बजायी गई और उस स्वर सगीत से प्रभावित होकर सोलह सहस्त्र गोपियाँ तत्काल एकत्र हो गयी और "महारास" का कार्य पूर्ण हुआ। इस तथ्य की सत्यता सगीत का रसास्वादक ही समझ पाता है । स्वरो और लयात्मक गतिभेदो का आकर्षण इतना प्रबल होता है कि वह कर्ण कोहरो मे प्रवेश कर अन्तश्चेतना को स्वाभाविक रूप से अलौकिक आनन्द प्रदान करने लगता है । और श्रोता बाह्य व्यापार भूलकर समाधिस्थ सा बना बैठा रहता है।

"ताल" संगीत का अभिन्न अग है तथा सगीत का अभिन्न अंग होने के साथ ही साथ आनन्दोपत्ति का सबल माध्यम भी है। समान तथा असमान लयकारी के रूप में संगीत मे सयुक्त होकर रसानन्द को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाता है ।

प्रथम अध्याय – "भारतीय सगीत मे लय और ताल का रस सिद्धान्त से सम्बन्ध " शोध शीर्षक के विषय प्रवेश के रूप मे सगीत के विषय मे विस्तृत वर्णन किया गया है । सगीत क्या है ? सगीत के प्रकार का वर्णन जिसमे मार्ग देशी सगीत का उल्लेख किया गया है। शास्त्रीय, उपशास्त्रीय और लोक सगीत का परिचय दिया गया है संगीत के प्रमुख तत्वो मे नाद,ध्वनि,श्रुति और स्वर राग आदि का वर्णन किया गया है तथा इनका सगीत मे महत्व का उल्लेख किया गया है ।

द्वितीय अध्याय – इस अध्याय मे लय का परिचय देते हुये लय के प्रकार मे विलम्बित मध्य और द्रुत लय के अतिरिक्त अन्य लय-कारियो के विषय मे बताया गया है । लयकारी किसे कहते है ? इसका वर्णन करने के पश्चात लयकारी के विभिन्न प्रकारो का उदाहरण सहित वर्णन किया गया है । तबले तथा पखावज की रचनाओ मे लयकारी युक्त उदाहरण दिये गये हैं । जिनमे लय, ताल और रस का सम्बन्ध स्पष्ट किया गया है ।

तृतीय अध्याय – ताल क्या ह ? नाट्यशास्त्र, सगीत रत्नाकर , सगीत समयसार, सगीत चूडामणि आदि ग्रन्थो मे ताल के वर्णन का उल्लेख किया गया है । ताल के प्रकार (मार्ग और देशी तालो) का उल्लेख करते हुये ताल के दस प्राणो का वर्णन किया गया है । वर्तमान तालो के प्रचलित,अप्रचलित ठेके और उनका प्रयोग का उल्लेख भी किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय – छन्दो का परिचय देते हुये इनके प्रकारो मे वैदिक छन्द, वर्णिक छन्द और मुक्तक छन्दो का उल्लेख किया गया है । छन्द का प्रयोग सगीत के सदर्भ में बताते हुये ताल एव छन्द का समबन्ध स्पष्ट करने के लिये वर्तमान ताल छन्दो का उदाहरण दिया गया है और संगीत मे छन्द के महत्व पर प्रकाश डालते हुये लोक सगीत मे छन्द के प्रयोग की उदाहरण सहित विस्तृत रूप रेखा प्रस्तुत की गयी है ।

पचम अध्याय – इस अध्याय मे रस के विषय मे विस्तृत वर्णन किया गया है। **नाट्यशास्त्र** में वर्णित रस की व्याख्या की गयी है । रस क्या है? इस विषय मे अभिनव गुप्त और विश्वनाथ के मत का उल्लेख किया गया

है । रस का अध्ययन विशेष रूप से सगीत के सदर्भ मे ही किया गया है । रस के कारको का उल्लेख नाट्यशास्त्र के आधार पर किया गया है। भाव–विभाव, अनुभाव सचारीभाव आदि रस के कारको का सगीत मे क्या महत्व है ? इसी चर्चा की गयी है ।

षष्टम अध्याय – सगीत मे रस उत्पन्न करने वाले कारको मे राग ध्यान, राग माला चित्र , राम की प्रकृति, राग का समय (समय-सारिणी-चक्र का उल्लेख) के साथ किया गया है । राग की प्रकृति, लय और ताल, राग का ऋतु के अनुसार गायन, स्थान या अवसर विशेष के अनुसार राग लय और ताल के प्रस्तुतिकरण का उल्लेख किया गया है। सगीत रत्नाकर मे वर्णित स्वर-काकु, राग–काकु, देश-काकु , क्षेत्र–काकु, यत्र–काकु का वर्णन किया गया है । श्रोताओ की रूचि के अनुसार राग , लय और ताल का प्रस्तुतिकरण, वाद्यो की ध्वनि भेद, लय , ताल और रस का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट करते हुये , राग, लय और ताल के अनुरूप काव्य योजना का औचित्य बताया गया है। अध्याय के अन्त मे कलाकार और श्रोता की व्यक्तिगत स्थिति का लय , ताल और रस की उत्पत्ति से सम्बन्ध स्पष्ट किया गया है ।

सप्तम अध्याय – सगीत मे लय , ताल और रस का सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिये गायन शैलियो का वर्णन उदाहरण सहित किया गया है। प्रबन्ध गान शैली और ध्रुवपद (बानी) गायन शैली के लिपिवद्ध कियात्मक पक्ष उपलब्ध न होने के कारण इसका उदाहरण नही दिया गया है। ख्याल ठुमरी, टप्पा, दादरा, तराना, लावनी, गजल, कव्वाली , भजन , गीत आदि का वर्णन उदाहरण सहित किया गया है । तबले और पखावज की रचनाओ जैसे-गणेश स्तुति, शकर स्तुति , दुर्गा स्तुति, चौसठ धा की कमाली चक्कर दार परन, वीर रस की परन, राम कथा से सम्बन्धित पखावज के बोलो की रचना और तबले के वर्णो से युक्त ताल के ठेके, उनके प्रकार, रेले, टुकड़े , सवाल जवाब आदि तथा पेशकारा, कायदा, उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया है । नृत्य मे प्रयुक्त होने वाली रचनाये जैसे कवित्त , कृष्ण लास्यपरन, तिस्त्र जाति की परन, मिश्र जाति

की परन , मृदगा यति, पिपीलिका यति, स्रोतोगता यति का उदाहरण जिसमे अदभुद् रस की अभिव्यक्ति स्पष्ट की गयी है ।

अष्टम अध्याय – "लोक सगीत" शब्द की उत्पत्ति और अर्थ का वर्णन करते हुए भरत मत का उल्लेख किया गया है । लोक-सगीत का आधार मनुष्य के भाव हैं इनके अनुकूल लय, गति और ताल का विनियोग ही लोक सगीत का प्राण है । लोक गीतो मे श्रृगार (वियोग) , वीर रस, रौद्र रस, हास्य रस, भयानक रस, भक्ति रस, वात्सल्य रस आदि की अभिव्यक्ति उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । लोक-सगीत मे लय , ताल और रस से युक्त रचनाओ सोहर, जनेऊ, मंगल गीत, विवाह गीत, कजली , सावन, चौमासा, घमार, फाग, डेढ ताल आदि वर्णित किये गये हैं जिनमे स्वराघात और ताल घात, भावो की मधुरता और तीव्रता के अनुसार प्रदर्शित किये गये है।

नवम् अध्याय – सगीत मे लय , ताल और रस का मनोविज्ञान से सम्बन्ध स्पष्ट किया गया है । क्योंकि कलाकार और श्रोता दोनो का ही मनोविज्ञान, अनुभूति मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है । मनोविज्ञान क्या है ? मनोभाव, सवेग , लय , ताल और रस से किस प्रकार प्रभावित होते हैं । इसका वर्णन किया गया है । सगीत-रत्नाकर मे कलाकार और श्रोता के लक्षणो का उल्लेख किया गया है । रागों का समयानुसार प्रस्तुतिकरण चित्त वृत्ति के तीन गुणो मे रसानुभूति का महत्व तथा कलाकर और श्रोता की मनः स्थिति का लय, ताल और रस से प्रभावित होने की स्थितियो, का वर्णन किया गया है ।

दशम् अध्याय – इस अध्याय मे सगीत मे लय, ताल और रस का संबध किस प्रकार स्पष्ट किया गया है इसका सारभूत विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

"भारतीय संगीत मे लय और ताल का रस सिद्धान्त से सम्बन्ध" पूर्णत स्पष्ट करने के लियें मैने उत्तर भारतीय सगीत पद्धति की

सभी विधाओं को ही माध्यम बनाया है क्योंकि शोध विषय की स्पष्ट व्याख्या करने के लिये उत्तर भारतीय सगीत पद्धति पूर्णतः पर्याप्त है ।

अन्त मे मै अपनी मार्ग-दर्शिका परम आदरणीय , पूज्यनीय भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, सगीत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद डॉ0 गीता बनर्जी एव परम श्रद्धेय आदरणीय गुरूवर भूतपूर्व विभागाध्यक्ष सगीत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय श्री राम आश्रय झा जी की हृदय से अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होने मुझे अपना अमूल्य समय देकर मेरे शोध कार्य को दिशा प्रदान करने की महती कृपा की है । इस शोध कार्य को पूर्ण करने मे अनेको गुणीजनो और पुस्तक प्रेमियो ने मेरी सहायता की है और मुझे प्रेरणा दी है । मै उन्हे भी नमन करते हुए धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

ललित मालवीया

(ललित मालवीया)

प्रथम अध्याय

संगीत क्या है ?

सामवेद के बाद सगीत के पाँचवे वेद की संज्ञा से विभूषित भरत कृत नाट्य शास्त्र मे 'सगीत'[1] शब्द का गायन, वादन और नृत्य के संदर्भ में उल्लेख हुआ हे या नही यह तथ्य पूर्णत स्पष्ट नही है क्योंकि काशी के चौखम्भा संस्करण के किसी भी अध्याय मे इस शब्द का उल्लेख नहीं है । काव्य माला बम्बई से प्रकाशित सस्करण में दो बार इस शब्द का प्रयोग हुआ है। नाट्य शास्त्र में 'सगीत' की उत्पत्ति का उल्लेख नाट्य वेद के प्रारम्भ के साथ बताया गया है। नाट्य शास्त्र के प्रथम अध्याय[2] मे वर्णित है कि ब्रम्हा ने ऋग्वेद से पाठ्य , सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर नाट्य वेद की रचना की।

अध्ययन से ज्ञात होता है कि मकरन्दकार नारद ने निश्चय ही प्रथमतः 'गीत वाद्य च नृत्य त्रयं संगीत मुच्यते" , सगीत की इस परिभाषा का उल्लेख किया है ।

अपने ग्रन्थ मे कुम्भ.[3] ने सगीत को परिभाषित करते हुये लिखा है कि "गीतं वाद्य तथा नृत्यं त्रयं संगीत संज्ञकम् । तद्विधा भिद्यते मार्ग देशी भेदेन तत्वत ।" गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों विधाओं का सम्मिलन 'संगीत'

---

1 नाट्य शास्त्र चौखम्भा सस्करण– भरतमुनि कृत 1/12

2. भरतमुनि कृत नाट्य शास्त्र – बम्बई संस्करण 36/22, 36/9

3 भरत कोष – राम कृष्ण कवि कृत – कुम्भ.

कहलाता है । किन्तु 'सगीत' का शाब्दिक अर्थ है सम्यक् प्रकार से गाया गया गीत। जिसमे गीत की प्रधानता है, वाद्य उसका अनुकारक और नृत्य उपरंजक है। वाद्य गीत का अनुसरण करता है और नृत्य वाद्य का। यदि इनमे से गीत को निकाल दिया जाय और वाद्य एवं नृत्य अवशिष्ट रह जाये तो इन दोनों की संज्ञा संगीत न होकर 'निगीत' रह जायेगी ।

सगीत और निगीत के वर्गीकरण का उल्लेख नाट्य शास्त्र में किया गया है। सगीत शब्द का पर्याय 'तौर्यत्रिक' शब्द के रूप मे उल्लिखित है। 'निगीत' शब्द का पर्याय 'वहिर्गीत' कहा गया है।

संगीत शास्त्रों मे जिसे 'गीत' कहा गया है वह "रन्जक स्वर सन्निवेश (स्वर गुम्फ)" है। स्वर की अपनी भाषा है। झूले में रोता हुआ बच्चा भाषा नहीं समझता। परन्तु गीत रूपी अमृत को पीकर प्रसन्न हो जाता है । यह गीत रूपी अमृत रन्जक स्वर योजना मात्र है । गीत 'संगीत' का प्रमुख अंश है। वाद्य और नृत्य उसके सहायक हैं परन्तु गीत सम्पूर्ण 'सगीत' नहीं है ।

वीणा या वेणु में प्रयुक्त रन्जक स्वर सन्न्विेश भी गीत कहलाता है । इसीलिये भगवान वेद व्यास ने भगवान कृष्ण के इस वेणु वादन को वेणु गीत कहा है जिसने गोपियों को ही नहीं पशुओं और पक्षियों तक को मोहत किया।

स्वर, भाषा, ताल और मार्ग का आश्रय लेकर 'गीत' मानव की भावना को व्यक्त करता है । 'वादन' गीत का सहायक होता है और नृत्य उस भावना को मूर्त कर देता है । इसलिये गीत, वाद्य और नृत्य मिलकर 'संगीत' कहलाते हैं।

ऋग्वेद के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ब्रम्ह एक है, अखण्ड है और अद्वैत है । ब्रम्ह की परिकल्पना शब्द ब्रम्ह के रूप में की गयी है। इस तथ्य

के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह अखिल ब्रम्हाण्ड नाद या ध्वनि मय है और साथ ही ध्वनि नाद के आधीन है क्योंकि इस ससार में प्रायः सभी व्यवहारिक क्रियाये नाद या ध्वनि के माध्यम से ही सम्पन्न होती है। संगीत दर्पण के प्रथम अध्याय में भी इसी प्रकार का वर्णन किया गया है ।

सगीत का मूल भूत आधार ध्वनि या नाद हे । वैज्ञानिक आधार भी इसी बात की पुष्टि करते हैं कि संगीत की अवतारणा ध्वनि आन्दोलनों का परिणाम है। इसकी प्रक्रिया स्पष्ट करते हुये विज्ञान यह उल्लेख करता है कि दो वस्तुओं की टक्कर या रगड़ से पास की वायु आन्दोलित होती है तथा जल तरंग की ध्वनि की भाँति वायु वातावरण में कम्पन उत्पन्न करती है । जिसके कारण ध्वनि का अनुभव होता है । सगीत में इसी ध्वनि के सूक्ष्म प्रयोगों के विभिन्न सूक्ष्म प्रभावो का अनुभव और अध्ययन किया जाता है ।

ध्वनि या नाद दो प्रकार का होता है । प्रथम – जो कि संगीत के लिये उपयोगी है। द्वितीय – जो संगीत के लिये उपयोगी नहीं है अर्थात जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के कोलाहल को सम्मिलित किया जा सकता है । दोनों प्रकार की नादो की उत्पत्ति में अन्तर होने का मुख्य आधार ध्वनि आन्दोलनो का कम्पन अनियमित होना या नियमित होना है ।

यदि ध्वनि आन्दोलन का कम्पन नियमित है तो उससे उत्पन्न ध्वनि या नाद संगीतोपयोगी होगा और यदि ध्वनि आन्दोलनो का कम्पन अनियमित होता है तो उससे उत्पन्न नाद या ध्वनि संगीत के लिये उपयोगी नहीं होगी ।

नाट्य शास्त्र में संगीत दो प्रकार का कहा गया है। प्रथम मार्ग संगीत और द्वितीय देशी संगीत। संगीत के दो प्रकारों का उल्लेख संगीत रत्नाकर, संगीत-समयसार और संगीत-चूड़ामणि ग्रन्थों मे भी किया गया है।

मार्ग संगीत में शास्त्रीय नियमों का कटिबद्धता से पालन किया जाता है तथा इसके अन्तर्गत विशेष प्रकार की शिक्षा पद्धति, गहन अभ्यास, परिपक्वता और कला सौन्दर्य आदि मूल तत्व आते हैं ।

देशी सगीत में लोकरूचि ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। शास्त्रीय नियमों के पालन की कठोरता इस प्रकार के संगीत पर लागू नहीं होती । इस संगीत की विषय वस्तु सहज सस्कारों से प्रभावित होती है और प्रस्तुतीकरण अत्यन्त स्वच्छन्दतापूर्ण लय, ताल बद्ध और कला सौन्दर्य से परिपूर्ण होता है। ध्रुवपद, ख्याल आदि शास्त्रीय संगीत के कठोर नियमों के अन्तर्गत प्रस्तुत होते हे उपशास्त्रीय सगीत में ठुमरी, तराना , टप्पा , भजन, गीत, कव्वाली आदि आते हैं।

हृदय गत भावों को प्रकट करने के सफल साधन के रूप में 'संगीत' की सत्ता सर्वत्र मान्य है । प्राणी मात्र का रोदन, चीत्कार हास्य इत्यादि क्रियाओं से जनित ध्वनियाँ शाश्वत रही हैं । अनेकों मानवीय भावों को प्रकट करने वाली ये ध्वनियाँ ही सगीत को भावाभिव्यक्ति का सफल माध्यम बना सकी। इसीलिये संगीत रसों के अभिव्यक्त करने में अधिक समर्थ हो सका । लोक संगीत में, साहित्य में उल्लिखित सभी रसों का समावेश अनुभव होता है।

श्री अर्नेस्ट हंट ने अपनी पुस्तक 'स्पिरिट आफ म्युजिक' में लिखा है, – "संगीत केवल सामान्य ध्वनि नही अपितु यह सूक्ष्म अर्न्तवृत्तियों के उद्घाटन का सबल साधन है।"

इसी प्रकार के विचार Ibid. ने अपनी पुस्तक में व्यक्त किये है " Music is the mediator between the spiritual and sensual life".

आचार्य अभिनव गुप्त ने अभिनव भारती में उल्लेख किया है कि मृग, कुत्ते इत्यादि अन्य प्राणियो के नाद को सुनकर भी उनके हृदय में स्थित भय, रोष, शोक इत्यादि का प्रतिभाष हो जाता है। फलत. नाद से चित्त वृत्ति का अनुमान सिद्ध है ।

भाव अभिव्यक्ति का सफल माध्यम होने के साथ ही आनन्द की अविरल धारा प्रवाहित करने की क्षमता सगीत मे ही है । अन्य साधनों से प्राप्त सुखों के पहिले या बाद में दुख की सम्भावना होती है । किन्तु इस दुख पूर्ण संसार मे सगीत से प्राप्त आनन्द के पूर्व या उपरान्त इस प्रकार के दुख की कोई सम्भावना नही है ।

भक्ति मार्ग में तो संगीत का महत्व और भी अधिक माना गया है । संगीत मय भगवत भजन करने में मन संगीत की मनोहर शक्ति द्वारा शीघ्र ही ईश्वर के नाम रूप में लीन हो जाता है । इस तथ्य को प्राणी मात्र नकार नहीं सकता ।

संगीत का प्रयोजन संसारिक दुखों चिन्ताओं से दबे, थके मानव को स्वर, लय और ताल से युक्त संगीत के द्वारा विभिन्न रसों की अनुभूति कराकर अलौकित सुख की प्राप्ति कराना है । जिसमें यह गुण हो, उसे ही भलि–भाँति गाया हुआ 'संगीत' कहना चाहिये अन्यथा वह कोलाहल मात्र है भले ही वह कोई भी शैली या प्रकार का हो ।

संगीत के कारक –

वेद के अध्ययन से यह सकेत मिलता है कि संगीत की उत्पत्ति 'ओम' शब्द से हुयी है । 'ओम' शब्द एकाक्षर होकर भी 'अ' 'उ' 'म' इन अक्षरों से बना है । इन तीनों अक्षरो के सहयोग से इसकी ध्वनि एक ही अक्षर के समान

होती है । किन्तु इस अक्षर में तीन गुणो की तीन शक्तियाँ निहित है। इसी कारण हृस्व, दीर्घ प्लुत तीनों स्वर की सहायता बिना उच्चारण नहीं किया जा सकता। शब्द और स्वर दोनों की उत्पत्ति 'ओम' के गर्भ से हुयी है।

प्रथमत. स्वर या ध्वनि का जन्म हुआ और उसके बाद ही शब्द निकले 'ओम' शब्द में लय, ताल और स्वर सभी का सन्निवेश है। वस्तु स्थिति को अधिक स्पष्ट करने के लिये ध्वनि, नाद, श्रुति, स्वर, राग, लय, ताल और छन्द आदि सगीत के प्रमुख तत्वों का विवेचन अत्यन्त आवश्यक है।

(1) नाद

नाद संगीत शास्त्र का प्राण पुरूष है साथ ही सम्पूर्ण भुवन ही नादाधिष्ठित है। पुद्गल का गुण होने के कारण सर्वत्र व्याप्त होता है। इसीलिये 'सगीत' मे नाद की सविशेष उपयोगिता को स्वीकार किया गया है । यह 'नाद' शब्द सस्कृत व्याकरण के 'नद' धातु से निष्पन्न होता है। इसका मूल अर्थ 'अव्यक्त शब्द' है । अव्यक्त और व्यक्त ध्वनि के दो स्वरूप है।

अव्यक्त नाद वह माना गया है जिसमें मानव कण्ठ से उच्चारित स्वरों और व्यजनों की अभिव्यक्ति नहीं है जो ध्वनि मात्र है । इस वर्गणा में वीणा, वेणु, मृंदग, मुरज आदि की अवर्णात्मक ध्वनि का ग्रहण किया जाता है। जब इस ध्वनि में अ, क, च, ट, त, प आदि वर्णों का स्पष्ट उच्चारण सम्मिलित हो जाता है तब वह व्यक्त ध्वनि कहलाती हैं । इस नाद के विषय में विभिन्न विद्वानो, शास्त्रकारो एवं विषय विशेष के निरूक्तिकारों ने अनेकधा प्रतिपादन किया है।

प्राकृत, संस्कृत और हिन्दी कोषकार ने ऊँची दहाड़ चिल्लाहट, चीख, गर्जन सिंहनाद, मेघ ध्वनि, एवं जलप्रपात से उत्पन्न शब्द 'नाद' के अर्थ में

दिये गये है। वर्षाकाल में मयूर को घन ध्वनि पर नृत्यकारी पक्षी कहा गया है।

वैदिक वाड मय में शब्द ब्रम्ह को 'नद' कहा गया है । 'नद' से उत्पन्न वाक् (ध्वनि, नाद) को 'नाद' कहा जाता है । 'नाद' की उत्पत्ति का वर्णन करने हुये शारदातिलक मे कहा गया है कि सत्, चित् आनन्द विभूतियों से सम्पन्न प्रजापति से सर्वप्रथम शक्ति का प्रायुर्भाव होता है। वह शक्ति नाद को उत्पन्न करती है और नाद से बिन्दु की उत्पत्ति होती है । जैन साहित्य में नाद कला का आकार आधे चन्द्रमा के समान है, वह सफेद रंगवाली है, बिन्दु काले रंग वाला हैं । महाभारत में भी स्वयम्भू द्वारा नित्य वाक् की उत्पत्ति का अभिधान किया गया है जिसका आदि रूप वेदात्मक (ज्ञानात्मक) है और जो संसार की सम्पूर्ण प्रवृत्तियों में ओतप्रोत है ।

मनुष्य शरीर में नाभिस्थान को नाभिसरोवर ब्रम्हग्रन्थि , नाभिहृद आदि अनेक नामों से अभिहित किया गया है । इस नाभिसरोवर में दिव्य कमल उत्पन्न होता है उस पर ब्रम्हा का आसन परिकल्पित किया गया है ।ब्रम्हा का स्वरूप चतुर्मुख है। वही सृष्टि में सर्वप्रथम छन्दोगायी है । वही श्रुति अथवा श्रुत का उदगान करते है । यह श्रुत शब्दावच्छिन्न है अतएव अनादि और नित्य है।

संगीत–रत्नाकर में नाद की उत्पत्ति ब्रम्हग्रन्थि से उत्पन्न मानी गयी है । भगवान शंकर नादतनु हैं, नाद के प्रवक्ता हैं । 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' में वर्णन है कि 'नाभि में एक कूर्म चक्र है, उसके कन्द पर पदमिनी है, उसमें अग्नि, प्राण की स्थिति मेंहै उसमें (ऋषभ, गान्धार, षडज, मध्यम, धैवत पंचम) हैं। यह वृषभ तीन प्रकार से बँधा हुआ है – (हृस्व, दीर्घ, प्लुत उच्चारण से अथवा मन्द्र, मध्य, तार स्वरो से) यह शब्द करता है ।

संगीत-समय-सार के द्वितीय अध्याय में 'नाद' शब्द की व्याख्या करते हुये उल्लेख किया गया है कि 'न कार' का अर्थ प्राण और 'दकार' का अर्थ अग्नि

वैष्णव सगीत शास्त्र के भक्ति-रत्नाकर मे उल्लेख किया गया है कि नाद की उत्पत्ति अग्नि वायु से होती है। आकाश, अग्नि, और वायु से भी नाद की उत्पत्ति होती है । 'नाद' की उत्पत्ति का स्थान नाभि है । नाभि उर्ध्वस्थान मे विचरण कर अन्त में वह मुख से व्यक्त होता है।[1]

नाद के प्रकारो का उल्लेख करते हुये भक्ति रत्नाकर में यह तीन प्रकार का कहा गया है – (1) प्राणी जगत (2) अप्राणी जगत अर्थात जड़ पदार्थ से भी उत्पन्न होता है । (3) उभयजगत अर्थात प्राणी व अप्राणी के योग से यानि वंशी से उत्पन्न नाद है । मुख और नासिका के स्पर्श से विस्तृत वायु के योग से ध्वनि की सृष्टि होती है ।[2]

मतग मुनि ने नाद पॉच प्रकार का माना है (1) अति सूक्ष्म (2) सूक्ष्म (3) पुष्ट (4) अपुष्ट (5) कृत्रिम ।[3]

अति सूक्ष्म नाद नाभि में सूक्ष्म नाद हृदय में प्रकाशित होता है । पुष्ट नाद कण्ठ में अभिव्यक्त होता है अपुष्ट नाद सिर में प्रकाशित होता है। स्थान भेद के कारण कृत्रिमनाद मुख प्रदेश में भाषित होता है ।

---

1 भक्तिरत्नाकर श्लोक संख्या – 2511 – 13, 2808–22

2 (2514– श्लोक संख्या)भक्ति रत्नाकर-2517

3. संगीत समयसार 22–24 द्वितीय अध्याय से उदधृत

व्यवहार में नाद तीन प्रकार का होता है मन्द्र , मध्य और तार । हृदय में मन्द्र, कण्ठ मे मध्य और मस्तक में तार का स्थान है ।

मध्य और मध्य से द्विगुण उच्च मध्य और मध्य से द्विगुण उच्च तार, ये तीन प्रकार हैं।[1]

अग्नि प्राण की स्थिति है उससे वायु की उत्पत्ति होती है । उस अग्नि और वायु के सयोग से सिद्ध ध्वनि उत्पन्न होती है। उस सिद्ध ध्वनि के योग से नाद की उत्पत्ति होती है ।[2] परब्रम्ह, पराशक्ति और ओंकार भी नादसंभव है। इसीलिये विशुद्ध नाद की उपासना पराशक्ति, परब्रम्ह त्रिदेव और ओंकार की उपासना है ।

नाद के इन व्याख्याकारों का प्रतिपाद्य आशय यह है कि नाद की उपासना ब्रम्ह की उपासना है क्योंकि वह तन्मयता उत्पन्न करते हुये आत्मस्थ होने की वृत्ति को लक्ष्य करता है ।

ॐ अथवा ओंकार को नाद ब्रम्ह का सर्वोच्च उद्‌गान माना गया है । भारतीय वाङ्मय में यह विलक्षण शब्द है। इसे परमात्मा का वाचक पद माना गया है । नादानुसन्धान करते–करते अन्त मे ओम नाद की सिद्धि होती है।

पाणिनीय शिक्षा में नादोत्पत्ति का क्रम निर्देश करते हुये बताया गया है कि आत्मा, बुद्धि से संयोग करता हे, मन, अर्थों के साथ युक्त होता है। वह व्यापारित मन, शरीर स्थित अग्नि पर आघात करता है। अग्नि, वायु को प्रेरणा देता है।

---

1 भक्ति रत्नाकर – 25 18–19

2 संगीत निषत्सारोद्धार 1/25–267

ऋग्वेद मे उल्लिखित एक मंत्र "चत्वारि श्रृगा "[1] के अनेक अर्थ विद्वानों ने किये है । संगीत की दृष्टि से इसका अर्थ कुछ इस प्रकार होगा – इस संगीत रूप वृषभ के चार श्रृंग हैं (स्वर, गीत, वाद्य और ताल अथवा तत, घन, सुषिर, अबनद्ध)। तीन चरण हैं – गीत, नृत्य और वाद्य)। दो सिर हैं ।- (स्रोत, नेत्र महोत्सव, रूप, अथवा वाद्यादि, उपकरण और गात्रवीणा) सात हाथ हैं ।-
इस प्रकार मन्द्र इत्यादि स्थान से आरोही क्रम के अनुसार जो नाद स्पष्ट तथा स्फुरित होता है वही ध्वनि कहा जाता है । गीत विद्या विशारदों ने चतुर्विध ध्वनि खाहुल, वोम्बक, नाराट और मिश्रक बतायी है ।

संगीत-समय-सार में इन ध्वनियों की विशेषता का उल्लेख करते हुये कहा गया है कि 'खाहुल' ध्वनि गीतज्ञों को, उसे समझना चाहिये जो प्रायः मन्द्र स्थान का स्पर्श करने वाली माधुर्य गुण युक्त हो ।[2]

वह ध्वनि 'बोम्बक' है जो एरण्डकाण्ड (अ ऽ इ ` ए) की शाखा की क्षणिकांश, विवर्जित (गूदे से हीन) और निस्सार, खोखली, झिरझिरी, तथा प्रायः मध्य स्थानीय है ।

ध्वनिभेद के मर्मज्ञों में प्रायः तार स्थान का स्पर्श करने वाली और माधुर्य गुण वर्जित ध्वनि को 'नराट' की संज्ञा दी है ।

जिस ध्वनि में उपरोक्त सभी ध्वनियों का मिश्रण हो वह 'मिश्रक' के भेद हैयथानाराट, खाहुल, मिश्रक, बोम्बक, खाहुल मिश्रक और नाराट, बोम्बक मिश्रक।

---

1. चत्वारि शृंगास्त्रो अस्य पादाः, द्वेशीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।

   त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति, महो देवो मत्यनि, आविवेश।। –4/58/3 ऋग्वेद

2 संगीत समय सार–2 27–30–द्वितीय अध्याय

नाद शब्द की व्याख्या करते हुये संगीत मकरन्द में कहा गया है कि नकार आनन्द देने वाला प्राण है । नकार को प्राण और दकार की अग्नि कहते है। इस प्रकार प्राण और अग्नि के संयोग से उत्पन्न हुआ'नाद'कहलाता है।

कुम्भाचार्य ने अपना मत व्यक्त करते हुये लिखा है कि 'नद' धातु से 'नाद' शब्द की उत्पत्ति होती है और यह पाँच प्रकार की ध्वनियों में प्रकट होता है ।[1]

मतंग मुनि नाद को ब्रम्ह की संज्ञा देते हुये कहते हैं कि नाद जनार्दन कहलाता है । पराशक्ति का रूप है नाद, इसी लिये यह ब्रम्ह की ग्रन्थि कहलाता हैं। इसके मध्य में स्थित जो प्राण है वह अग्नि के द्वारा उत्पन्न होता है। अग्नि और वायु के संयोग से नाद उत्पन्न होता है और नाद से बिन्दु उत्पन्न होता है। इसलिये नाद से सम्पूर्ण वाङ्मयशास्त्र उत्पन्न होता है।

ऋग्वेद में उल्लिखित ध्वनि की उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, कम्पित, दीप्त इत्यादि ध्वनियो के प्रकारों का उल्लेख है। प्रतिदिन के व्यवहार में हम उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, कंपित, दीप्त आदि ध्वनियों का प्रयोग सामान्य अवस्था में करते हैं । किन्तु इन ध्वनियों के सामान्य प्रयोग और संगीत विषयक प्रयोग के विषय में अभिनव गुप्त ने लिखा है कि "संगीत के स्वरों के अनुरणनमय-रक्ति प्रधानतत्व को छोडकर उच्च, नीच एवं मध्यम स्थान का स्पर्शत्व ही संवाद बोलने के लियेउपयोगीहै। यदि पाठ्य मे भी प्रधानता से स्वरगत रंजन का अवलंबन किया जाये, तो वह पाठ न रहकर गान हो जायेगा।

---

1. रामकृष्ण कवि-भरत कोष पी.

नाद के दो मुख्य भेद है – अनाहत तथा आहत । अनाहत नाद अव्यक्त होने के कारण केवल योगियो की साधना का विषय है। वेदों में इसे सच्चिदानन्द , ब्रम्ह का स्वरूप माना है। आहतनाद जो कि व्यक्त होता है और वही संगीतकेमूल कारको में से एक है। आहत नाद की उत्पत्ति भारतीय विद्वानोंनेवायु तथा अग्नि के योग से मानी है। दमोदर पडित कृत संगीत दर्पण के प्रथम अध्याय में वर्णित किया गया है:–

नकारे प्राणनं मानं दकारमनलं विदु: ।

जात· प्राणाग्नि संयोगत्ते न नादोऽभिधीयते।।[1]

ध्वनि या नाद तरंगमय है और आकाश नामक तत्व उसका वाहक है। मतग ने कहा है – ध्वनि को परम कारण जानना चाहिये । वही सबका कारण है स्थावर और जंगम जगत को ध्वनि ने अक्रांत कर रखा है।

वर्तमान समय में वैज्ञानिकों ने नादोत्पत्ति तथा वातावरण एवं मानव पर उसके प्रभाव का भी अध्ययन किया है।

वेज्ञानिक दृष्टि से जब कोई दो वस्तुयें आपस में टकराती है अथवा रगड़ खाती है तो उनसे नाद की उत्पत्ति होती है। इस उत्पन्न हुये नाद के तीन मुख्य लक्षण दिखाई देतो हैं । प्रथम लक्षण है–ध्वनि या नाद की तारता द्वितीय है–ध्वनि या नाद की तीव्रता और तृतीय है–ध्वनि का गुण ।

ध्वनि या नाद की तारता से तात्पर्य है कि उत्पन्न ध्वनि या नाद कितना ऊँचा या नीचा है । ध्वनि या नाद की तीव्रता से यह ज्ञात होता है कि अमुक ध्वनि या नाद को कितनी दूर तक के क्षेत्र मे सुना जा सका ।

जिस ध्वनि में ठहराव एवं मधुरता हो तथा जो ध्वनि श्रवणेन्द्रिय को प्रिय लगे उसे सगीतोपयोगी नाद कहा जाता है ।

---

1 संगीत दर्पण 1/14

संगीत रत्नाकर के स्वर अध्याय में उल्लेख किया गया है ·1

गीत नादात्मक वाद्यं नादव्यवत्या प्रशस्यते।

तदद्धया नुगल नृत नादाधीनम तस्त्रयम।।

कल्लिनाथ — ने अपनी टीका में उदधृत किया है कि आहतनाद की साधना से अनाहत नाद की प्राप्ति उसी प्रकार हो जाती है जिस प्रकार मणि की प्रभा से आकृष्ट व्यक्ति मणि को स्वतः प्राप्त कर लेता है अर्थात अनाहत नाद यदि मणि है तो आहत उसकी प्रभा है ।

नाद या ध्वनि संगीत का मूल आधार होने के साथ ही साथ मनुष्य के भावों और रसों की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम है इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसी तथ्य का उल्लेख करते हुये अभिनव गुप्त ने अभिनव भारती में लिखा है कि "चेतना के प्रथम स्पन्द से प्राण वायु की उल्लसना के फलस्वरूप आकार इत्यादि वर्णो के रूप विशेष से हीन, जो वाक उत्पन्न होती है,। वह नाद रूप रहकर हर्ष, शोक इत्यादि चितवृत्तियो को अथवा निषेध इत्यादि अभिप्राय को इस कार्य के वोधक चिन्हत्व के अथवा तादात्म के कारण श्रुति (ध्वनि तरंग) के अंत एवं आदि से युक्त कर देती है।"

नाद के द्वारा भावों का प्रकाशन होने पर, अभिव्यक्त होने के कारण, वाक्यार्थ '' का वोध नहीं होता । इसी लिये भाषा का आविष्कार हुआ। परन्तु भाषा भी भावों के अनुसार वक्ता की ध्वनि, भावानुसारी उतार-चढ़ाव में, नाद का आश्रय लेने के लिये विवश रही ।

1· संगीत रत्नाकर प्रथम अध्याय 1/1

यदि नाटक के संवादों को भावानुसारी "काकु" (ध्वनि के उतार-चढ़ाव) से रहित करके पढा जाय तो कवि के अर्थ का बोध नहीं होगा। इसलिये ध्वनि की उच्चता नीचता इत्यादि की सहायता संगीतज्ञ लेते हैं।

2- श्रुति और स्वर -

संगीत दर्पणकार श्री दमोदर पंडित के अनुसार श्रुति उत्पन्न होने के बाद जो नाद तुरन्त निकलता है और प्रतिध्वनित होकर मधुर और रंजक हो जाता है उसे स्वर कहते है । और प्रतिध्वनित होकर जब नाद और ध्वनि के उच्चारण में बहुत अधिक अन्तर दृष्टिगत हो तभी वह ध्वनि, श्रुति कहलाती है । श्रुति से स्वर की उत्पत्ति होती है । स्वर की शुद्ध एवं विकृत अवस्थाओं का भेद श्रुतियों के माध्यम से ही ज्ञात किया जाता है। श्रुतियाँ ही रंजकत्वगुण को प्राप्त करके स्वर हो जाती है । इसीलिये सभी स्वर अपने आप मे ही रन्जक होते हैं।

पाणिनी के अनुसार मानव हृदय के भीतर उर्ध्व नाड़ी में 22 तिरछी नाडियाँ मानी जाती है जिन पर वायु का आधात होने पर 22 प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न होती है। इसी प्रकार कर्ण और सिर में क्रमशः बाईस - बाईस ध्वनियाँ उत्पन्न हाती है। मानव शरीर इन तीन अंगों में उत्पन्न, इन ध्वनि समूहों को मन्द्र या सूक्ष्म, मन्द्र या पुष्ट और तार या अपुष्ट की सज्ञा दी गयी है।

संगीत-समयसार में स्वर शब्द विश्लेषण करते हुये उल्लिखित किया गया है कि स्व शब्द पूर्वक दीप्त्यर्थक 'राजू' धातु से स्वर शब्द निष्पन्न होता है। जो स्वयं राजित होता हे वह स्वर कहा गया है । शोभित होने वाले नाद, स्वर हैं और राग जनक ध्वनि भी स्वर है ।[1]

---

1. 2/37 संगीत समयसार

कोहल ने स्वर के विषय में कहा हे कि 'अपनी इच्छा से नाभितल में उठने वाली वायु का नाडी, भित्ति और आकाश मे निर्धारण होता है, तब, उत्पन्न होने वाली रजक ध्वनि 'स्वर' है ।

स्वर एक, अनेक, व्यापक और नित्य है । निष्कल रूप से एक ही स्वर है। षडज इत्यादि रूप से अनेक हैं।

जाति और भाषा इत्यादि के संयोग से स्वर अनन्त कहा गया है। नादों से युक्त ताल द्वारा परिभाषित स्वर को कृति मे और रसों मे नियोजित करना चाहिये। स्वर नित्य अविनाशी व्यापक और सर्वगत है। उर्ध्वनाडी के प्रयत्न द्वारा समस्त भित्तियों ; के निंघट्टन (रगड) से सिर तक व्यक्त ध्वनि, स्वर है और व्यापक है।[1]

स्वर की व्याख्या करते हुये आचार्य सोम ने लिखा है कि जो सुनने वाले के चित को अपने आप प्रसन्न कर देता है वह स्वर कहलाता है ।[2]

संगीत समय सार में नासा, कण्ठ, उर, तालु, जिह्वा और दन्त इन छः स्थानों से उत्पन्न होने के कारण षडज की संज्ञा दी गयी है । षडज की उत्पत्ति नाभि से उठा हुआ और कण्ठ सिर मे समाहत वायु, वृषभ के समान नाद करने के कारण ऋषभ कहलाता है ।

नाभि मे स्थित तथा कण्ठ एव सिर मे समाहत गन्धर्वों के सुख का कारण होने से गधार कहलाता है ।

नाभि से उत्पन्न और हृदय से समाहत वायु, मध्य स्थान से उत्पन्न होने के कारण मध्यम कहलाता है ।

---

1. 2/40 संगीत समयसार

2. सोम – भरत कोष राम कृष्ण कवि

नाभि मे स्थित वायु, कण्ठ, ताल,सिर का स्पर्श होने के कारण जिस स्वर से सब स्वरों की समाप्ति हो जाती है वह निषाद कहा जाता है।

पार्श्व देवनेअपनामत व्यक्त करते हुये कहा हैं कि डमरू, निस्साण इत्यादि के वादन में 'ढण ढण' जैसे वर्णों की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। क्या इन ध्वनियों में स्वरत्व नही है? उत्तर देते हुये पार्श्वदेव कहते है कि 'नहीं' क्योंकि स्वर का लक्षण है कि राग जनक ध्वनि स्वर होती है । स्वर नामक ध्वनि राग का कारण होती हैं। इसलिये स, रे, ग, म, प, ध, नि, ही कारण में कार्य के लक्षण के कारण स्वर है।

नाट्य शास्त्र के अट्ठाइसवें अध्याय में सात स्वरों का उल्लेख करते हुये कहा गया कि षड्ज छ स्वरों का जनक है ।[1]

जिस तरह गौओं के समूह में सॉड़ दूर से पहचाना जाता है । उसी प्रकार प्रकार उत्साह, विस्मय, क्रोध का व्यंजक ऋषभ अपने पौरूष के कारण स्वर समूह मे पृथक पहचाना जाता है। इसीलिये ऋषभ वृषभवत होने के कारण 'ऋषभ'हैं।[2]

करूणा बोधक गंधार मे करूणा का बोध कराने के लिये मानों "वाक्" का निवास है इसीलिये उसकी सज्ञा गान्धार (वाणी की धारणा करने वाला) है ।

मध्यम सप्तक का केन्द्र बिन्दु होने के कारण 'ध्रुव' है अतः'मध्यम' कहलाता है ।

ऋषभ धैवत में, गान्धार निषाद में, और षड़ज पंचम में प्राप्त स्वाभाविक संवादात्मक " पंच " अन्तराल के नापने का साधन होने के कारण (पंच+म) पञ्चम स्वर 'पञ्चम' कहलाता है ।

---

1. नाट्य शास्त्र – 28 अध्याय / 23 श्लोक

2 नाट्य शास्त्र स्वर अध्याय – पी.23 आचार्य्र बृहस्पति

सूक्ष्म उपध्वनियों की शक्ति, एक विशेष प्रकार की ध्वनि "धैवत" है।

जिसके पश्वात अन्य कोई स्वर नही मिलता अर्थात जिस पर स्वरों का 'निषीदन' (समापन) होता है वह 'निषाद' है।

संगीत रत्नाकर में स्वर के विषय मे कहा गया है मधुर ध्वनियॉ जो बराबर स्थिर रहे तथा जिनकी झनकार मन को लुभाने वाली हो स्वर कहलाती है ।[1] मोर, गाय, बकरी, कौआ,कोयल, घोडा और हाथी इन जन्तुओं की कण्ठ ध्वनियों से क्रमशः षडज, रिषभ, गधार, मध्यम, पचम, धैवत, निषाद स्वरों की उत्पत्ति हुयी है।[2] इसी प्रकार का मत विद्वान दामोदर पंडित ने भी सात स्वरों के आर्विभाव के विषय में दिया है।

संगीत दर्पण मे कहा गया है[3] कि ध्वनि के उतार–चढाव में निश्चित अवधान ही सगीत मे स्वरों को जन्म देता है । ध्वनि मे निरन्तर भनक या गुनगुनाहट से कोई ध्वनि किसी ऊँचाई पर पहुँच कर वहॉ स्थापित रहे उसे संगीत में "स्वर" कहते हैं। इसके विपरीत, जब कम्पन अनियमित तथा मिश्रित हो तो उस ध्वनि को कोलाहल कहते हे। वस्तुतः नियमित आन्दोलन संख्या वाली ध्वनि स्वर कहलाती है । सामान्य भाषा में स्वर उस ध्वनि या आवाज को कहते हैं जिसे सुनकर अन्तः कारण आनन्दित हो जाये ।

---

1 संगीत रत्नाकर 1/तृतीय अध्याय पी 40

2 संगीत-रत्नाकर – स्वर प्रकरण श्लोक 46

3 सगीत दर्पण – 170/171 श्लोक

वैदिक काल में म गं रे सा स्वरों का प्रयोग होता था। सामवेद के उत्तर काल तक सातो स्वरों का विकास हो गया था। जिसके आधार पर उदात्त , अनुदात्त, स्वरित ये स्वरो की तीन अवस्थायें मानी गयी । यह तथ्य नारद कृत नारदी शिक्षा के अध्ययन से और अधिक स्पष्ट हो जाती है । निषाद और गन्धार उदात्त स्वर अवस्था , ऋषभ और धैवत अनुदात्त तथा षड़ज और मध्यम और पंचम में स्वरित स्वर अवस्था है।

सात स्वरों के पारस्परिक अन्तराल के आधार पर संगीत शास्त्रियों ने स्वरों को वादी सम्वादी, अनुवादी और विवादी के भेद से चार प्रकार का माना है। ये चार प्रकार श्रुतियों के परिपेक्ष्य में स्वरों को सुनने पर अभिव्यक्त होते हैं।

जब समान रस भाव देने वाले,दो स्वर,समूह में रहते हैं तो उन्हे वादी और सम्वादी कहते हैं। वादी और संवादी स्वरों को श्रुतियों के माध्यम से स्पष्ट करते हुये माना गया है कि जिन स्वरों के मध्य नौ और तेरह श्रुत्यन्तराल हो उन्हें ही परस्पर वादी-संवादी स्वर कहते है । विवादी स्वर उन स्वरों को कहते हैं,। जिनमें स्वरों के बीच में बीस श्रुतियों का अन्तर होता है । वादी, संवादी और विवादी के अतिरिक्त जो स्वर है इन्हे अनुवादी स्वर कहते हैं । इस प्रकार सात शुद्ध स्वर और इसके अतिरिक्त विकृत स्वर कुल मिलाकर बारह स्वर हो जाते हैं ।

संगीत रत्नाकर [1] में स्वरों के कुल, वर्ण, रंग, द्वीप , देवता छन्द तथा रस पर भी विस्तार से वर्णन किया गया है । रक्त पिंजर (कुछ पीत) स्वर्ण कुन्द (शुभ्र) असित (कृष्ण) पीत (पीला) कुबेर (मिश्रित) ये क्रम से सातों स्वर के वर्ण (रंग) हैं।

---

1. संगीत रत्नाकर – शारंङ्गदेव – स्वराध्याय श्लोक – 54

अग्नि, ब्रम्हा, सरस्वती , महादेव, लक्ष्मी पति, गणेश तथा सूर्य ये क्रम से षडजादि स्वरो के देवता है ।

अनुष्टुप, गायत्री, त्रिष्टुप, वृह ती, पंक्ति, उष्णिक तथा जगति , ये क्रम से षडजाति स्वरो के छन्द है ।

षडज और ऋषभ का प्रयोग-वीर रस, अद्भुद तथा रोद्र रस में, धैवत का-भीभत्स तथा भयानक रस मे, गन्धार और निषाद का-करूण रस मे तथा मध्यम और पचम-का हास्य रस और श्रङ्गार रस मे प्रयोग करना चाहिये ।

इस प्रकार षडज , ऋषभ स्वरोऔर अनुष्टुपव गायत्री छन्द का,प्रयोग वीर रस मे, अद्भुत तथा रौद्र मे होता है । गन्धार स्वरव त्रिष्टुभ छन्द का प्रयोग, करूण रस मे होता है ।

मध्यम, पचम स्वर , वृहती और पक्ति छन्द का प्रयोग हास्य तथा श्रङ्गार रस मे होता है ।

धैवत स्वर, उष्णिक छन्द का प्रयोग भीमात्स व भयानक रस में होता है। निषाद स्वर , जगति छन्द का प्रयोग करूण रस मे होता है। स्वरो का रस सिद्धान्त से सम्बन्ध के विषय मे सगीत-समय-सार में उदधृित किया गया है कि किसी भी रस के परिपाक के लिये उपयुक्त अवसर पर, उपयुक्त स्वर की "अशता" के साथ बांछनीय "रस" के परिपोषक भाव को व्यक्त करने वाले स्वरो का बाहुल्य एव विरोधी भाव को व्यक्त करने वाले स्वरो का अल्पत्व अनिवार्य है।

अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना नामक वृत्तियाँ तो सार्थक गेय पद समूह में होती है। परन्तु स्वरो में अवगमन शक्ति होती है । अत· गान प्रयोज्य

---

1. संगीत समय सार की भूमिका – पेज 31

राग वाचक स्वर समुदाय, रस परिपाक की प्रक्रिया में भाषा के सहायक मात्र होते है । भाषा हीन गेय पदो का गान "शुष्क गीत" या 'निगीत' कहलाता है "सगीत" नहीं ।

स्वरो के द्वारा की जाने वाली भाव व्यंजना गूँगे के द्वारा निकाली हुयी ध्वनियो से व्यक्त होने वाली भाव व्यञ्जना के सदृश है । गूँगा भी प्रेम निवेदन कर तो सकता है परन्तु वह स्पष्ट और व्यक्त नहीं होता ।

भगवान वेदव्यास ने भगवान कृष्ण के वेणुवादन को 'वेणुगीत' कहा है उसमे आकर्षण भी बताया है परन्तु उनके शब्दों मे जिसे 'रास' (रसों का समूह) कहा गया है । उसमे भाषा अनिवार्य है।

वैसे यह भी कहा जा सकता है :– स्थायी स्वर पर आलम्बित उसके सवादी स्वर उद्दीप्त , अनुवादी स्वरों द्वारा अनुभाषित और संचारी स्वरों द्वारा परिपोषित, सहृदयों की वह विशिष्ट चेतना,'रस' है। जिसकी अनुभूति के समय रजस्तमोगुण जनित उनकी राग द्वेषादि ग्रन्थियाँ विगलित हो जाती हैं।

<u>राग –</u>

'राग' शब्द की उत्पत्ति र – ज धातु से हुयी है जिसका अर्थ है प्रसन्न करना । संगीत में राग श्रोता को अपने रग मे रग लेता है और एक अलौकिक आनन्द की स्थिति उत्पन्न करता है ।

नाट्य शास्त्र में 'राग' शब्द का अनेक बार उल्लेख हुआ है किन्तु राग का स्पष्ट लक्षण वहाँ उपलब्ध नहीं है। नाट्य शास्त्र के स्वर अध्याय में राग के विषय मे उल्लेख करते हुये लिखा है

रागस्तु यस्मिन्वरूति यस्माच्चेप प्रवर्तते।

अर्थात जिसमे राग का निवास होता है तथा राग जिस स्वर से प्रवृत्त होता है वह अंश स्वर है । इस प्रकार भरत मुनि के अनुसार जातियाँ राग ही हैं।

आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार[1] रञ्जन एवं अम्युदय के जनक विशिष्ट स्वर ही विशेष प्रकार के सन्निवेश से युक्त होने पर 'जाति' संज्ञा प्राप्त करते हैं। जातियों के प्रयोग में नियत स्वर, पद, ताल आदि का ध्यान रखना आवश्यक होता है। जातियाँ अपने विशिष्ट अंश स्वर के कारण रसात्मकता का पोषण करती है। जातियों से रागों की उत्पत्ति होती है। आचार्य भरत के समय में जाति तथा राग दोनो की परम्परा समान रूप से प्रचलित थी । कौन से अंश स्वर से युक्त कौन सी जाति किसी रस को व्यक्त करेगी ?। इसका विशद व्याख्यान भरत ने किया है ।[2]

जाति गान के साथ तदनुकूल वाद्य वादन की परम्परा। उस समय में थी। वाद्य वादन मे किस स्वर के द्वारा किस रस की निष्पत्ति में सहायता होगी? इसका उल्लेख भी नाट्य शास्त्र में किया गया है।[3]

संगीत रत्नाकर[4] में राग की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है कि ध्वनि की वह विशिष्ट रचना जिसे स्वर या वर्ण स्वर सौन्दर्य प्राप्त हो और जो सुनने

---

1 भरत कोष-पेज 227

2. सुषमा कुलश्रेष्ठ – कालीदास और संगीत पेज 62

3 संगीत रत्नाकर – कल्लिनाथ की टीका –(अड्यार संस्करण) पेज 6–7

4 संगीत रत्नाकर – पृष्ठ संख्या –2 – भाग –2

वालो के चित्त को प्रसन्न करे उसे 'राग' कहते है। जो राग स्थायी, आरोही, अवरोही, संञ्चारी – इस वर्ण चतुष्टय से शोभित होने वाले ही 'राग' कहलाने योग्य है।

राम कृष्ण कवि द्वारा रचित भरत कोष में[1] राग की व्याख्या करते हुये लिखा गया है कि विशिष्ट स्वर, वर्ण (गान क्रिया) से अथवा ध्वनि भेद के द्वारा जिससे जन्‌रंजन होता है वह राग है । आचार्यनेराग की अत्यन्त ही सरल और सहज व्याख्या करते हुये लिखा है कि षडज इत्यादि स्वरो तथा स्थायी आदि वर्णों से विभूषित वह ध्वनि विशेष 'राग संज्ञक' है जिससे लोगो के मन का रंजन होता है।

संगीत-समय-सार के प्रथम अध्याय में श्लोक अट्ठावन में स्वर की व्याख्या करते हुये कहा गया है कि स्वर और वर्ण विशेष अथवा ध्वनि भेद से, जिसके द्वारा सज्जनों के चित्त का रंञ्जन हो वह 'राग' है।

संगीत रत्नाकर में [2] सात रागो का उल्लेख किया गया है जिनका रस के साथ सम्बन्ध बताया गया है । मध्यम ग्रामराग ग्रीष्म ऋतु के प्रथम प्रहर में गाया जाने वाला राग है । इसका विनियोग हास्य एवं श्रंगार रस में उपयुक्त है ।

षडज ग्राम का गायन समय, दिन का प्रथम प्रहर, वर्षा ऋतु है इससे वीर, रौद्र तथा अद्‌भुत रसों की अभिव्यक्ति होती है । साधारित राग, गायन समय, दिन का प्रथम प्रहर है इसके द्वारा वीर एवं रौद्र रसों की अभिव्यक्ति होती है ।

राग पंचम का गायन ..., ग्रीष्म ऋतु में, दिन के प्रथम प्रहर में गाना चाहिये इससे हास्य और श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति होती है ।

---

1 भरत कोष – पृष्ठ – 921

2. संगीत रत्नाकर-अड्यार संस्करण राग अध्याय – पृष्ठ 59

नाट्य शास्त्र में [1] राग और रसाभि–व्यक्ति का उल्लेख स्पष्ट रूप से करते हुये भरत मुनि ने राग कैशिक को शिशिर ऋतु में दिन के प्रथम प्रहर में गान करने पर, रौद्र, वीर और अदभुद् रस की अभिव्यक्ति का वर्णन किया है । षाडव राग का गायन समय पूर्व प्रहर है। यह हास्य और श्रृंगार रस का अभिव्यञ्जक है। कैशिक मध्यम राग का गान समय भी पूर्व प्रहर बताया गया है इस राग के द्वारा वीर, अदभुद, रौद्र रस उद्दीप्त होते हैं ।

वर्तमान समय में जो राग गायन होता है उस राग के अर्विभाव के पूर्व जातियो का गायन, वादन होता रहा है । सगीत मे रंजकता के लिये ही राग संगीत का आविष्कार हुआ। मानव जीवन नौ रसों से अविष्टित है और उन्हीं रसों को मूर्त करने के लिये रागो का जन्म हुआ है । गीत भी उन रसों को अभिव्यक्त करने के लिये ऐसे रचे गये , जिससे की राग का स्वर सन्निवेश रस के प्रासारण का साधन हो। सातों स्वरो मे यह गुण है कि वह स्वयं ही अलग–अलग रसों का उद्घाटन करते हैं। उन्हीं स्वरों का सन्निवेश 'राग' कहलाता है । गीत से मिलकर 'राग' रस को मूर्त रूप दे देता है । 'राग' मे रंजकता तब आती है जब मधुर स्वरों में उसके अनुरूप गीत गाये जायें । रागो के लिये ताल और लय भी निश्चित की गयी है। इन सभी तत्वों के समन्वित और अनुपातिक सम्मिलन से राग का प्रत्यक्षीकरण मानव को ब्रम्हानन्द की अनुभूति कराने मे समर्थ होता है। उत्साह, विषाद, आवेश, करूण आदि भाव इन रागों से ही उत्पन्न होते है ।

---

1. नाट्य शास्त्र – राग अध्याय

द्वितीय अध्याय

लय

गति या लय ससार का अत्यन्त ही व्यापक एव आधार भूत तत्व है । इसकी उपस्थिति भौतिक जगत के सभी क्षेत्रो मे अनुभूत है । सगीत जो इस जगत का अत्यन्त ही महत्व पूर्ण एवं प्रभावीशाली क्षेत्र है, यहाँ भी लय या गति का एकाधिकार है । सगीत के क्षेत्र मे समय की गति को 'लय' कहते है । यह समय की गति या लय विभिन्न सूक्ष्म मापदण्डो के द्वारा मापित होकर 'मात्रा' का रूप लेती है। 'मात्रा' सगीत की आदिम अवस्था से वर्तमान तक विभिन्न सज्ञाओ, स्वरूपों तथा चिन्हो के द्वारा व्यक्त की गयी है [1] इसके पश्चात 'मात्रा' ताल की इकाई बनती है । और विभिन्न तालो के माध्यम से यह 'मात्रा' निश्चित तथा सीमित रूप ग्रहण करती है ।

वैय्याकरण की दृष्टि से 'मात्रा' शब्द की उत्पत्ति परिमाण सूचक 'मा' धातु से हुयी है । नाट्य शास्त्र में गीत के समय मे पाँच निमेष की एक मात्रा कहा गया [2] सगीत – रत्नाकर मे पाँच लघु अक्षरो के उच्चारण काल में व्याप्त करने वाली क्रियामात्रा कहलाती है । [3] यह सगीत रत्नाकर में मात्रा को बहुत अधिक महत्वकेसाथ वर्णित किया गया है । [4] नाट्य शास्त्र तथा संगीत रत्नाकर, संगीत चूडामणि आदि ग्रन्थो में मार्ग तालो मे मात्राओ का मापन लघु, गुरू, प्लुत के द्वारा वर्णित किया गया है । देशी तालों में मात्राओ का मापन लघु, और प्लुत और द्रुत तथा विरमान्त द्रुत, विरमान्त लघु तथा विरमान्त गुरू के द्वारा उल्लिखित किया गया है ।

---

1 नाट्य शास्त्र चौरवम्मा संस्करण – 31/3

2 नाट्य शास्त्र चौखम्मा संस्करण – 31/3

3 संगीत रत्नाकर अडियार सस्करण 3/5/16

4 संगीत रत्नाकर अडियार संस्करण 3/5/9/5

सैद्वान्तिक रूप मे मात्रा का गणितीय आधार ही तर्क सगत, सुनिश्चित और स्पष्ट है । किन्तु क्रियात्मक पक्ष मे मात्रा का आधार किसी भी जीवित प्राणी विशेष के लयात्मक क्रियाकलाप, प्राणी विशेष की क्षमता पर निर्भर है । यह क्षमता सर्वधा भिन्न–भिन्न होती है । इसीलिये क्रियात्मकपक्ष मे प्रत्येक प्राणी के लयात्मक क्रियाकलाप के अनुसार मात्रा तथा लय का निर्धारण अलग–अलग होता है । इसलिये लय तथा लयकारियॉ कलाकार की क्षमता के अनुसार असख्यो प्रकार की होती है ।

काल के मापन की यह गणितीय तथा वैज्ञानिक विधि सगीत के साथ ताल के के रूप मे जुडी हुर्या है । गणितीय विधि के आधार पर लयकारियॉ असंख्य तथा असीमित हो सकती है । ये असव्यो लयकारियाँ सगीत मे अव्यस्थित तथा भ्रामक स्थित मे न प्रकट होने लगे इसलिये उत्तर भारतीय सगीत मे मुख्य पॉच जातियो की सहायता से उन्हे वर्गीकृत किया जाता है ।

किसी भी प्रकार के सगीत का आधार लय ही है नाट्य शास्त्र मे 'लय' के विषयो मे कहा गया है .–

समणाण्ढवपाणिश्च तथा परिपाणिकम् ।

यत्यु पान्त्यक्षराणाच समवायो लयो भवेत ।

अर्थात समपाणि, अवपाणि, परिपाणि यह यति के अन्त के समीप के अक्षरो का समूह 'लय' कहलाता है । 'लय' मार्ग के द्वारा व्यक्त होती है गीत और वाद्य दोनो मे रहने वाली है । छन्द, अक्षर पदो का समर्थ जहॉ कहा जाता है और वह कला के दूसरे काल से किया जाता है, 'लय' नाम से कहा जाता है ।[2] द्रुत, मध्य, विलम्वित लय तीन प्रकार की होती है ।[3]

---

1 नाट्य शास्त्र चौ स0 31/538

2 नाट्य शास्त्र चौ- स0 31/532

सगीत चूडामणि मे "लय" के सदर्भ मे इस प्रकार कहा गया है [1] -

तालान्तरावर्ती य कालौ सौलयनावक्य ।

त्रिविध. स च विशैयो दुतौ मध्यो (लयो) विलम्वित. ।

सगीत समयसार मे "लय" के विषय मे इस प्रकार कहा गया है.-

तालान्तराल वर्तो य कालौ सौ लयनान्वय:

त्रिविधा स विज्ञेय: द्रुतौमध्यौ विलम्बित. ।[2]

अर्थात तालान्तरवर्ती काल लयन के कारण "लय" कहलाता है।

वह "लय" विविध है द्रुत, मध्य और विलम्बित।

सगीत मे "लय" के विषय मे विस्तार से वर्णित करते हुये कहा गया है कि .

"क्रियान्तरन्तर वि श्रान्तिर्लय·य त्रिविधा मतः ।

द्रुतो मध्ये विलम्बित दुत. शीघ्रतमोमत.[3]

द्विगुण द्विगुणो ज्ञेयौ तस्मान्मध्य विलम्बितौ । को "लय" कहते है। यह लय तीन प्रकार की सगीत रत्नाकर मे वर्णित की गयी है .- द्रुत, मध्य, विलम्बित। अत्यन्त शीघ्र विश्रान्ति को द्रुत कहते है और द्रुत लय से दुगुनी विश्रान्ति को मध्य लय कहते है और मध्य लय से दुगुने विश्रान्ति काल को विलम्बित लय कहते है । ध्रुव आदि मार्ग कहे गये है । उनके भेद के कारण विलम्बित द्रुत और मध्य भाव अनेक प्रकार के होते है अर्थात जैसे - दक्षिण मार्ग मे चिरभाव (विलम्बित भाव) चित्रमार्ग मे (द्रुत भाव) वार्तिक भाव मे (मध्य भाव) के द्वारा लय अनेक प्रकार की होती है जैसे - चित्रमार्ग मे 10 लघु अक्षरो के उच्चारण काल के बाद जो लय होती है वह द्रुत कहलाता है ।

वार्तिक मार्ग मे उससे दुगुने 20 लघु अक्षरो के उच्चारण काल के कारण जो लय होती है उसे मध्य लय कहते है और दक्षिण मार्ग मे 4 कला के अनन्तर 40 लघु अक्षरो के उच्चारण मे जो समय लगता है वह लय विलम्बित लय होगी । यद्यपि अक्षर, पद, वाक्य मे भी लय है किन्तु वह सगीत शास्त्र मे उपयोगी न होने के कारण सगीत-रत्नाकर मे नही वर्णित की गयी है ।[1]

अमर कोष के अुनसार 'ताल काल क्रियामानलय साम्यमया स्त्रियाम्' अर्थात ताल मे काल और क्रिया की साम्यता लय है ।

द्रुत,मध्य और विलम्वित लयो के क्रमश औघ, अनुगत और तत्व नाम भी शास्त्रो मे मिलते है । जिनका प्रयोग सगीत मे विभिन्न रस एव भावो के सृजन हेतु होता था । प्राय विलम्वित लय मे करूण, मध्यलय मे शान्त और हास्य (कलाकार के दोष के कारण होता।) द्रुतलय म श्रृगार रस ... रौद्र, भीमत्स, भयानक, वीर आदि रसो की कल्पना की जाती है । ध्वनि तथा लय के सयोजन से रस के अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिये विभिन्न प्रकार की लयो का ही सहारा लिया जाता है । लय निर्धारण करने के सदर्भ मे समय-समय पर विभिन्न मतों का प्रतिपादन होता रहा है । कभी अक्षरो को द्रुत लय, पदो को मध्य लय और वाक्यो को विलम्वित लय के अन्तर्गत कहा गया तो कभी मार्ग तालो मे प्रयोग किये गये चिन्ह, लघु, गुरू, प्लुत मात्राओ की क्रियाओ का तीनलयो के रूप मे उल्लेख किया गया है । कर्नाटक के कुछ ग्रन्थों[1] मे अतिचित्रतम तथा चित्रतम (पहले तथा दूसरे काल) को विलम्बकाल, चित्रतर तथा चित्र (तीसरे तथा चौथे काल को मध्य एव वार्तिकम तथा दक्षिणम (पॉचवे तथा छवे काल) को द्रुत काल कहा जाता है ।

---

1 सगीत रत्नाकर श्लोक सख्या 46

1 कर्नाटक सगीत अक हाथरस 1963

परन्तु इस व्याख्या को मानने मे यह बाधा खडी होती है चूँकि मध्य काल विलम्बित की दुगनी होती है पहला काल यदि विलम्बित काल माना जाता है तो स्वय दूसरा काल मध्य काल हो जाता है अत दोनो विलम्पितकाल के नही हो सकते है । यही बाधा तीसरे चौथे को मध्य काल तथा पॉचवे तथा छवे काल को द्रुत मानने मे भी होती है ।'

वास्तव मे लय, गायन, वादन और नृत्य की तेज या धीमी चाल को ज्ञापित करती है । तथापि सर्वत्र लय के तीन प्रकारो का ही उल्लेख है किन्तु यह मान लेना अनुचित होगा कि केवल तीन गतियाँ ही सगीत मे हो सकती है । लय में कितनी गतियाँ सम्भव हो सकती है उनकी सख्या का निर्धारण न प्राचीन काल मे सम्भव हुआ है और न कभी हो सकेगा । सगीत ग्रन्थो मे इन गतियो के कही दो और कही तीन भेद बताये गये है । गति निर्देशक छः मात्राओ के नाम – अति द्रुत, द्रुत, लघु, प्लुत और काकपद के भी उल्लेख है .–

1 द्रुत 2 मध्य 3 द्रुत मध्य 4 दुत विलम्बित 5 मध्यविलम्बित 6 अति बिलम्बित ।

किन्तु यहाँ गति का अर्थ मात्रा या वर्ण से न होकर समलधु एव गुरू के अर्थ मे हुआ ।

पाश्चात्य सगीत मे इन्ही के समरूप निम्नलयो का विवरण उपलब्ध है :–[1]

1 ZARGO –अति विलम्बित 2 ADANTA साधारण विलम्वितलय 3 AVEG –साधारण द्रुतलय 4 मध्यलय – MODERATE

5 VIVO द्रुत लय 6 PRESTO अतिद्रुत

अध्ययन से तथा सगीत के व्यवहारिक पक्ष से अवगत होकर यह तो स्पष्ट हो जाता है कि सगीत की अभिव्यक्ति मे लय गति के नित्य नये स्वरूप बनते है । वर्तमान संगीत प्रदर्शन मे, एकओर अत्याधिक विलम्बित लय मे बड़े ख्याल गाये जा रहे है और

---

1 भारतीय तालो का शास्त्रीय विवेचन – डा0 अरूण कुमार सेन – पृष्ठ 282

दूसरी और सितार, वायलिन, गिटार सरोद आदिमेअत्यन्त द्रुत झाले आदि के प्रयोग हो रहे है । पौनी, डेढगुनी, तिगुनी, छहगुनी, आठदुगुन, चौगुन, अठगुन, सवाई, पौने दो गुनी, सवा दो गुनी लयकारियाँ आदि लय के ही चमकृत रूप है। जिनकी सहायता से कलाकार अपनी सगीत साधना की पराकाष्ठा का परिचय देता हे ।

लय के विभिन्न प्रकारो का विश्लेषण कर उनकी निश्चित सख्या का निरूपण करना असम्भव है ।

सभी क्षेत्रो मे उन्नति तथा विकास के लिये प्रतिबन्धो की भूमिका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रही है । इसी दृष्टिकोण से सगीत मे भी प्रतिबन्धो का महत्त्वपूर्ण स्थान स्वीकार किया गया है । जिस प्रकार राग विशेष को निश्चित स्वरो मे तथा निश्चित समय पर ही गाये जाने का प्रतिबन्ध है । उसी प्रकार ताल बद्ध होकर ही गायन, वादन करने का प्रतिबन्ध है और वही सगीत की सज्ञा के अर्न्तगत आता है ।

"गीत वाद्य तथा नृत्य त्रय सगीत मुच्यते"[1] इस परिभाषा से सगीत के व्यापक तथा विस्तृत विषय क्षेत्र का परिचय प्राप्त होता है । महत्वपूर्ण तथ्य यह कि सगीत के इन तीन अशो मे ताल की महत्ता सर्वोपरि है यथा –

गीतं वाद्यम् तथा नृत्य यतस्ताले प्रतिष्ठितम्

सगीतकामुख्य लक्ष्य आनन्द की उत्पति करना है जिसकी पूर्ति के लिये ताल की सहायता लेना अनिवार्य है । सगीत को प्रमाणिक रूप मे प्रतिष्ठित करने के लिये ताल की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । ताल की सहायता के बिना सगीत शोभायमान नही होता । ताल प्रमाण मे बद्ध होकर सगीत श्रवण प्रिय हो जाता है ।

---

1 सगीत मकरन्द – नारदमुनि

ताल के सयोग के बिना सगीत बिखरा हुआ सा प्रतीत होगा । इसलिये कहा गया है .–[1]

यस्तु ताल ना जानति गायको न च वादक. ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कार्यम तालावधारणम् ॥

अर्थात जिसे ताल का ज्ञान नही वह गायक अथवा वादक कहलाने योग्य नही है । सगीत मे स्वर की भॉति ताल भी रस का परिपाक करने मे सहायता प्रदान करता है । उत्तर भारतीय सगीत की विशेषता यह है कि उसके गायक अथवा वादक स्वय गाते बजाते समय अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय देता है । लय वास्तव मे सगीत का प्राण है । लय की विशिष्ट गति (विलम्बित, मध्य और द्रुत, आदि है) को निश्चित करके सगीतज्ञ अपनी कलात्मक प्रतिभा का परिचय देता है और श्रोताओ को मत्रमुग्ध करता है। गायन मे नाद को जो महत्व दिया जाता है वही महत्व लय को गायन के साथ ही साथ वादन तथा नृत्य मे दिया जाता है । जिस प्रकार स्वरो मे विविध अलकृत प्रयोग ही अलकार और तान का रूप लेते है । उसी प्रकार वादन तथा नृत्य मे लय के अनेक प्रयोग चमकृत तथा प्रभावशाली लयकारियों के रूप मे प्रयुक्त होते है । लय के सामन्यत. तीन प्रकार विलम्वित, मध्य ओर द्रुत होती है जब कि लयकारियो के असख्य प्रकार होते है जो कि कलाकार की कला क्षमता पर निर्भर करती है । जब वह किसी लय का आधार निश्चित करके उसके विभिन्न भेदों को दर्शाता है तो वह लयकारी कही जाती है ।

सर्वप्रथम सगीत मे मात्राओ का प्रमाण निश्चित कर लिया जाता है जिसके आधार पर गायक वादक विभिन्न लयकारियो की इमारत खडी करते हैं इसमे प्रत्येक मात्रा पर ताली देते हुये तथा उसमे एक स्वर अथवा ताल गिनते हुये चलते हैं जिसे ठाह अथवा गुन की लयकारी कहेगे । ठाहलय की बदिश मे किसी मात्रा के भीतर एक से अधिक स्वर या बोल आ सकते है वह बंदिश जैसी भी हो उसका उसी प्रकार से गायन, वादन करना ठाह की

लयकारी का एक उदाहरण होगा । इसका लेखन केवल अको को पृथक–पृथक लिखने से ही हो जाता है जैसे –

1,2,3,4, (प्रत्येक अक एक मात्रा का है)

उपर्युक्त 'ठाह' की नीव पर गायक, वादक कभी– कभी दो मात्राओ मे गीत आदि का एक शब्द कहते हैं अर्थात प्रत्येक स्वर या बोल को एक–एक मात्रा बढाकर लयकारी को अधिककर देते है । इसे अधगुन कहते हैं । जिस प्रकार स्वरलिपि मे स्वर के आगे (–) लगाने से उसी स्वर पर एक मात्रा और रूकना पडता है इसी प्रकार अधगुन की लयकारी इस प्रकार लिपिवद्ध होगी ।

1 – 2 – 3 – 4 – ।

एक मात्रा मे दो मात्रा का अश बोलने को दुगुन की लयकारी कहते हैं । यदि सगीतज्ञ प्रत्येक मात्रा पर तालीन न देते हुये एक मात्रा मे दो मात्राएँ गिने तो दुगुन होगी । जैसे ठाह की 4 मात्राओ मे आठ मात्राओ को गिना जाय । दो–दो मात्राओ को एक कोष्ठक द्वारा जोडकर प्रत्येक को एक मात्रा मानकर दुगुन लिखी जायेगी । इस प्रकार चौगुन, आठगुन, और सोलहगुन, बत्तीसगुन, चौसठ्गुन, और इसी प्रकार चार के अक से गुणित असंख्यो लयकारियो को लिपिबद्ध किया जा सकता है तथा क्रियात्मक रूप मे, साधना के बल पर प्रस्तुत किया जा सकता है और इन सभी लयकारियो को चतस्त्र जाति के अन्तर्गत रखा जायेगा ।

एक मात्रा मे तीन मात्राये बोलने से जो लयकारी बनती है उसे तिगुन कहते है । इस लयकारी को लिपिबद्ध करने के लिये एक कोष्ठक मे तीन–तीन अंक लिखे जाते है । इसी प्रकार छ' गुन, बारह गुन, चौबीस गुन, अडतालीस गुन, आदि तीन से गुणित होने वाली लयकारियो को भी लिपिवद्ध किया जायेगा ।

इसी प्रकार पचगुन, दस गुन, बीस गुन, चालीस गुन, अस्सीगुन, सतगुन, चौदहगुन, अट्ठाईस गुन, छप्पन गुन, नौगुन, अट्ठारह गुन, छत्तीस गुन, बहत्तर

गुन, आदि लयकारियाँ बनती है इन लयकारियो मे अधिकाँश अप्रचलित ही है केवल लिपि पद्धति की दृष्टि से ही इनका महत्व रह जाता है ।

उत्तर भारतीय सगीत मे दो प्रकार की लयकारी व्यवहार रूप मे प्रयुक्त की जाती है । प्रथमत समान लयकारी द्वितीय–असमान लयकारी ।

समान लयकारी के अन्तर्गत एक मात्रे मे दो मात्रा बोलना या लिपिबद्ध करना, एक मात्रे मे चार मात्रा, एक मात्रे मे आठ मात्रा, सोलह मात्रा, बत्तीस मात्रा आदि का प्रयोग करना सीधी या समान लयकारी के अन्तर्गत आता है । इसमे के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है .–

झपताल दुगुन – धीना धीधी नाती नाधी-धीना

चौगुन तीनताल – धाधिधिधा धाधिधिधा धातितिता ताधिधिधा

अठगुन की लयकारी मे तीनताल.– धाधिधिधा धाधिधिधा धातितिता ताधिधिधा

असमान लयकारियो के अन्तर्गत आने वाली लयकारियो मे उदाहरण के लिये :–

दादरा की तिगुन .– धाधीना धातीना ।

दादराताल की छ गुन :– धाधीनाधातीना ।।

इसके अतिरिक्त दो मात्रे मे तीन मात्रा बोलना या लिपिबद्ध करना, चार मात्रे मे तीन मात्रा पढ़ना, आठ मात्रे मे तीन मात्रा पढ़ना आदि असीमित क्रियाये हैं । उदाहरण के लिये –

दादराताल 3/4 की लयकारी में ·–

धा –– –धी– ––ना ––– धा –– – ती– –– ना ––

दादराताल के बोल 3/2 की लयकारी मे :– धा – धी – ना – धा – ती – ना – ।

दादरताल 5/2 की लयकारी मे - धा - धी - ना - धा - ती - - ना - - - - -

दादरताल 5/4 की लयकारी मे :- धा --- धी ---ना- -- धा-- - ती- - -

-- ना --- +

दादरताल 5/8 की लयकारी मे .- धा ---- --- धी ------ -ना - --

----- धा ----- -- ती-- -----ना---- --- + .

दादरताल 7/2 की लयकारी मे .- धाऽ धी ऽनाऽ धा ऽतीऽ नाऽ --------

दादरताल 7/4 की लयकारी मे - धा---धी-- -ना---धा ----ती-- -

न -----------------------

दादरताल 7/8 की लयकारी - धा------ -धी----- --न----

---धा--- ----ती-- -----ना ---------------

इन लयकारियो मे निबद्ध तबले और पखावज की कुछ रचनाओ के उदाहरण निम्मलिखित है :-

चौपल्ली (तीनताल)

धा-न ×	धा-न	तकिट	तकिट
धतिरकिट 2	धेतेट	कतिग	दगिन
धातिरकिटधे 0	तेटकत	धा-नधा-न	तकिटतकिट
धातिरकिटधेतेट 3	कतगदिगन	धेता, किटतकता	धेरधेरकिटतक, धाक्डान

कुआड की परन (तीनताल)

धा-नाधिट ×	नगिनाधिट	कतककत	धिनकधिन
दिगिनदिग 2	घेतेटघेट	दि-तदि-	कतककत
कतककत 0	कतककत	धा	धा-नधिट

नगिनकिट	कतककत	धिनकधिन	दिगिनादिग
धेतेटधेते	दि–नादि–	कतककत	कतककत
कतककत	धा	धा–नाधेट	नागनागिन
कतककत	धिनकधिन	दिगिनादिग	धतटधट
दि–नादि–	कतककत	कतककत	कतककत ।

आड़ की परन (तीनताल)

धा–नधेतेट	धातिरकिटधेतेट	क–तधेतेट	कतगदिगन
तकिटता–न	ता––––घड़	धा–नधा–न	धा–घड़धा–न
धा–नधा–घड़	धा–नधा–न	धा–नधेतेट	धातिरकिटधेतेट
क–तधेतेट	कतगदिगन	तकिटता–न	ता––––घड़
धा–नधा–न	धा–घड़धा–न	धा–नधा–घड़	धा–नधा–न
धा	धा–नधेतेट	धातिरकिटधेतेट	क–तधेतेट
कतगदिगन	तकिटता–न	ता––––घड़	धा–नधा–न
धा–घड़धा–न	धा–नधा–घड़	धा–नधा–न ।	

पांच पल्ला

धा–न	धा–न	तकिट	तकिट
धा,तिर,किट	धेतेट	कतगि	दगिन

धा,तिर, किटधे	तेटकत	गदिगन
धाधाधा–	धा–नधा–न	तकिटतकिट
धातिरकिट,धेतेट	कतगदिगन	धातिरकिटधे,तेटकत
गदिगन ,धाधा–	धा–नधा–नतकिटतकिट	धातिरकिटधेतेटकतगदिगन
धा,तिरकिटधे,तेटकत	गदिगनधा,धातिरकिटधे	तेटकतगदिगनधाधा
तिरकिटधेतेटकतगदिगन	धाधातिरकिटधेतेटकत	गदिगनधाधातिरकिटधे
तेटकतगदिगनधाधातिर	किटधेतेटकतगदिगन	धाधातिरकिटधेतेटकत
गदिगनधाधातिरकिटधे	तेटकतगदिगनधाधा	तिरकिटधेतेटकतगदिगन ।

तबले मे प्रयुक्त होने वाले उपर्युक्त बोल उदाहरण–स्वरूप ही दिये गये है । टुकडा ,मुखडा,कायदा, रेला, परन आदि असीमित सख्या मे प्रचलित है किन्तु सब का उल्लेख सभव नहीं है ।

इसी प्रकार तीन मात्रा मे दो मात्रा का प्रयोग, तीन में चार मात्रा का प्रयोग, चार मात्रे मे तीन मात्रा, पॉच मात्रे मे चार मात्रा जैसी असख्यो असमान लयकारियाँ उत्तर भारतीय सगीत पद्वति मे प्रयुक्त होती हैं । कलाकार इनका प्रयोग, सगीत मे आनन्द और अद्भुत् रस निष्पत्ति, चमत्कार पूर्ण प्रदर्शन, प्रस्तुत करने के लिये कुशलता पूर्वक करते हैं ।

शास्त्रधार है कि विलम्बित लय मे करूण, मध्य लय मे शान्त,व श्रगार एव द्रुत लय मे रौद्र, भीभस्त, भयानक, वीर और अद्भुत रसो का सफलता पूर्वक प्रदर्शन सम्भव होता है । तबला वादन मे बोलो की रचना योजना और लय दोनो का समन्वय अद्भुत रस ही अभिव्यक्ति करता है । सगीत रचना के भाव पर लय का यथेष्ट प्रभाव पडता है । शास्त्रीय नृत्यकला मे ताल के इस पक्षा का पूर्ण निर्वाह हुआ है । प्रत्येक रचना का अपना लय प्रमाण होता है । मध्य लय की रचना मध्यलय मेंही प्रभाव पूर्ण ढग से प्रस्तुत की जा सकती है । विलम्वित लय या द्रुतलय मे समुचित प्रभाव,वह श्रोताओ पर नहीं डालेगी ।

सगीत मे राग के आधार भूत तत्वो मे से लय भी एक महत्वपूर्ण तत्व है । सगीत मे व्यक्ति अपनी भावनाओ को स्वर और लय मे व्यजित करता है लय के सहयोग से ताल मे विभाजित करने के उपरान्त ही गायक ,वादक पदो या गीतो को स्वर मे बॉधकर गाता बजाता है । लय का प्रयोग भावो की गति के अनुरूप होता है । प्रत्यैक छन्द की अलग–अलग गति या लय होती है ।

तृतीय अध्याय

ताल –

संगीतशास्त्र का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वैदिक काल मे मिलता है। अक्षरो का नियम ऋग्वेद काल से चला आ रहा है । इस नियम का नाम छन्दस या छन्द है। ऋग्वेद में हर एक मंत्र का अलग–अलग छद है। मंत्र का "छादन" या छिपाकर रखने के कारण इसका नाम "छन्दस" पडा । शब्दों के उच्चारण मे लघु , गुरू, प्लुत मात्राकाल के नाम है । ऐसा प्रतीत होता है कि तालो की उत्पत्ति वृत्तो के गुरू, लघु आदि के अक्षर नियम अर्थात छंद से ही हुई है। प्राचीन काल मे ताल की आधारभूत शिला, लघु, गुरू, प्लुत आदि छांदिक विश्लेषण के आधार पर ही आश्रित थी । गीत, वाद्य और नृत्य के स्वरूप के रक्षण के लिय वृत्ताक्षरों के नाम अर्थात् लघु, गुरू, प्लुत से ही ताल के अंग उत्पन्न हुए हैं । वैदिक छंद परम्परा के साथ ही मात्रा काल का जन्म हुआ । साम गान में भी विभिन्न उच्चारण शैलियों का उल्लेख है जिससे शब्द एवं स्वर की गत्यात्मकता का बोध होता है । डॉ0 अरूण कुमार सेन ने पांच शैलियो का उल्लेख किया है :–

1. शब्द या स्वर पर बल देकर
2. दो उच्चारण रीतियों में अन्तर का निर्णय कर उन्हे इच्छानुसार सजाने पर
3. स्वरों की उच्चता या दीर्घता पर
4. शब्द या स्वर की सौष्ठव वृद्धि के आधार पर

---

1 डॉ ए के सेन – भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन (भूमिका)

5 . विभिन्न उच्चता या दीर्घता के बीच–बीच मे स्वरों के पारस्परिक परिमाप निर्णय पर ।

स्वरो तथा लयात्मकता के संकेत हेतु, विराम हेतु दंड चिह्नो का प्रयोग भी होता था। साम गान में 1, 2, 3 आदि सख्याओ को मत्राक्षरों के ऊपर गति या लभ के निर्देश देने की भी परिपाटी थी, साम गान में द्रुत, लघु, गुरू, प्लुत, आदि मात्राओं का अत्यत महत्वपूर्ण स्थान था। वेदो में विभिन्न लय वाद्यों का उल्लेख अवश्यमेव है किन्तु ताल स्वरूपो का उल्लेख नही है, जिससे यह प्रतीत होता है कि स्वर रचना लयात्मक ही थी ।

वैदिक संगीत के साथ लौकिक संगीत भी लयात्मकता तथा मात्राओं के आधार पर प्रचलित थी । लौकिक सगीत के रूप में "गाथा" नाराशसी आदि भी समाज में प्रचलित थे । गायन, वादन तथा नृत्य के साथ मात्रा गिनकर हाथ से ताल देने की प्रणाली थी । इस काल में गाथा व नाराशसी अतिरिक्त "रैम्य" आदि लोकगीत भी प्रचार में आये ।

रामायण तथा महाभारत काल में भी भारतीय सगीत के लय तत्व उपलब्ध हैं। रामायण मे लय तत्व का निरूपण इस प्रकार किया गया है–

"कलामात्रा विशेषज्ञा ज्योतिषे ना परंगताम।

क्रिया कल्प विदश्चैव तथा कार्य विशारदान्।।"

रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि स्वयं वैदिक संगीत तथा लोक संगीत के मर्मज्ञ थे । लव, कुश के माध्यम से लोक सगीत मे ही राम कथा का सुन्दर विवेचन किया गया है । इस लोक सगीत में द्रुत, मध्य और विलंबित लय का सुन्दर रूप दिखाई पड़ता है । लव कुश, के संगीत में शुद्ध उच्चारण

एव विभिन्न लय साम्यो का सफल निवाह हुआ है। उत्तरकाड के 71वे सग मे ताल युक्त रामचरित गान को "संस्कृत लक्षणोपेतं" कहा गया है। यथा,

"तन्त्री लयसमायुक्तं त्रिस्थान करणन्वितं।

संस्कृत लखणोपेंत सम बाल समन्वितं।।"

ताल को स्पष्ट करने के लिये "पाणि ध्वनि का", पाणि स्वनिन. आदि शब्दो का उल्लेख रामायण में भी मिलता है। स्पष्ट है हाथ से ताली देने की प्रथा प्रचलित थी । यह ताली बजाकर ताल देने की प्रथा महाभारत काल में भी थी । महाभारत के अनुशासन पर्व 25/19 में प्रदत्त ताल देने की रीति का उल्लेख है, यथा –

पाणि ताल सतालश्च राम्यातालैही समयस्तथा।

संप्रदृष्टैहि प्रनृत्यादिनि· सर्वस्तय निर्षध्यते।।

शम्या या ताल क्रिया का उल्लेख भरत मुनि ने भी नाट्यशास्त्र 39/38 में किया है। भरत ने नाट्यशास्त्र 31/29 में तालों के दो भेद किये है – (1) निशब्द तथा (2) सशब्द ।

हरिवंश पुराण में विशेष चर्म वाद्य "नान्दी" का उल्लेख है । श्रीमद्भागवत् के दशम स्कंध में "मृदंग वीणा मुरज वेणु ताल दर स्वनैः " शब्दों में ताल का महत्व ही प्रतिपादित हुआ है। यद्यपि पुराणों में ताल का विस्तृत विवेचन नही किया गया किन्तु लय, गति व ताल के अन्य प्रामाणिक तथ्यो के उल्लेख विद्यमान है । इन उद्वरणों से यह स्पष्ट प्रतिलक्षित होता है कि लय साम्यता का आधार लोक संगीत तथा शिष्ट समुदायिक संगीत दोनों मे ही था। इसी आधार पर ताली बजाकर स्वराघात दिखाने की अथवा इन्ही स्वराघातों के आधार पर अवनद्ध वाद्यों को बजाने की प्रणाली प्रचलित थी ।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने "याज्ञवल्क्य शिक्षा" मे पशु–पक्षी की ध्वनियो से भी मात्राओं का निरूपण किया है । महर्षि ने पशु–पक्षियों की बोलियों के उच्चारण को ही मात्रा का आधार माना । मंडूकी शिक्षा में वेद पाठ हेतु द्रुत पाठ, विलबित तथा वेद वचन प्रयोग हेतु मध्य वृत्ति का उल्लेख किया है। यही वृत्ति सगीत में लय कहलाती है। आचार्य अमरीष के वर्णरत्न प्रदीपिकी शिक्षा ग्रंथ मे स्वर, मात्रा, स्थान, करण, उच्चारण के द्वारा लय स्वरूपो का ही उल्लेख किया है। नारदीय शिक्षा में भी छन्दों के साथ लयात्मकता पर ही बल दिया गया है।

उपरोक्त वर्णन से यह तो सिद्ध ही है कि नाट्य शास्त्र प्रणेता भरत मुनि से पूर्व, लय मात्रा, ताल आदि का जन्म हो चुका था। लौकिक सगीत की परम्परा भी इनसे अछूती नहीं रही होगी। जन समुदाय भी हर्ष, उल्लास के अवसरों पर आनन्द सृष्टि के लिये गीतो के साथ नृत्य करते थे तथा ताली देकर लयात्मकता का सृजन करते थे ।

संगीत अर्थात गायन, वादन और नृत्य का अस्तित्व ताल के बिना असम्भव सा है । इसी कारण संगीत के प्रायः सभी ग्रन्थों में ताल तत्व का विवेचन आवश्यक तथा अभिन्न अंग के रूप में प्रस्तुत हुआ है। मकरन्दकार नारद ने 'ताल' शब्द की उत्पत्ति के विषय मे इस प्रकार कहा है :–

ताल शब्दस्य निष्पत्तिः प्रतिष्ठार्थेन धातुन्।

गीतं वाद्य च नृत्यं च भाँति ताले प्रतिष्ठतम् ।।

'ताल' शब्द का (संस्कृत भाषा के वैय्याकरण के अन्तर्गत) धातु रूप 'ताल' है। इस 'ताल' का शाब्दिक अर्थ भित्ति कहा जा सकता है और सामान्य

भाषा मे भित्ति शब्द का अर्थ बुनियाद कहा जाता है। अत ताल शब्द की उत्पत्ति का सम्बन्ध 'तल' धातु से स्थापित करना सार्थक ही है।

सगीत रत्नाकर मे ताल उत्पत्ति के विषय मे वर्णित करते हुये गीतकार ने लिखा है कि .-

तालस्तल प्रतिष्ठयामिति घार्तोघञि स्मृत.।

गीत वाद्य तथा नृत्यंयस्ताले प्रतिष्ठितम् ।।

अर्थात 'तल' प्रतिष्ठयाम धातु से 'घय' प्रत्यय करने पर 'ताल' शब्द की सिद्धि होती है और इस ताल मे गीत, वाद्य और नृत्य प्रतिष्ठित रहते हैं। इसलिये इसे 'ताल' कहते है ।

सगीत दर्पण मे ताकार से शकर या शिव और लकार से पार्वती या शक्ति दोनो का योग ताल कहा गया है जो इस प्रकार है -

ताकारे शकरः प्रोक्तो लकारे पार्वती स्मृताः [1]

शिव शक्ति समायोगात्ताल नामाभिधीयते ।।

पार्श्व-देव विरचित सगीत-समयसार मे ताल की निष्पत्ति के विषय मे इस प्रकार कहा गया है-

ताल शब्दस्य निष्पति. प्रतिष्ठार्थिनि धातुना ।

सताल. कालमानयत क्रि याया परिकल्पतम् ।। [2]

---

1 सगीत रत्नाकर – ताल अध्याय– कल्लिनाथ और सिहभूपाल की टीका

2 सगीत समयसार – पार्श्व देव – कुन्द कुन्द भारती दिल्ली प्रकाशन 8/2

अर्थात प्रतिष्ठार्थक (तल धातु से ताल शब्द की निष्पत्ति हुयी है । वह ताल क्रिया के द्वारा परिकल्पित काल मान है ।

"सगीतार्थव" ग्रन्थ मे ताण्डव (पुरूष) नृत्य 'ता'तथा लास्य (स्त्री) से 'ल' वर्णो के सयोग से ताल शब्द की व्युत्पत्ति दर्शायी गयी है –

ताण्डव स्यायवर्णोन लकारो लास्य शब्दमाक् ।
यदा सगद्वेते तथा ताल. प्रकीर्तित . ।।

नरहरि चक्रवर्ती कृत भक्ति रत्नाकर ग्रन्थ मे निम्न श्लोक 'रत्नमाला' से उदधृत किया गया है । 1 जिसके अनुसार 'त' कार शरजन्मा अर्थात कार्तिकेय 'अ' कार विष्णु एव लकार मारूत दन तीनो देवताओ द्वारा अधिष्ठित शब्द 'ताल' है ।

तकार: शरजन्मा स्यादककरौ विष्णु रूच्यते ।
लकारौ मारूतद्व प्रोक्तस्ताले देवा वरन्ति ते ।।

इसी प्रकार जगदेकमल्ल कृत सगीत-चूडामणि मे ताल निष्पत्ति के सम्बन्ध मे उपरोक्त मन्त्व्यो के समान इस प्रकार उद्धृत किया गया है :-

तालशब्दस्य निष्पत्ति प्रतिष्ठार्थी (थ्रे) न । [1]
गीत बाद्य च नृत्य नृत्त (न्य) च भॉति ताले धातुना प्रतिष्ठित. ।।

'ताल' शब्द की व्युत्पत्ति के सदर्भ मे उपलब्ध ग्रन्थो मे प्राय एक ध्वनि ही प्रतिध्वनित होती पायी जाती है । गायन, वादन और नृत्य सभी मे ताल की प्रतिष्ठा होने के कारण लयकारियो और जातियो का भी सगीत के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है क्योंकि सगीत मे रजकता और रसानुभूति उत्पन्न करने मे इनका महत्वपूर्ण योगदान होता है ।

वर्तमान सगीत के मूलाधार ग्रन्थ भरतमुनि कृत नाट्य शास्त्र मे सगीत मे सभी विधाओं के बीज रोपित किये गये है । जो कालान्तर मे पुष्पित पलल्लवित

होकर वर्तमान मे विकास रत है । लय जो इस जगत की शाश्वत क्रिया है इसमे प्रतिष्ठित ताल तथा ताल मे प्रतिष्ठित, गायन, वादन और नृत्य की परिकल्पना प्राप्त ग्रन्थो मे से सर्वप्रथम नाट्य-शास्त्र मे ही विस्तृत रूप से की गयी है । ताल क्या है ? इसके विषय मे नाट्य शास्त्र मे उदधृत है कि –

तालो धन इति प्रोक्त. कल पात लयान्वित. ।

कालस्य तु प्रमाण वैविज्ञेय तालयोक्तु भि ।।[1]

अर्थात ताल को धन कहते है कलापात और लय से युक्त कहा गया है । ताल का प्रयोग करने वालो को काल का प्रमाण निश्चित रूप से जानना चाहिये

सगीत रत्नाकर मे ताल के विषय मे कहा गया है :-

कालोलघ्वादि मितया क्रियया समितो मितिम ।[2]

गीतादेर्विधत्ताल. स च द्वैधा बुधै: स्मृत ।।

अर्थात लघु, गुरू, प्लुत, आदि शशब्द, निशब्द स्वेच्छा कृत क्रियाओ से नियमित की गयी और गीत आदि को सीमाबद्ध करने वाला 'ताल' होता है ।

सगीत-समय-सार मे ताल का महत्व बताते हुये उदधृत किया गया है कि –

गीत वाद्य च नृत्य च यतस्ताले विराजन्ते [3]

तस्मात्ताल स्वरूपं वक्ष्ये लक्ष्यानुसारत ।।

अर्थात गीत, वाद्य और नृत्यताल मे विराजित है अतः लक्ष्य के ताल कालक्षण वर्णनीय है ।

---

1 नाट्य शास्त्र चौखम्भा स0-31/1

2 नाट्य शास्त्र चौखम्भा स0 31/2

3 सगीत समयसार पार्श्वदेव – कुन्दकुन्द भारती प्रकाशन ।

वर्तमान सगीत मे समय नापने के साधन को 'ताल' कहते है जो अनेक विभागो और मात्राओ से बनती है । अमर सिह द्वारा लिखित अमर कोष मे 'ताल की परिभाषा ' ताल काल क्रियामानम' दी गयी है । मात्राये ताल की इकाई हैं। वे केवल लय की गति का ही बोध कराती हैं । गायक, वादक और नर्तक इसकी सहायता से सगीत मे लय की गति निश्चित करते हैं; कि असीमित लय के सागर मे न खो जाये । अत. गीतो आदि को लय मे गूँथने के लिये, अगणित मात्राओ मे कुछ विशेष सख्या की मात्राये लेकर, उन्हे विभागो मे बाँटकर, अवनद्ध वाद्यो पर प्रदर्शित करने के लिये स्थिति विशेष के अनुकूल सजाकर, ताल का निर्माण हुआ क्योकि लय मात्रा, और ताल का समन्वित रूप ही सगीत मे उपयोगी सिद्ध हो सकता है । इन तीनो का सम्बन्ध निम्नलिखित श्लोक मे बहुत सुन्दर ढग से व्यक्त किया गया है ।

लयःशोणित रूपेण, मात्रा नाड़ी स्वरूपतः

घाता.अवयवाश्चैव तालौ वै पुरूषाकृतिः ।

अर्थात ताल रूपी पुरूष का लय रक्त है, मात्राये अनेक नाडियो के समान है और आघात (बोल) अवयव हैं । ताल मे निहित लय और लय की विभिन्न गतियाँ लयकारी के रूप मे प्रस्तुत होती है ।

नाट्य शास्त्र मे प्रथम अध्याय मे वर्णित किया गया है कि भरतादि ऋषियो ने महादेव के सम्मुख जिस सगीत का प्रदर्शन किया उसे "मार्ग सगीत" कहा एव मार्ग सगीत मे पचमार्ग तालो के प्रयोग को मार्गताल की सज्ञा से विभूषित नही किया गया है । किन्तु नाटयशास्त्र के बाद के सभी ग्रन्थो मे दो प्रकार के सगीत का वर्णन मिलता है । जिसमें से प्रथम – मार्ग तथा द्वितीय देशी सगीत है । नाट्य शास्त्र मे वर्णित सगीत तथा मुख्यरूप से तालो को अन्य ग्रन्थो मे प्रथम श्रेणी के सगीत के अन्तर्गत रखा गया है ।

दमोदर पडित कृत सगीत दर्पण मे उदधृत किया गया है कि –

गीत वाद्य नर्तनच त्रय सगीतमुच्यते ।

मार्ग देशी विभागेन सगीत द्विविधमतम ।। [1]

अर्थात गीत, वाद्य तथा नृत्य, इन तीनो कलाओ का समुदाय वाचक नाम सगीत है । मार्गी तथा देशी सगीत के ये दो भेद माने गये हैं ।

ब्रम्हा जी के जिस सगीत मे शोध कर भरतमुनि ने महादेव जी के सामने जिसका प्रयोग किया तथा जो मुक्ति दायक है वहमार्गी सगीत कहलाता है ।

तद्देशास्थया यत्स्यात लोकानुरजनम ।

देशे देशेतु सगीत तथैशी त्यौमथीयते ।।[2]

जो सगीत देश के भिन्न भागो मे वहाँ के प्रचलित व्यवहार के अनुसार जनता का मनोरजन करता है वह देशी सगीत कहलाता है ।

सगीत चूडामणि मे देशी सगीत को परिभाषित करते हुये कहा गया देश–देश की जनरूचि के अनुसार प्रयुक्त किया गया सगीत, देशी सगीत कहलाता है ।

देशेषु देशेषु नरेश्रराणा क्युण्जिनानामपि वर्तते या ।[3]

गीत च वाद्य च तथा च तत्त (नृत्यं) देशीति नाम्ना परिकीर्तिता ।।

सगीत चूड़ामणि मे मार्गताल के अर्न्तगत – चचत्पुट, चाचपुट, षटपिता-पुत्रक, समपक्वेष्टाक और उध्द्ट तालो मेंरखा है तथा उन तालो के प्रकारो कालघु द्रुत आदि चिन्हो लक्षणों सहित विस्तृत वर्णन किया है ।

---

1. सगीत दर्पण दामोदर प० श्लोक संख्या–3

2 सगीत दर्पण दमोदर प० श्लोक सख्या – 4, 5

3 सगीत चूणामणि, जगदेक मल्ल – श्लोक सख्या– 3

इसी प्रकार सगीत रत्नाकर मे ताल दो प्रकार का कहा गया है । प्रथम–मार्गी द्वितीय – देशी।[1]

मार्ग ताल के अन्तर्गत पाँचताले–चचत्पुट, चाचपुट आदि बताया गया है। तथा उनकी क्रियाओ का विस्तृत वर्णन किया गया है। तथा देशी ताल के अन्तर्गत 120 ताले लक्षण सहित वर्णन की गयी हैं।

सगीत समयसार मे देशी ताल की और सकेत करते हुये इस प्रकार कहा गया है .–

अथ देशीगता मार्गी वक्ष्यन्ते लक्ष्य सम्भवत.।[2]

अर्थात लक्ष्य के अनुसार देशी सम्बद्ध मार्ग कहते है । सगीत समयसार, सगीत चूडामणि तथा सगीत रत्नाकर मे नाट्य शास्त्र की भाति ही नाम तथा लक्षण का वर्णन किया गया है ।

नाट्यशास्त्र[3] मे कला के काल को प्रमाण कहते है और यह ताल चतस्त्र और तिस्त्र भेद से अनेक प्रकार का होता है । इसे चचत्पुट और चाचपुट जानना चाहिये । चचत्पुट और चाचपुट की योनि रूप मे प्रतिष्ठित करके इससे षटपितापुत्रक, समपक्वेष्टाक और उद्घट्ट आदि ताले गुरू और लघु की सहायता से वर्णित की गयी है । चचत्पुट और चाचपुट तालो ही वर्तमान तालो के कृमिक विकास का आधार बनी।

नाट्य शास्त्र तथा सगीत रत्नाकर दोनो ही ग्रन्थो मे चतुस्त्र शब्द इन तालो की प्रकृति का बोध कराती हैं । जिनकी सम्पूर्ण कालावधि (कला या गुरू संदर्भ मे) चार है या चार से गुणा करने पर चार आठ और सोलह हो जाती है। तिस्त्र शब्द के अन्तर्गत उन तालो को उद्घटित करना है, जिनकी (कला या गुरू

---

1. संगीत रत्नाकर – शारगदेव – चौखम्भा सस्करण 3/5/4–17, 3/5/311
2. सगीत समयसार – 8/19
3. नाट्यशास्त्र– भरतकृत – चौखम्भा स0 31/17

सख्या) तीन कला होती है । यद्यपि 12, 24, 96 का अक 4 से भी गुणित होता है। इसी प्रकार नाट्य शास्त्र मे [1] मिस्त्र शब्द मिले हुये के अर्थ मे उदधृत हुआ है । जिसमे चतस्त्र और तिस्त्र तालो के सम्मिलन से जो ताल बनते है वह मिस्त्र ताल के अन्तर्गत आते है । 'खण्ड' शब्द सगीत रत्नाकर मे देशी ताल के सदर्भ मे उल्लिखित हुआ है । [2] इन देशी आदि तालो का चाचपुट आदि तालो से उद्भव हुआ है । उदाहरण के लिये प्रतिमथा ताल – 11S S 11 जो कि चचत्पुट से लिया गया प्रतीत होता है । सगीत रत्नाकर मे उदधृत "सकीर्ण" शब्द तथा नाट्य शास्त्र पर अभिनव गुप्त की टीका के इक्तीसवे अध्याय मे श्लोक सख्या 24–25 पर आधारित है। यद्यपि अभिनव गुप्त की टीका भरतकृत नाट्यशास्त्र मे कुछ विसगतियॉ है । फिर भी 'सकीर्ण' शब्द से आशय उन तालो से स्पष्ट किया गया है जो चतस्त्र और तिस्त्र तालों के अन्तर्गत नही आते । साथ ही इस शब्द का प्रयोग उन अर्थो मे भी नही हुआ है जिन अर्थों मे वर्तमान तालों मे प्रचलित है। नाट्यशास्त्र में ताल के 10 प्राणों का उल्लेख नहीं किया गया है किन्तु बाद के ग्रन्थो मे ताल की व्याख्या को स्पष्टता की ओर अग्रसर करने के लिये शास्त्रो में "ताल के 10 प्राण" का वर्णनकिया गया है। किन्तु 'ताल के 10 प्राण' शीर्षक के अनतर्गत इसका वर्णन या उल्लेख नही किया गया है ।

नाट्य शास्त्र मे ताल के तत्वो की विवेचना करते हुए यति , पाणि और लय ये ताल के अगभूत अवयव कहे गये है।

नाट्य शास्त्र , सगीत रत्नाकर, सगीत समयसार आदि ग्रन्थो मे 'ताल' के तत्वो की विवेचना तो की गयी है किन्तु "ताल के दस प्राण" या ताल के तत्व इत्यादि संज्ञाओं का उल्लेख नही किया गया है । संगीत चूडामणि मे "अथताल प्राण" इस प्रकार का उल्लेख है किन्तु ताल के प्राणो और तत्वो की विवेचना नही की गयी है ।

ताल के 10 प्राणो का स्पष्ट उल्लेख रस कौमुदी, सगीत दर्पण, सगीत मकरन्द , ताल छन्द आदि ग्रन्थो मे किया गया है :–

---

1 नाट्य शास्त्र – भरत कृत – चौखम्भा सस्करण 31/7,54

2 संगीत रत्नाकर 3/5/42 – शारगदेवकृत

कालो मार्गः क्रियागनि गृहो जाति. कला. लय [1]

यति प्रस्तार कश्चेति ताल प्राण दस स्मृता ।।

रस कौमुदी मे ताल के 10 प्राण के विषय मे इस प्रकार कहा गया है:

कालो मार्ग. क्रियागनिगृहो जाति. कला लय.।

यति प्रस्तार इत्युक्तिस्तालौ प्राण दस क्रमात।। [2]

सगीत मे — ताल ही यथार्थत. स्वरो को गति प्रदान करते है। "ताल" सगीत को एक निश्चित नियम या समय के बधन मे बाँधता है। जिस प्रकार जीवन मे निश्चित समय-क्रम तथा सुख-समृद्धि का अभाव है, उसी प्रकार ताल-हीन विश्रृखल सगीत मे सार्थकता नही । "ताल" सगीत मे विभिन्न सौन्दर्यपूर्ण चलन-शैलियो का विकास करता है, उससे सगीत के सयम की रक्षा होती है। "ताल" सगीत को अनुशासित कर उसके सुगठित रूप, स्थायित्व एवं चमत्कारिता से श्रोताओ को विभोर कर देता है। ताल के ही कारण प्राचीन एव वर्तमान सगीत को स्वर-लिपि एव बोल-लिपि द्वारा भविष्य के लिए सुरक्षित रखना संभव हुआ है। निश्चित ताल-गति के फलस्वरूप ही संगीत के क्रमिक आरोह, अवरोह, विराम आदि अत्यत प्रभावोत्पादक हो जाते है। तालो मे गति-भेद उत्पन्न कर रस-निष्पत्ति सभव होती है। करूण, श्रृगार, रोद्र, वीभत्स आदि रसो के लिये तालो की विभिन्न गतियो का बड़ा महत्व है । "नारदार्थ - रागमाला" मे कहा है कि जिस प्रकार देह मे प्रधान "मुख" है और मुख मे "नासिका", उसी प्रकार ताल- विहीन संगीत नासिका-विहीन मुख के समान है। गीत, वाद्य एव नृत्य की तुलना मदमत्त हाथी से कर, ताल को अकुश की उपमा दी गई है। जिस प्रकार बिना पतवार के नाव होती है, वैसे ही तालविहीन सगीत होता है।

साहित्य मे छद का एव सगीत मे ताल का जन्म स्वाभाविक रूप से हुआ है। आदिमानव ने कल-कल निनादिनी नदियो मे, निर्झरो के शाश्वत प्रवाह मे क्रमिक सूर्योदय व सूर्यास्त मे, ऋतुओ के नियमित चक्र मे, जीवन के क्रमिक

---

2 रस कौमुदी - 4/95

1 ताल छन्द - पृष्ठ 6 / सगीत मरकन्द--बडौदा सस्करण पुष्ठ 43

विकास मे इन्ही छन्दो या तालो का अनुभव किया होगा। इन्ही लयो की गति भाषा का आश्रय लेकर साहित्य में "छन्द" बन गई और "ताल" बनकर सगीत मे प्राण फूँकने लगी । मानव-सभ्यता के उदय के साथ ही हृदय की उत्तेजना और उल्लास व्यक्त करने का सफल माध्यम सगीत ही बना । ताल और लोक रूचि का घनिष्ठ सम्बन्ध है। लोक रूचि ही ताल स्वरूपो का निर्माण करती रही है। लोक रूचि के परिवर्तन के साथ ही प्रचलित तालो मे अन्तर परिलक्षित हुए है। चर्म वाद्यों के गम्भीर नाद से लय साम्य एव प्राचीन तालो का सृजन हुआ। करूण स्थितियो से सृजित रूदन मे स्वरात्मकता के कारण अप्रत्यक्ष रूप से सगीत का आविर्भाव हुआ। भवभूति के "एकोरस: करूण एव" या पन्त के "वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान, छलकते ऑसू मे चुप चाप, बही होगी कविता अनजान" सदृश्य शब्दो मे यह भाव मुखरित हुआ।

लयात्मकता या ताल स्वरूपो से विभिन्न रसो का निर्माण होता है । अति प्राचीन काल का ताल केवल एक निश्चित गति का चित्रण मात्र ही था, दो तीन या चार मात्राओ के व्यवधान मे मध्य लय, द्रुत या विलम्बित से अधिक विकसित कल्पना उस युग के मानव की नही थी। ताल वाद्यो की विविधता एव उनसे सृजित विभिन्न ताल ध्वनियो के आस्वाद से भी क्रमिक विकास होता रहा है । पृथक-पृथक वाद्यो का प्रयोग अलग-अलग समय मे समरूप तालो के लिये करना, मानव के रसिकमन और रुचि का परिचायक है । लोक रूचि से तात्पर्य कला में सुन्दर परिवर्तनो से है ।

संगीत-रत्नाकर के पँच मार्ग तालो मे समपक्वेष्टाक बारह मात्रा का तिस्त्र जाति मे एक प्राचीन ताल है । बारह मात्रे के किसी भी गीत या गत के लिये इस ताल का प्रयोग आज असम्भव नही है। इसके काल खण्ड 3/2/2/2/3 है किन्तु लोक रूचि यदि समान होती एव प्राचीन विद्वानो से वाद की पीढी के गायक, वादको की बुद्धि मे भिन्नता नही होती तो प्राचीन समपक्वेष्टाक ताल आज भी हमारे संगीत मे प्रचलित रहता और बारह मात्राओ के दूसरे तालो का प्रचलन

नही हुआ होता । शारगदेव के समय से ही दर्पण, कुडुक्क , सम मदन. , षप्तालः, रति तालः, सदृश बारह मात्रा वाले देशी तालो का निर्माण प्रमाणित करता है कि बारह मात्राओ के असख्य ताल रूचि एव आवश्यकतानुसार रचे गये और कालान्तर मे उनमे से अधिकाश का लोप भी हो गया । आज प्रचलित सगीत मे बारह मात्रा वाले न तो सगीत-रत्नाकर के मार्ग ताल ही है और न देशी तालो मे से ही कोई अवशिष्ट है । चार ताल, एक ताल,के विलम्बित ओर अतिविलम्बित स्वरूप लेकर आज के प्रचलित ध्रुपद, ख्याल, छोटे ख्याल, तराने, सरगम आदि की लयात्मकता का नियन्त्रण कर रहे हैं तथा रसाभिव्यक्ति करने मे सफल हो रहे है। लोक रूचि मे परिवर्तन होने का प्रमाण बारह मात्राओ के तालो मे ही नही अपितु न्यूनतम मात्राओ से लेकर अधिकतम मात्राओ के तालो मे विद्यमान है । "क्लिष्ट तालों" मे रचित सागीतिक रचनाये तो रूचि के प्रतिकूल होने पर नष्ट हो गई। प्रचलित सहज तालो का स्थान भी रूचि भेद के कारण अन्य सहज तालो ने ले लिया ।

लोक रूचि मे परिवर्तन के कारण है, सगीत के विकास केन्द्र । सगीत का विकास भारतवर्ष मे दो केन्द्रो पर हुआ । एक धर्म केन्द्र मन्दिरो मे, दूसरे राजा राजाश्रयो मे । मन्दिरो मे जिन गीत शैलियो का भक्ति रस पूर्ण विकास हुआ उनके लिये, उसी प्रकार की तालो के निर्माण की अवश्यकता हुई। मात्राओ के समान होते हुए भी सभी ताल किसी एक गीत शैली को ग्राह्य नही हुये बारह मात्राओ की चार-ताल, ध्रुवपद गायन के लिये प्राचीन काल से आज तक विद्यमान है और गीतो की कथावस्तु गम्भीर होने के कारण चार-ताल का खुला थापमय प्रयोग मृदग या तबले पर प्रिय लगता है। किन्तु राजाश्रय मे विशेषकर रीति कालीन राजाओ के दरबार मे श्रृंगार प्रियता के कारण उसी चौताल का प्रयोग श्रृगारपूर्ण बारह मात्राओं के गीतो मे अप्रिय प्रतीत हुआ । जिस प्रकार ध्रुवपदो का स्थान ख्याल ने ले लिया उसी प्रकार चार-ताल का स्थान एक-ताल ने ले लिया। खण्ड मात्रा, ताल, कला , क्रिया आदि समान होते हुए भी चार-ताल का परिवर्तित स्वरूप एक-ताल यह प्रमाणित करता है कि लोक यचि सगीत मे परिवर्तनशीलता की जननी है।

वर्तमान समय मे तालो[1] के प्रयोग विभिन्न लयो के आधार पर पृथक-पृथक होते है । झपताल, सूलताल, तीव्रा-ताल , दादरा , कहरवा आदि द्रुतगति मे ही अच्छे लगते है एव उनके प्रयोग तदनुरूप गायन शैली मे ही रसाभिव्यक्ति करने मे सफल होते है । इसी प्रकार त्रिताल, चौताल, एक-ताल, धमार जैसे ताल, मध्यलय एव तिलवाडा-ताल, झूमरा-ताल, पजाबी आदि ताले विलम्बित लय मे आनन्द दायी लगते हैं । आधुनिक समय मे गायन,वादन और नृत्य और ध्रुवपद,धमार अंग की गायकी के साथ धमार ताल , चार-ताल, सूलताल, तीवरा-ताल, लक्ष्मी-ताल, गणेश-ताल, ब्रम्ह-ताल , शिखर-ताल, अष्टमगल-ताल , जत-ताल, मत-ताल, गजझम्पा आदि तालें बजायी जाती हैं।

ख्याल अंग की गायकी के साथ बडे ख्याल मे एक-ताल, तिलवाडा ताल, आडा-चार ताल, पचम-सवारी, झूमरा-ताल, फरोदस्त आदि ताले बजायी जाती है। छोटे ख्याल के साथ तीन-ताल झपताल, रूपक आदि तालो का प्रयोग किया जाता है।

उपशास्त्रीय सगीत मे पजाबी, जत, टप्पा, धुमाली, खेमटा, पश्तो, कव्वाली, ठुमरी, आड़ा-खेमटा , रूपक आदि तालो का प्रयोग किया जाता है जोकि गायन , वादन, नित्य की शैली, प्रकृति, समय , अवसर, जनरूचि आदि के अनुसार लय और लय-कारियो का निर्धारण करते हुए रस निष्पत्ति करती हैं।

तालो के ठेके गायन शैलियो की प्रकृति के अनुसार सगत के लिये प्रयोग किये जाते है । सगतकार गायन, वादन, नृत्य की लय के अनुसार ठेके का वादन करते हुए ताल की खाली भरी की मात्राओ को दर्शाते हुए ताल की अन्तिम मात्राओ मे वादक कलाकार अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए , राग के स्वरो के अनुरूप बोलो का चयन करते हैं, जिससे कि अधिकतम रसनिष्पत्ति हो सके । तिहाइयो का प्रयोग करते हैं जिससे सगीत की प्रस्तुति अत्यन्त रोचक, अद्‌भुत रस से परिपूर्ण हो जाती है । सगति मे लय-बाँट, लग्गी लड़ी का प्रयोग, दुत गतो और ख्यालो में राग की चलन की स्पष्टता और रोचकता बढ जाती है । तालो के ठेके की किस्में , वादन मे लालित्य के साथ ही साथ चचलता, चपलता और श्रृगारिक भावो को उजागर करते हुए स्वर, लय और ताल के समिल्लन से रस की निष्पत्ति करती हैं ।

—

चार्ट- ... उत्तर भारतीय तालों के प्रचलित ठेके (उपलब्ध)

1- त्रिताल अथवा तीनताल

मात्रा --	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
ठेका --	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
	×				2				0				3			

2- एक ताल

मात्रा --	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
बोल--	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	ता	धागे	तिरकिट	धी	ना
	×		0		2		0		3		4	

3- झपताल

मात्रा --	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
	धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
	×		2			0		3		

4- दादरा

मात्रा --	1	2	3	4	5	6
ताली --	धा	धी	ना	धा	ती	ना
	×			0		

5- कहरवा

मात्रा --	1	2	3	4	5	6	7	8
बोल --	धा	गे	ना	ती	न	क	धी	न
	×				0			

6- चौ ताल

मात्रा --	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
मात्रा--	धा	धा	दीं	ता	किट	धा	दीं	ता	तिट	कत	गदि	गन
	×		0		2		0		3		4	

7- तीव्रा

मात्रा -- 1 2 3 4 5 6 7
बोल -- धा दिं ता | तिट कत | गदि गिन |
x 2 3

8- तिलवाड़ा

मात्रा -- 1 2 3 4 | 5 6 7 8
बोल -- धा तिरकिट धिंन धिं | धा धा तिं तिं |
x 2

9 10 11 12 | 13 14 15 16
ता तिरकिट धिं धिं | धा धा धिं धिं |
0 3

9- दीपचन्दी या चाचर

मात्रा -- 1 2 3 | 4 5 6 7 | 8 9 10 |
बोल -- धा धिं ऽ | धा धा तिं ऽ | ता तिं ऽ |
x 2

11 12 13 14
धा धा धिं ऽ |
3

10- सूलफाक्ता अथवा सूलताल

मात्रा — 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
बोल -- धा धा | दिं ता | किट धा | तिट कत | गदि गिन |
x 0 2 3 0

11- रूपक

मात्रा -- 1 2 3 | 4 5 | 6 7 |
बोल -- ती ती ना | धी ना | धी ना |
x 2 3

12- ताल सवारी

मात्रा -- 1 2 3 | 4 5 6 7 |
बोल -- धा तिरकिट धीना | क्ता धीधी नाधी धीना |
x 2

8 9 10 11 | 12 13 14 15
तीन तीना तक्ता तिड़नग | क्ता धीधी नाधी धीना

13- आड़ाचौताल

मात्रा -- 1 2 | 3 4 | 5 6 | 7 8 |
ठेका -- धिं तिरकिट | धीं ना | तूं ना | क ता |
X 2 0 3

9 10 | 11 12 | 13 14 |
तिरकिट धीं | ना धीं | धी ना |
0 4 0

14- ताल झूमरा

मात्रा -- 1 2 3 | 4 5 6 7 | 8 9 10 |
ठेका -- धीं धां, तुक | धीं धीं धागि तुक | तीं ता, तुक |
X 2 0

11 12 13 14
धीं धीं धागि तुक | ता0
3

15- ताल धमार

मात्रा -- 1 2 3 4 5 | 6 7 | 8 9 10 |
[illegible] -- क धिट ट धि ट | धा S | क ति ट |
X 2 0

11 12 13 14
ति ट ता S | पखावज
3

16- मत्ताल

मात्रा -- 1 2 | 3 4 | 5 6 | 7 8 | 9 10 |
ठेका -- धा S | धि ट | न क | धि ट | न क |
X 0 2 3 0

11 12 | 13 14 | 15 16 | 17 18 |
ति ट | क त | गे दि | गि न |
4 5 6 0

17- ताल गजझम्पा

18- ताल शिखर

मात्रा -- 1 2 3 4 5 6 7 8 9

ठेका -- धा तुक धिन नक धुं गा | धिन नक धुम
x 2

10 11 12 13 14 15 16 17

कट तक धेत | धा तिट | कत गदि गिन |
3 4

19- फरोदस्त ताल

मात्रा -- 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

बोल -- धिं धिं | धागे त्रक | तू ना | क त्ता | धात्र धिंगा
x 0 2 0 3

11 12 13 14

नग धात्र | कधि नग |
4 5

20- पंजाबी त्रिताल

मात्रा -- 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11

बोल-- धात धीं क धा | धा धीं क धा | ता तीं क
x 2 0

12 13 14 15 16

तां | धा धांधी धिं धा |
3

21- अद्धा ताल

मात्रा -- 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11

बोल-- धा आ धि न | धा धा ति न | ता तां ति
x 2 0

12 13 14 15 16

नूं | धा धा धि नूं |
3

22- टप्पा ताल

मात्रा-- 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12

बोल -- धीं त धीं ता | धीं त धीं ता | क त कत ता |
x 2 0

13 14 15 16

धीं त धीं ता |

23- लक्ष्मी ताल

मात्रा --	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
बोल--	धि	न्नक |	धि	धा |	धिं	धिं |	धा	धा |	तू	ना |
	x		0		2		3		0	

मात्रा	11	12	13	14	15	16	17	18
बोल	क	ता |	त्रक	धिं |	ना	धिं |	धि	ना |
	4		5		6		0	

24- ब्रह्मताल

मात्रा --	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
बोल --	धा	- |	ता	- |	धा	- |	दि	न |	ता	- |	कि	ट |
	x		0		2		3		0		4	

मात्रा	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22
बोल	धा	- |	धिं	- |	तां	- |	धा	- |	ति	ट |
	5		6		0		7		8	

मात्रा	23	24	25	26	27	28
बोल	क	त |	ग	दि |	ग	न |
	9		10		0	

25- अष्टमंगल ताल

मात्रा --	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
बोल --	धा	ऽ	कि	ट |	त	क |	धु	म	कि	ट |	त	क |
	x				2		3				4	

मात्रा	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22
बोल	धे	त्रे	ता	ऽ |	क	त |	ग	दि |	गि	न |
	5				6		7		8	

26- गणेश ताल

मात्रा --	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
बोल --	धा	धिं	ता	धिं |	ता |	किट	धा	दि	ता |	तिरकिट |	धटधा |
	x				2	3				4	5

मात्रा	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21
बोल	धाग	धा	दि	ता |	क्ता |	धागे |	तेटे |	क्ता	गदि	गन |
	6				7	8	9	10		

27- त्रिपुट ताल

मात्रा--	1	2	3	4	5	6	7	8
बोल--	धाधी	तिरकिट |	धाधी	धा |	धाधी	तिरकिट |	ताधी	धा |

28- झूमाली ताल

मात्रा -- 1 2 3 4 5 6 7 8

बोल -- धा धिं | धा ति | तक धि | धागे तिरकिट |
x 2 0 3

29- झंपटा ताल

मात्रा -- 1 2 3 4 5 6

बोल -- धागे धिन गिन | तागे तिन किन |
x 0

30- पश्तो ताल

मात्रा -- 1 2 3 4 5 6 7

बोल -- ति ऽ नक | धि ऽ | धा गे |
x 2 3

31- कव्वाली ताल

मात्रा -- 1 2 3 4 5 6 7 8

बोल -- धा धी धाधा तिं | ता ति धाधा धि |
x 2

32- ठुमरी ताल

मात्रा -- 1 2 3 4 5 6 7 8

बोल -- धा धा | गे तिं | ता धा | गे धिं |
x 2 0 3

33- आड़ा झंपटा

मात्रा -- 1 2 3 4 5 6 7 8

बोल -- धा तिरकिट धिन | धा धा तिन | ता तिरकिट
x 2 0

9 10 11 12

धिन | धा धा धिन |
3

चतुर्थ अध्याय

लय छन्द ताल और रस –

छन्दो का आर्विभाव प्रथमत. वेदो मे ही हुआ है । ऋग्वेद, सामवेद अथर्ववेद और यजुर्वेद की रचनाये छन्दोवद्ध है। सामगान ध्रुवागान आदि छन्द द्वारा ही प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं । वैदिक छन्दो मे मात्राओं का महत्व था। मात्राओ के आधार पर अक्षरो तथा पादो की रचना की गयी है । लौकिक छन्दो मे केवल अक्षर संख्या ही आधार होती है । ऋग्वेद सहिता मे अक्षरो के ऊँच-नीच स्वरो की कल्पना की गयी है । वैदिक काल मे गान. छन्दो के अनुसार लघु, गुरू कृत होता था तथा उसकी निश्चित क्रम सख्या (लघु गुरू कृत) होती थी। वैदिक काल मे लघु गुरू नियम के अनुसार अक्षरगण बने तथा निश्चित लघुगुरू मात्रा के अनुसार यति स्थान बनाये गये ।

छन्द शास्त्र का विस्तृत विवेचन पिगलमुनिकृत "छन्द सूत्रम" व "प्राकृत छन्द सूत्रम" मे मिलता है । "छन्द" का अर्थ "बन्धन" है । छन्द शब्द लय बद्ध है । इस शब्द की उत्पत्ति अनुस्वारित "छ" के बाद "द" शब्द के सयोग से हुयी है । अच्छरोच्चारण मे "छ" (गुरू) द (लघु) द्वारा लय बद्धता कायम करने वाला और काल मापक "छन्द" है । ध्याने की स्वर एवं अक्षर वद्ध रचना गति, यति, मात्रा, गण और लय द्वारा निश्चित होती है । इस प्रकार लय, वर्ण और मात्रा के व्यवस्थित और सुनियोजित अनुपात का नाम 'छन्द' है ।

नाद की उत्पत्ति प्रसार एव ग्रह्यता को नियमित और निरन्तर किया जाय तो वह लय बन जाती है इसी लय द्वारा छन्द और तालों की उत्पत्ति सम्भव है। भरत मुनि ने नाद और लय के सम्बन्ध को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि "छन्दहीनों न शब्दों अस्ति नच्छन्द श्शब्द वर्जितम्" अर्थात ऐसी कोई ध्वनि रचना या शब्द रचना नहीं है जो कालमान से अलग हो , ऐसा कोई कालमान नहीं जो शब्द रचना या ध्वनि रचना के बिना समझा जा सके । "छन्द" शब्द मूलतः लय बद्ध है । "मन को अल्हादित करने वाला" इस अर्थ मे इस शब्द की रचना हुयी है । छन्द की आत्मा लय एव प्रवाह है । यही लय और प्रवाह सगीत रूपी रथ के दो पहिये हैं ।

[1]नाट्यशास्त्र में छन्द के विषय मे वर्णन करते हुये कहा गया है "छन्द हीन शब्द नही और शब्द से रहित छन्द नही होते । [2] पादभेद के आधार पर छन्द 26 प्रकार के बताये गये है ।[3]पाद के भेद तीन प्रकार के बताये गये है 1- सम 2- अर्धसम 3- विषम इसके पश्चात छन्द और उनके वृत्तों का वर्णन किया गया है । [4]

पिंगल मुनि द्वारा रचित छन्द शास्त्र मे कुल एक सौ नब्बे वैदिक छन्दो का उल्लेख है। इनके लक्षणों का भी वर्णन है । इसमे कुल 669 वृत्तो का लक्षण सहित वर्णन किया गया । [5] छन्द शास्त्र का अध्ययन, पिगल मुनि के छन्छ शास्त्र के अध्ययन के बिना अपूर्ण है । इस ग्रन्थ मे छन्द के विषय मे अत्यन्त सूक्ष्म अध्ययन किया गया है । प्रथम अध्याय मे गण आदि की भाषा गणो के गुण, दोष, अपवादादि का वर्णन, लघु, गुरू की सज्ञा का विवेचन, लघु, गुरू संकेत रेखा आदि का लक्षण तथा लघु, गुरू के सम्बन्ध मे अपवाद आदि मतों का उल्लेख किया गया है । अष्टम अध्याय मे गाथा, प्रस्तार, नष्ट, उदिष्ट, मात्रा, प्रस्तार, मात्रा मेरू आदि का वर्णन किया गया है ।

ताल एवं छन्द का सम्बन्ध :

वेदों में उल्लिखित छन्दों मे यद्यपि क्रिया, मार्ग , खाली इत्यादि नहीं होती तथापि स्वरांग, मात्रामान, खण्ड, यति स्थान, गृह आदि का स्पष्टीकरण है तथा इसके अनुसार कालाभिव्यक्ति जाति , यति, प्रस्तार भेद आदि का प्रमाण मिलता है । इन्हीं नियमों के अनुसार श्लोक कालबद्ध होते थे ।

छन्दो के वैदिक तथा लौकिक ये दो भेद पिगल सूत्र में बताये गये है लौकिक छन्द केवल अक्षर संख्या पर आधारित होते है । इन अक्षरों के क्रम

---

1 ना0शा0-चौखम्भा सस्करण 15/1-119 श्लोक स0 तक

2 ना0शा0-चौखम्भा सस्करण - 15/39 श्लोक सख्या

3. ना0शा0 - चौखम्भा संस्करण- 15/38 श्लोक संख्या

4 ना0शा0-चौखम्भा सस्करण- 15/40-82 श्लोक संख्या तक

5 पिगल मुनिकृत- छन्द शास्त्र

को लघु गुरू के अनुसार गण मानकर आधार बनाया गया है और उनका मापन लघु, गुरू के आधार पर किया जाता है । वर्णिक छन्द का अक्षर सख्या के आधार पर तालो से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है । मात्रा मान के आधार पर भले ही वह ताल के कई आवर्तन के सयोग से सही बैठे .–

छन्द का नाम	अक्षर काल	मात्रा सख्या × आवर्तन	
मायत्री	–	24	12×2 या 6×4
उष्णिक	–	28	14×2 या 7×4
अनुष्टुप	–	32	16×2 या 8×4
वृहति	–	36	18×2 या 12×3
पक्ति	–	40	10×4
त्रिष्टुभ	–	44	11 × 4
जगति	–	48	16×3 या 12×4

पक्ति छन्द के तडित गति, मत्ता , चपक माला आदि नाम भी दिये गये है । इसी प्रकार अन्य छन्दो के उदाहरण दिये जा सकते है वर्तमान हिन्दुसतानी सगीत पद्धति के तालो मे हृस्व , दीर्घ अक्षरों के अनुसार लघु, गुरू का मात्रा काल मान्य नही किया जाता । मात्रा काल के अनुसार अक्षरो का उच्चारण होता है जैसे .– धा धि धिं धा – या चार मात्रा काल है । धा गे न ति नक धिन को आठ मात्रा मानते हैं । लघु, गुरू के अनुसार इस ताल के ठके की मात्राये SSIIIII = 10 होगी । अत प्राचीन वर्णिक छन्दो क अक्षरानुसार, उनकी मात्रानुसार वर्तमान उत्तर भारतीय ताल पद्धति के ठेके को बैठाया जाता है । बर्णाक्षरो के अनुसार छन्दो की मात्राये जान कर ही उतने मात्रिक काल का ताल हम बजा सकते हैं। छन्दो के सम और विषम चलन को, ताल की लय के अनुसार अर्थात ताल की निश्चित गति के अनुसार, सम चलन, विषम चलन या लय में प्रयोग किया जाता है ।

मुक्तक छन्द मे मात्राये या अक्षर निश्चित नहीं होते तथापि यति स्थान का ध्यान रखा जाता है । इस यति स्थान के आधार पर ही मुक्तक छन्दो में ताल धारण किया जा सकता है ।

छन्द के गणों और ताल के बोलों का सम्बन्ध .–

यदि हम छन्द मे प्रयुक्त होने वाले गणो के आधार पर, वर्तमान ताल शास्त्र मे वर्णित. बोलो की रचना करेगे तो हमे लघु (1) के स्थान पर हृस्व तथा गुरू (S) के स्थान पर दीर्घ अक्षर लिखने होगे ।

गण का नाम	गण वर्ग	गण चिन्ह
यगण	यमाता	ISS
मगण	मातारा	SSS
तगण	ता राज	SSI
रगण	राजमा	SIS
जगण	जभान	ISI
भगण	भानस	SII
नगण	नशल	III
सगण	सलगा	IIS

उपरोक्त के अनुसार यदि हम तालो के बोलो का सम्बन्ध गणों के आधार पर करे तो कुछ ताल तो (जिनके बोलो में दीर्घ अक्षर ही है) ताल की द्विगुणित मात्रा काल के बन जात है किन्तु जिन तालो मे हृस्व और दीर्घ दोनो अक्षर (वर्ण) है उनकी मात्राओ मे अन्तर हो जाता है ।

ताल दादरा ·– धा धी ना । धा तीना । = मात्रा 6

S S S S S S । = मात्रा 12

मा ता रा / मा ता रा / = मगण मगण

झपताल :

धी ना । घी घी ना । ती ना । धी धी ना। = 10

S S S S S S S S S S = 20

माता। रा मा ता । रा मा । ता रा गु । ममम ग ।

कहरवा :

धागे न ति । नक धिन । = 8 मात्रा

S S I I / I I I I / = 10 मात्रा

ता रा ज न । स ल ल ल । = त, न, ल़, ल ।

इस प्रकार हम यदि वर्तमान तालो के निश्चित बोलो (ठेके) को गणो के अनुसार बैठाने का प्रयास करे तो वह प्रयास कुछ तालो मे वर्णिक और कुछ तालो के सदर्भ मे मात्रिक आभास होगा। ताल के इन बोलो के छन्दो को मात्रिक छन्द न मानकर वर्णिक छन्द के अन्तर्गत मानने से इन तालो की लघु, गुरू की असगतियाँ दूर हो जाती है।

मात्रिक छन्द जिनमे विभिन्न मात्रिक ताला का निर्वाह सहज हो उन्हे हम मात्रिक छन्द भी कह सकते है । इन छन्दो के पाद मे 4, 4 मात्रिक, 4–3 मात्रिक, 5–4 मात्रिक , 5–5 मात्रिक, 6–6 या 3–3 आदि मात्रिक खण्डो का सृजन होता है । वर्तमान तालो का प्रयोग अवनद्ध वाद्यों पर होता है इसलिये ताल के ठेके और अवनद्ध वाद्य का आपस मे अभेद्य सम्बन्ध है । छन्दो मे समान वर्ण सख्या या मात्रा सख्या होने पर भी उनके गण एव मात्रा खण्डो के आधार पर या लय धारणा के आधार पर छन्दो की अलग–अलग मान्यता है। उसी प्रकार तालो में भी समान मात्रा होने पर भी वे अलग–अलग माने जाते है।

किसी छन्द का किसी ताल के साथ सम्बन्ध स्थापित करते समय छन्द, अक्षर, संख्या और लघु , गुरू के अनुसार मात्रा संख्या का ध्यान रखना आवश्यक है तथा उच्चारण, बल, कर्षण आदि बातों को भी महत्व देना आवश्यक है। प्राचीन छन्द के हृस्व दीर्घ अक्षर तथा लघु , गुरू का काल जो मात्रिक तथा दो मात्रिक होता था वह वर्तमान ताल पद्धति मे लागू नही होता । पद्य की कुल मात्रा सख्या (हृस्व, दीर्घ और लघु, गुरू) ताल के चुनाव के लिये पर्याप्त नही है विशेष छन्दों में विशेष तालो का सम्बन्ध स्थापित करते समय छन्द की अक्षर सख्या, कुल मात्रा संख्या , उच्चारण , बल, यति, स्थान. आदि के साथ छन्दो मे प्रयुक्त हृस्व दीर्घ अक्षर काल तथा उसी के अनुसार लघु, गुरू काल का वर्तमान मात्रा काल मे सामन्जस्य स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक होगा।

इस प्रकार लघु, गुरू मात्राओ के सयोग से सगीत छन्द का भी प्रदर्शन होता है । सगीत छन्द मे अक्षरों के हृस्व व दीर्घ रूप स्थिर नहीं होते तथा गायन शैली के अनुसार हृस्व का दीर्घ या दीर्घ का हृस्व स्वरूप भी ग्राह्य होता है । गीत भी निश्चित सगीत छन्द या ताल मे निबद्ध होते है किन्तु उसमें आलप्ति या

कौशलपूर्ण कलात्मक अभिव्यक्तियो मे प्रतिबन्ध नही रहता एव उस समय सगीत छन्द केवल एक निश्चित समय के आवर्तन का द्योतक मात्र बन जाता है । सगीत छन्द मे सामयिक छन्दान्तर एव अलकारिक प्रयोग सम्भव है । विराम छन्द वैचित्र का एक अभिनव साधन है । सगीत मे छन्द एक निश्चित ठेके के समान है किन्तु इसके सहस्त्रों प्रकार किये जा सकते है। वैदिक काल मे जो गायन, वादन प्रचलित था , वह छन्दों पर ही आधारित था। कवि जब अपने भावो को (मात्रा गण, यति, लय) से बद्ध करता है तभी रस निष्पत्ति होकर पद्यों की स्वर बद्ध रचना गीत कहलाती है । सगीत एक कला है जो पूर्णत मानवमन से सबध रखती है जिस प्रकार काव्य को रस भाव प्रकट करने मे तथा आल्हदकारी बनाने मे छन्द का महत्व है । इसी प्रकार उन्ही छन्दो के नियमो (यति, गति, मात्रा वर्ण, लय) अर्थात छन्दो का सगीत को मनोरजक बनाने मे महत्व है । चाहे काव्य हो चाहे सगीत हो दोनो मे लय का अत्यन्त महत्व होता है । छन्दो का सगीत से अटूट सम्बन्ध है । छन्द लय के आधार पर ही नाद विधान टिका हुआ है । छन्दो मे प्राण प्रतिष्ठा करने वाला यही (लय) तत्व है । अतएव छन्द और लय एक दूसरे के पूरक है। तात्पर्य यह है कि छन्द योजना अपने मूल मे लय बद्ध है स्वर के बिना लय और लय के बिना स्वर की कल्पना नही की जा सकती क्योंकि छन्दों का लय से और लय का संगीत से प्रगाढ सम्बन्ध है । छन्द और ताल सगीत मे चमत्कार पूर्ण प्रस्तुतीकरण के द्वारा आनन्द की अनुभूति को उत्पन्न करता है । जिस प्रकार साहित्य शास्त्र मे अभिधा, व्यजना, लक्षणा आदि शब्द शक्तिया है उसी प्रकार ताल द्वारा सगीत मे प्रतिभा सम्पन्न कलाकारो के द्वारा छन्द , चलन शैलियों का सृजन एवं विकास होता है । मौलिक तत्वों से समन्वित होकर उनकी कला चौगुनी प्रभावोत्पादक शक्ति से समृद्ध होती है। गीत में ताल की इन्हीं चलन-छन्द शैलियो के द्वारा कुशल गायक "ठुमुक चलत रामचन्द्र" जैसे गीतों मे रामचन्द्र का ठुमकना साकार कर देते है । "मुबारकवादियाँ शादियाँ तो हे दीन्ही" में शादी क मुबारक बादियाँ के माध्यम से श्रृंगारिक लयात्मक चलन छन्दो का अपने संगीत में निर्माण करते हैं। इन्हीं चलन छन्दों का साक्षात्कार रस प्रधान मालकौस के श्रृंगार रसपूर्ण गीत" मुखमोर मोर मुसकात जात" श्रोताओं को होता है जिसमे अभिसारिकाओ के चंचल हृदय, नेत्र, मुखछटा आदि का सजीव वर्णन हुआ

है । तालो के विभिन्न चलन छन्द, गीत के छन्दो मे प्राणो का सचार कर देती है । चलन छन्दो के इन्ही मौलिक प्रयोगों के फलस्वरूप भारतीय सगीत के राग और उनके गीत कभी पुराने नही होते । सगीत मे छन्द वैचित्र लय गति मे परिवर्तन करके, अनेक प्रकारो को प्रस्तुत करके भी उत्पन्न किया जाता है । साधारणत. सवाई, ड्योढ़ी, पौने दो गुनी, दुगुनी, लय गतियो का प्रयोग कुशल गायक, वादक प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार सवाई लय को द्विगुणित कर अढाई गुन, चतुर्गण कर पाँचगुनी, डयोढ़ी का दुगुन त्रिगुन, इसी लय का चौगुन छ गुन, पौने दो गुन का दुगुन, साढ़े तीन गुन, इसी लय का आठ गुनी लय मे प्रत्यक्ष प्रदर्शन सगीत मे सम्भव होते है । इन डयोढी , सवाई और पौने दो गुन की गतियो को क्रमश आडी , कुआडी विआडी लय कहते हैं।

सगीत मे छन्द वैचित्र उत्पन्न करने के लिये तालघात मे परिवर्तन भी किया जाता है । किसी ताल के निश्चित ताल घातो को बदलकर अस्थाई रूप से पृथक घातो का निर्माण किया जाता है। जैसे . झपताल के तालघात क्रम 2/3 2/3 को बदलकर 3/2/3/2 का स्थाई रूप से प्रादुर्भाव किया जाय या 3/4 के घातो को बदलकर 4/3 का घात अस्थायी रूप से दे दिये जाय तो निश्चित मात्राओ का निर्वाह होते हुये भी घात परिवर्तन के फलस्वरूप सगीत छन्द मे विचित्रता का निर्माण होगा । झपताल या सूल ताल की 10 मात्राओ का निर्वाह घात परिवर्तन द्वारा अस्थायी प्रयोगो 2/4/4, 4/4/2, 4/2/4, 3/3/4, 3/4/4, 4/3/3 द्वारा एवं पुन: निश्चित ताल घातो पर प्रत्यावर्तन द्वारा असख्य विचित्र छन्द रूपो का निर्माण सम्भव होता है ।

कुशल गायक जिस प्रकार रागों का तिरोभाव, आर्विभाव कर रसिक श्रोताओं को अलौकिक आनन्द देत है उसी प्रकार कुशल तालज्ञ बोलो का तिरोभाव कर श्रोताओ को लयवैचित्र का अलौकिक आनन्द प्रदान कर सकते हैं।

किसी मात्रा पर अक्षर का उच्चारण न कर लय वैचित्र का सृजन सम्भव होता हे । मात्राओं की आंशिक विश्रान्ति या विराम को प्रचलित भाषा में "दम" कहते है तबला और मृदग वादक द्वारा आदि और अत में जो दमदार या वेदमदार छन्दों का प्रयोग होता है उसका आधार विराम ही है ।

किसी–किसी अक्षर को अधिक काल तक स्थिर रखते हुए या मीड गमक आदे के द्वारा अक्षर को कौशलपूर्ण रीति से दीर्घता देते हुये भी छन्द वैचित्र का प्रदर्शन सगीत मे प्रतिभा का द्योतक होता है । कुशल गायक ऐसे अनेक प्रयोग करत है उदाहरणार्थ – कामोद के छोटे ख्याल "कारे जाने न दूँगी" मे "रे" के दो अवग्रहो को बढाकर या अवग्रहादी को बढाकर या अवग्रहादि हटाकर "जाने ने न दूँ" आदि में काल्पनिक अवग्रह जोडकर सम के स्थान को बदलकर "गी" मे सम न लेते हुये "ने ना दूँ" आदि मे सम लेकर अनेक छन्द वैचित्रयो का निर्माण कुशल गायक करते है ।

उच्चारण की शैली मे अन्तर करने पर भी छन्द वैचित्र का प्रादुर्भाव होता है। उच्चारण मे प्रबलता की क्रिया को "प्रस्वन" कहते है । सगीत छन्द के सम और विषम दो भेद है । जिस छन्द मे मात्रा अक्षर अथवा स्वरो का सम अथवा जोडी मे प्रयोग होता है उन्हे सम छन्द कहत है जैसे दुगुन, चौगुन, अठगुन आदि। विषम छन्द उन्हें कहते हे जिनकी गति वक्र हो व समता का अभाव हो । आडी, कुआडी , विआडी जो गतियॉं है वे विषम छन्द कहलाती है । भाषा विज्ञान का यह तथ्य माननीय है कि स्वरात्मकता से पूर्ण या प्रबल या दुर्बल उच्चारण शैली के आधार पर भी छन्द वैचित्र उत्पन्न हो सकता है । इसी आधार पर सगीत मे भी लय वैचित्रय का प्रादुर्भाव भी सम्भव हो सकता है ।

गति परिर्वतन के फलस्वरूप सगीत के छन्दो के उदाहरण त्रिताल के प्रथम चार बोलो का आधार लेकर निम्नवत् है .–

सम गति – धा धि धि धा

सवाई गति – 1234 धा   SSS धि S   SS धि SS   S धा SSS
                   1   2   3   4

पौन दो गुन – 1234Sधाऽ, SSधि SSSधि SSSधा SSS

दुगुन – धाधि धिधा

अढाई गुन – धा Sधि Sधि Sधा S धा S

तिगुन – धाधिधि धा धा धिं

चौगुन – धाधिधिधा,

पाँचगुनी – धाधिधिधा धाधि –

सातगुनी – धाधि धिधा धाधिधा,

आठ गुनी – धाधिधिधा धाधि धिधा,

जिस प्रकार द्रुत गति का लयात्मक स्वरूप क्रमश उपरोक्त भिन्न-2 गतियो में वर्द्धित होता है उसी प्रकार गति को विलम्बित करने का उदाहरण निम्न है –

3/8 ।धाSSSSSSS धिSSSSSSS धिSSSSSSSधिSSSSSSS

4/8 धा S धि S धि S धा S
1 2 3 4 5 6 7 8

5/8 ।धाSSS SSSSधि SSSSS SSधिSSSSSSS

3/412धा SSS धिSS SधिS SSधा SSS

7/8 1234 धा SSS SSSSधिSS SSSSSधिS SSSSSSSधा SSSSSSS – –

इस प्रकार सगीत मे छन्द , ताल गीत और राग का धनिष्ठ सम्बन्ध है । किसी काव्य की लय धारणा मे छन्द, लघु, गुरू के आधार पर मान्य किया जाता है। किन्तु उसी काव्य को सगीतबद्ध करने का धारण कराने वाला छन्द ताल बनकर , सगीत मे लगने वाले समय को नापने का साधन बना कर उसे नियत्रित करता है । इस प्रकार छन्द और ताल दोनों समय मापक है। दोनो का उद्देश्य रजकता उत्पन्न करना है । इनकी ईकाइयाँ ह्स्व, दीर्घ एव लघु गुरू मे काल का और शब्दो का अन्तर मात्र होने से दोनों अलग हैं।

सगीत मे लय, ताल और छन्द रूपी सयम ही यह नियन्त्रित करता है कि विलम्बित गायन, वादन या नृत्य इतना विलम्बित न हो जाये कि रस निष्पत्ति ही सम्भव न हो और न इतना द्रुत हो जाये कि गति की चका चौध मे कला का सौष्टव नष्ट हो जाये । इसी नियत्रण के कारण सतुलित, सयमित अलाप, तान, वोल, आदि विभिन्न क्रियाओं की अभिव्यक्ति सम्भव होती है ।

रवीन्द्र नाथ जी ने काव्यगत छद तथा सगीतिक ताल , लय की मीमांसा तुलनात्मक दृष्टि से की है । काव्य में छद का जो कार्य है – गान मे ताल का वही कार्य है । अतएव छंद जिस नियमसेकविता मे चलता है – ताल उसी नियम से गान मे चलेगा । वे ताल की अपेक्षा लय को अधिक महत्व देते हुए कहत हैं– "कविता में जो छद है सगीत मे वह ही लय है – अतएव क्या काव्य में, क्या गान

मे, इस लय को मानू तो ताल के साथ विवाद होने पर भी डरन की कोई जरूरत नहीं है ।

लोकगीतो के छदो मे लयात्मकता ही अधिक है – गीत की लय मे भी लोक गायक धुन बनाता है । इस धुन निर्माण मे लय की प्रधानता होने पर भी शब्द न्यास के साथ सामजस्य स्थापित करने मे जो स्वराघात, के अनुसार विभाग हो जाते है । वही लय ﴾' . ताल मे परिणित हो जाती है ।

स्वराघात –

सगीत मे गायक अथवा गायिकाये जिस वर्ण अथवा स्वर पर जोर देते है उसे ही स्वराघात कहते है ।' छन्द एव ताल विश्लेषण के लिए इन स्वराघातो का विशेष महत्व है । गीतो के चलन और मात्राओ का प्रमाण इन्ही स्वराघातो से मिलता है । ढोलक अथवा डफ वादनमेइन स्वराघातो पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। यद्यपि उसे ताल और मात्राओ का शास्त्रीय ज्ञान नही होता फिर भी अज्ञात रूप से इन्ही स्वराघातो के प्रमाण पर ताल बजते आये है ।

लोकगीतो के छन्द में गति और यति का विशेष महत्व है और यह गति और यति ही ताल के निर्माण मे विशेष महत्त्व रखती है । गति, यति और स्वराघात के आधार पर ही किन्हीं गीतो मे दो, तीन, चार मात्राओं पर किन्ही गीतो मे पाँच, छह, सात मात्राओ पर स्वराघात होता है। जिन गीतो मे दो, चार और आठ पर स्वराघात प्राप्त होता है । वे साधारणतया आज के शास्त्रीय कहरवा ताल में निबद्ध होते है । जिन गीतो में तीन और छह मात्राओं पर स्वराघात होता है वे दादरा ताल से सम्बद्ध होते है । दो, तीन और चार के सयोग से पाँच मात्रा ओर सात मात्रा के तालो का निर्माण हुआ। इसी के आधार पर कुछ गीत झपताल (5×2) गीत दीपचंदी ताल (7×2) मे मिलते है ।

इस प्रकार लोकगीतो मे प्रमुखतः चार मात्राओ अथवा आठ मात्राओ (कहरवा), छह मात्राओ (दादरा), दस मात्राओ (झपताल), चौदह मात्राओ (दीपचदी), तथा कभी–कभी बारह मात्राओं (खेमटा) का प्रयोग होता है ।

काव्यशास्त्र मे जिस प्रकार दोहा, चौपाई, हरिगीतिका, सोरठा आदि मात्रिक छन्दो का प्रयोग अधिकाश रूप से प्राप्त होता है जिन्हे अशिक्षित जनता भी सहज ही याद कर लेती है । उसी प्रकार सगीत मे कुछ ताल ऐस है जो अनायास ही अज्ञात रूप से जन–समाज मे प्रचलित है। इनमे दादरा, कहरवा, खेमटा का नाम अग्रगण्य है। लोकगीतो के साथ ये ताल इतने सम्बद्ध है कि कभी-कभी निगाद धुनो को भी दादरा और कहरवा के नाम से पुकारा जाता है । दादरा शब्द से फारसी अथवा सस्कृत के छन्द मे गीत के लघु और दीर्घ के आधार पर दादरा और कहरवा शब्दो का निर्माण हुआ । दादरा (दीर्घ, लघु दीर्घ) कहरवा (लघु, लघु लघु दीर्घ) स्वराघात के आधार पर तीन मात्रा और चार मात्राओ के तालो का विकसित रूप ही दादरा और कहरवा हे ।

सगीत का छन्द ध्वनि विशेष पर भी आधारित है । "ओउम्" शब्द से "तोम", "तोम" का आविर्भाव यवन काल से हुआ। "तोम" का अपभ्रंश– तुक, तुम, तुमुन, तुडुक आदि है । यह भी गायन की आलापचारी का एक अग है । दूसरे निरर्थक शब्द किट किट घन् अथवा धा किट आदि ताल वाद्य के गीत प्रदर्शक शब्द है । लोक सगीत के अन्तर्गत इन शब्दो का विशेष महत्व है और इनसे यह प्रतीत होता है कि सगीत के संग साज, ढोलक, डफली आदि मे इनका प्रयोग होता है ।

लोकगीतो मे अवनद्ध वाद्य, ढोलक खजरी, आदि मे केवल लय या सरल ताल दिखलाना ही पर्याप्त है यद्यपि यह कार्य भी अत्यत प्रभावशाली तथा रोचक ढंग से सपादित होता है । लोकगीत अधिकतर 6 मात्रा (दादरा), 8 मात्रा या चार मात्रा (कहरवा) अथवा 4 के द्विगुणित रूप 14 मात्रा मे (दीपचदी या चांचर) मे ही प्राप्त होते हैं । स्पष्ट है कि 3 मात्रा की पुनरावृत्ति से 6 मात्रा, 10 मात्रा या 4 मात्रा के द्विगुणित 8 मात्रा, अथवा 7 मात्रा या 7 के द्विगुणित 14 मात्रा का सरल सयोजन है । कभी – कभी 3 मात्रा के वजन पर 3×2×2 = 12 मात्रा (खेमटा) भी प्रयुक्त होता है । शास्त्रीय दृष्टिकोण से इन्हें हम दादरा, कहरवा, दीपचदी, या खेमटा ताल कहते हैं पर लोक वादक

ताल से अनभिज्ञ, गीत की लयात्मकता के आधार पर इन मात्रिक तालो को बजाकर गीत की सगत करता है ।

शास्त्रीय सगीतज्ञ भी जानते है कि इन ताली, खाली आदि से जो वजन, अथवा लय की चाल निर्मित होती है, वह कितनी सरल सुग्राह्य और आकर्षक होती है। जन समुदाय के हृदय मे जो प्रधान भाव रहते है उनकी अभिव्यक्ति मे यह ताले पूर्णरूप से सक्षम तथा पर्याप्त है ।

राजस्थान सगीत नाटक अकादमी द्वारा लोक सगीत पर एक सेमिनार का आयोजन किया गया था जिसमे देश के कुछ प्रतिष्ठित विद्वान लोक सगीत की विभिन्न समस्याओ पर विचार विमर्श करने के लिये एकत्रित हुए थे। परिसवाद मे लोक सगीत के ताल स्वरूपो पर जो निर्णय लिये गये उनका उल्लेख करना आवश्यक एव महत्वपूर्ण है, वे इस प्रकार है .-

1 लोक संगीत की लयात्मकता को शास्त्रीय सगीत की लयात्मकता के द्वारा नापने के प्रयास होते रहे है – ऐसे प्रयास अनुचित ही नही बल्कि लोक सगीत के सरक्षण एव सवर्धन के लिये घातक भी है । वैसे लघु तालो की निश्चित मात्रा का लोक गीतो मे निर्वाह अवश्य होता है ।

2 लोक संगीत की तालो मे केवल ताली या भरी का ही प्रयोग होता है। शास्त्रीय तालो के समान काल या खाली का उचित स्थान पर सदैव निर्वाह करना लोकगायको के लिये सभव नही होता ।

3 लोक संगीत के तालो (लयात्मकता) का निर्वाह जिन वाद्यो से होता है उनमें बजने वाले बोलों के लिए भी क्लिष्ट शास्त्रीय नियमों का पालन नही किया जाता । ऐसे असख्य लय-वाद्य वादक लोक सगीत मे विद्यमान है जिन्हें न अक्षर ज्ञान है और न जिन्हे ताल के बोल कठस्य है। धे, ना, धी, धिन्, तिरकिट सदृश बोलों की उन्होने कभी कल्पना भी नही किया है किन्तु अपना वाद्य विविध लयो में वे श्रेष्ठ रीति से बजा लेते हैं । बालपन से परपरागत वादन शैली ही उनके वादन का आधार है । ताल, काल, खाली, भरी आदि शास्त्रीय पारिभाषिक उपादान उनके लिये निरर्थक होते है ।

उपर्युक्त उद्धरणो से यह निष्कर्ष नही निकाला जाना चाहिये कि लोकगीतो मे लयात्मकता के उचित निर्वाह का अभाव है। लोक कलाकार 2/2/2/2, 3/3/3/3 या 4/4/4/4 सदृश लय स्वरूपो को तुरत पहचान लेता है और हाथ से ताली बजा कर या पदचाप द्वारा उन्हें पूर्णरूपेण अभिव्यक्त करने मे सफल होता है। वादक की उगलियो का प्रयास ढोलक, खजरी, डफ आदि पर उसी गीत के लय मे थिरक उठती हैं । लय के ऐसे नैसर्गिक स्वरूप को यह तुरन्त ग्रहण कर लेता है।

सम एव विषम के सम्मिलन से बने 3/2/2 अर्थात 7 मात्रा मे रचे हुए सुन्दर लोकगीतो से राजस्थान भरा पडा है। इसी सन्दर्भ मे 7 मात्रा का राजस्थानी लोक गीत की दो पक्ति प्रस्तुत हे –

राजस्थानी लोकगीत – (विनायक)

1 2 3 1 2 3
प म मप | गम म | ग स | मग् मग् गस | सा – | सा –
वा तो जीऽ | शीऽ जी | आ पा | जोशी जोऽ रेऽ | बा ऽ | ता ऽ
x 2 3 x 2 3

इसी प्रकार भोजपुरी मे सगुन लोकगीत "अहा सगुना" अहा सगुना, सगुने विवाह" भी 7 मात्रा (चाचर ताल) मे निबद्ध है ।

1 2 3 x 2 3
म म – | प म | ग – | रे सा – | रे सा | नि –
अ हो ऽ | स गु | नी ऽ | अ हो ऽ | स गु | नी ऽ
नि् नि् – | – – | नि् – | – – सा स | – – | रे
स गु ऽ | ऽ ऽ | ने ऽ | ऽ ऽ बि या | ऽ ऽ | ह
x 2 3 x 2 3

लोक गीतो मे 14 मात्रा के गीतो का बाहुल्य है । यह लयात्मकता करीब-करीब सभी प्रदेशो के लोकगीतों मे प्राप्त होती है। वस्तुत यह 7 मात्रा का ही द्विगुणित रूप है किन्तु छान्दिक परिवर्तन से लय परिवर्तन हो जाता है। इन 14 मात्रिक लोकगीतो में 3+4 = 7 मात्रा का ही द्विगुणित रूप प्रतिलक्षित होता है। लोक गीत कार 7 मात्रा के इन दोनो स्वरूपो मे असमानता होते हुए भी समानता का रूप

देखते है अतएव शास्त्रीयता के अनुसार 7 मात्रा के रूपक ताल तथा 14 मात्रा के दीपचदी, इन दोनो तालो को वे चाचर ताल ही कहते है। अवधी लोकगीत में 14 मात्रा के चाचर ताल (दीपचदी) का अवलोकनकरे –

चांचर ताल –

										–	–	नि	स
										ऽ	ऽ	दृ	ग
रे	ग	म	प	म	ग	रे	स	नि	–	स	रे	रे	–
रे	ऽ	ख	क	ज	र	धो	य	ग	ऽ	रौ	बि	ना	ऽ
स	रे	नि	–	–	–	–	–	–	स	–	–		
उ	दु	रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ ऽ	ई	ई	ऽ	ऽ		
×			2				0			3			

इस प्रकार के छन्द के "चतुष्कला" का रूप एक और लयात्मकता मे प्राप्त होती है जो तीन मात्रा का ही रूप है – इसे शास्त्रीकयता में "खेमटा" नाम से पुकार जाता है इसमे 3 मात्रा के 4 विभाग अथवा यो कहियें 6 मात्रा के द्विगुणित रूप का आभास होता है। बाह्य रूप से दादरा तथा खेमटा ताल की लयात्मकता एक दिखाई पडती है पर "चलन" तथा वजन और ताल प्रारम्भ ग्रह "सम" के पृथक होने से दोनों की लयात्मकता मे अन्तर हो जाता है । खेमटा (12 मात्रा) का उदाहरण निम्नलिखित है देंखये –

प सत्य नारायण वरिष्ठ ने ताल मार्तड मे, डाँ ए के सेन के प्रथम प्रकार का ही उद्धरण कर, उसे 12 मात्रा का इस प्रकार बना दिया है –

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
धा	गे	धि	न	गि	न	ता	ग	ति	न	कि	न
×						2			3		

उपर्युक्त ताल रचना में खेमटा ताल को 6×2 = 12 मात्रा अर्थात 6 मात्रा के दो विभाग लिखा है । इस 6 मात्रा के विभाग वाले खेमटा ताल हमें

गुजराती गोट "हरी मुख जाइने रे हो रह ख्या मे मोरली बागी रे" लोकगीत मे 'झूलण मोरली बागी रे राजाना कुँवर, हालाने जोवा जाए रे, मोरली बागी रे," महाराष्ट्री लोकगीत "आला ग श्रावण धरती मे," तथा एक मालवी लोकगीत "साजी" ने "सज्ञा" के दरबार चपा फूल रह्या मेरी माय" मे प्राप्त होती है – उदाहरण के लिये गुजराती गीत प्रस्तुत है –

ग – रे ग रे स स – – ग – रे ग रे
ह रो मु ख जा – इ ने रे हो
खा – स स – – स – स रे म – म – – म
ह र ख्या सा य डू ले ता
रे ग रे म ग रे सा – स स – –
स ऽ खे ऽ ऽ म ऽ र खा ऽ ऽ

डाडिया रास मे गाई जाने वाली उपर्युक्त रचना से तथा ब्रज की कजली से यह स्पष्ट है कि खेमटा के अन्तर्गत 6 मात्रा की प्रणाली या तीन मात्रा की प्रणाली विद्यमान है । ब्रज की त्रिमात्रिक रचना कजली को हम तिस्त्र जाति एक ताल मे रख सकते हैं । सुविधा के लिये लोक गीतो मे 12 के दो भाग ही उचित समझा गया जो गेयता की दृष्टि से सरल और सहज है। इस प्रकार लोक गीत मे प्रयुक्त खेमटा शास्त्रीय खेमटा से भिन्न है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश (ब्रज भाषा) की एक कजरी उदाहरणार्थ प्रस्तुत है –

कजरी

खेमटा ताल :–

स्थाई –

ग	रे	ग	स	–	–	रे	–	रे	ग	ग	ग
घे	ऽ	रि	घे	ऽ	रि	अ	ऽ	ई	सा	व	न
रे	–	स	रे	–	–	स	–	रे	स	–	–
के	ऽ	ब	द	रि	ऽ	या	ऽ	ऽ	ना	ऽ	ऽ
स	ग	ग	ग	म	ग	ग	रे	ग	म	–	म
पा	ऽ	नी	ब	र	सै	ब	ड़ी	ऽ	जो	ऽ	रे
x			2			0			3		

ग रे ग	स – रें	ग रे ग	स – स
सू ऽ ज्ञै	ना ऽ ही चा	ऽ रौ ओ	ऽ ऽ रे
ग रे ग	स – स रे	– रे ग	म ग –
जि या ऽ	का ऽ पै	मो ऽ रा	च म के
रे – स	रे रे –	सा – रे	स – –
सा ऽ बि	जु रि ऽ	या ऽ ऽ	ऽ ना ऽ ऽ
×	२	०	३

उपर्युक्त खेमटा ताल शास्त्रीय खेमटा ताल से केवल 12 मात्राओ तथा 3,3 मात्रा के विभाग के रूप मे मिलता है। लयात्मकता के आधार पर हर तीन मात्रा पर बल देना अथवा सम भाग दिखाई पडता है। यह एक अदभुत रचना है जिसमे देखा जायें तो खेमटा त्रिमात्रिक ही प्रतीत होता है। वस्तुतः खेमटा ताल का प्रचलन यदा-कदा सुगम संगीत मे या लोक सगीत में ही होता है । डॉ ए के सेन ने भारतीय तालो का शास्त्रीय विवेचन मे खेमटा के निम्नलिखित दो प्रकार लिखें है –

खेमटा पहला प्रकार –

1	2	3	4	5	6
धागे	धिन	गिन	तागे	तेन	किन

दूसरा प्रकार आडा खेमटा – मात्रा 12

1	2	3	4	5	6
धा	तिरकि	धिन्	धी	धा	तिन्
×			2		

7	8	9	10	11	12
ता	तिरकिट	धिन	धा	धा	धिन
0			3		

पाणिताल सताश्च शम्या तालैही समयस्तथा ।
सप्रहृष्टैहि प्रनृत्यादिनम सर्वस्तत्रनिर्षध्यते।।

"भरत–नाट्य शास्त्र" की रचना के पूर्व ही समाज मे अक्षर काल का बोध था। लौकिक–सगीत समाज की देन है । उसी के आधार पर तालीं दनें की परिपाटी शास्त्री मे, ताल में, परिणित हो गई है ।

भरतमुनि रचित नाट्यशास्त्र तथा पं0 शारगदेव के सगीत रत्नाकर मे ताल की केवल दो ही जातियाँ दी गई है – त्र्यश्च और चतुरश्च । त्र्यश्च ताल वाचपुट है और चतुरश्च ताल चच्यंतपुट है । अतएव प्रमुख तालो की जाति दो ही थी – (1) तीन मात्रा की ताल तथा चार मात्रा की ताल । त्रयश्च ताल के विभाग में 2+1 अथवा 1+2 का विधान बताया गया है जिससे स्पष्ट है कि एक और दो की गणना ही सर्वमान्य थी । यह तथ्य वस्तुत· लोक तथ्य ही कहा जा सकता है आदि मानव मे अथवा लोक में 1 और 2 तत्व प्राकृतिक रूप से विद्यमान थे। इन्हीं से 2+1 = 3 मात्रा तथा 2+2 =4 मात्राओ का रूप सामने आया इन्हीं 3 मात्राओ से 3×2 = 6 मात्रा की दादरा ताल अथवा 4×2=8 मात्रा की कहरवा ताल का जन्म हुआ । वस्तुत दादरा कहरवा का आधार = त्र्यश्च तथा चतुरश्च ताल ही है । दा द रा में स्वय 3 अक्षर काल है और कहरवा में 4 अक्षर काल है । आज भी कुछ सगीतज्ञ कहरवा ताल को चार मात्रा का ही मानते है । लोक संगीत मे वादक 3 मात्रा और चार मात्रा को ही ताल का आधार मानते है । इन्ही 3 मात्रा और 4 मात्रा के संयोग से (3+4=7) मात्रा की ताल का जन्म हुआ जिसे शास्त्रीय संगीत मे 3+2+2 के रूप मे जाना जाता है । पर लोक अवनद्ध वाद्य मे केवल तीन और चार का सयोग से ही 4 मात्रा की ताल लयात्मक गीत के स्वरूप तथा स्वराघात के आधार पर बजाए जाता है । इन्हीं 7 मात्रा (3+4) के आधार पर 7×2=14 मात्रा की दीपचंदी ताल शास्त्रीय तथा उप शास्त्रीय संगीत मे बजाई जाती है । पर लोक गायक तथा वादक केवल 4 मात्रा के बोल ही बजाते है । यहाँ यह लिखना अनिवार्य है कि लोक सगीत जिसका आधार केवल स्वराघात है , में शास्त्रीय सगीत की तालो की तरह

खाली दर्शाने या बजाने की प्रथा नही है । अतएव 3 मात्रा अथवा 4 मात्रा अथवा 4 मात्रा के स्वनिर्मित परपरागत बोलों से ही ताल का स्वरूप कायम कर लते है। लोकगीतों मे कहीं–कही रचना 6 मात्रा के द्विगुणित रूप मे भी दिखाई पडती है जिसे हम शास्त्रीय सगीत मे खेमटा के नाम से जानते है । लोकगीतो मे 5 मात्रा का प्रयोग बहुत ही कम हुआ हे । पर कुछ लोक गीत 5×2 = 10 मात्रा के भी मिले हे जिन्हे हम शास्त्रीय संगीत में झपताल कहते है । साराश मे कहा जा सकता है कि लोक सगीत दो, तीन, तथा 4 मात्राओं के सयोग से लोक तालो का सृजन हुआ है। शास्त्रीय सगीत के दृष्टिकोण से इन्हे ही दादरा, कहरवा, रूपक, दीपचदी, खेमटा तथा झपताल कहते है। इन तालों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है

दादरा मात्रा 6 (विभाग–2)

बोल –	धा	धी	ना |	धा	ती	ना |
	×			0		

कहरवा मात्रा 8 (विभाग–2)

बोल –	धा	गे	न	तू |	न	क	धि	न
	×				0			

कुछ संगीतज्ञ कहरवा ताल को चार मात्रा का मानते है उनके अनुसार –

धागे	नति	|	नक	धिन
×			०	

रूपक ताल – मात्रा 4 (विभाग – 3)

बोल –	ती	ती	ना |	धी	ना |	धी	ना |
	×			2		3	

दीपचदी मात्रा 14 (विभाग – 4)

बोल –	धा	धीं ऽ |	धा	धा	तीं ऽ |	ता	तीं ऽ |	धा	धा	धि ऽ |
	×		2			0		3		

खेमटा मात्रा 12 (विभाग –4)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
धा	तिरकिट	धिन	धा	धा	तिन	ता	तिरकिट	धिन	धा	धा	धिन
x			2			0			3		

बोल

झपताल मात्रा 10 (विभाग–4)

बोल –	धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
	x		2			0		3		

संगीत रत्नाकर के प्रबन्ध अध्याय मे मात्रा के गण भी पांच प्रकार के बताए गये है । एक मात्रा को लघु कहा गया है एव दो, तीन, चार, पांच तथा 6 मात्राओ की समष्टि को पचमात्रा गणा कहा गया है। जैसे छगण (6 मात्रा वाला पगण (पाच मात्रा वाला) , चगण (चार मात्रा वाला), तगण (3 मात्रा वाला), और दगण (2 मात्रा वाला)। यदि देखा जावे तो इन मात्रा के गणो की साम्यता ही हमे लोक सगीत मे प्राप्त होती है । 2,3,4,5 और 6 मात्रा से लौकिक लयात्मकता का सृजन हुआ है ।

गीत के छंद में स्वराघात स्पष्ट प्रतीत होता है। स्वराघात से ही 3 मात्रा तथा 4 मात्रा के तालों का बोध होता है । लोक गीतो में दादरा, कहरवा, तालो का बाहुल्य है ॥ ढोलक वादक, खंजरी, झांझ, डफ वादक यद्यपि इन तालो के शास्त्रीय वर्णों से अनभिज्ञ होता है पर गायक के स्वराघातो के आधार पर उसकी उंगलियाँ चलने लगती है – लय साम्य ही उसका आधार होता है। इसी लय साम्यता के आधार थीं त । फी न् घी न की तरफ के बोल अपनी सुविधा तथा कल्पना के अनुसार बना लेते है । सहजता और सरलता के कारण ही 3 मात्रा और 4 मात्रा को जोड़ कर 7 मात्रा की रचना की गई और 7 मात्रा का द्विगुणित रूप ही 14 मात्रा बन गया । लय साम्यता के आधार पर ही शास्त्रीय संगीत में रूपक या दीपचंदी का प्रयोग होता है।

वादन के क्षेत्र में लय व ताल दिखाने वाले वाद्यो का ही उपयोग ग्राम गीतो के साथ अधिक होता है । स्वतत्र वादन का विकास लोक संगीत में

नही हुआ है । लोक संगीत मे अकेले गाने से कही अधिक सामूहिक गायन कला का महत्व है और उसमें स्वर की अपेक्षा लय का ही अधिक प्रभुत्व है। गीतो की रचना मे स्वर संविधान भी ऐसा है जिसमे यह प्रतीत होता है कि गायक लय की सृष्टि के पश्चात् उस लयात्मकता मे अनायास गाने लगता है – उसे स्वर संयोजन को ढूढना नहीं पडता कारण, लयात्मकता ही स्वरात्मकता का आधार है । अवधी लोक संगीत मे अथवा उत्तर भारत के समस्त लोकगीतो मे यही रचना शैली दृष्टिगोचर होती है । इनमें प्रयुक्त होने वाले अवनद्ध अथवा घन वाद्यों में से ढोलक, ढोलकी, डफ, खजरी, झाझ और करताल उल्लेखनीय है। इसमें भी ढोलक का सबसे अधिक प्रचार तथा महत्व है । कहीं-कही ढोलक की वादन शैली में अद्भुत विकास मिलता है । उसके पृथक बोल होते हैं । यह बोल भी उनकी अपनी उपज है । लोकगीत की लयात्मकता के साथ उनकी उंगलियाँ तथा थाप तथा स्वरात्मक "धा" बाये और दाये ढोलक के खुले बोल से अनायास ही वातावरण गूंज उठता है । यही लयात्मकता गीतों के ताल है। विषम के संयोग से 7 मात्रा तथा उसके द्विगुणित रूप 14 मात्राओं का जन्म हुआ है। उपर्युक्त तालों में यदि नैसर्गिकता की दृष्टि से देखा जाये तो केवल दो या तीन ताल ही नैसर्गिक कहे जा सकते हैं । यह भी सत्य है कि इनके (गणों से) निर्मित अनेक तालों में जो सरल थे तथा जिन्हें वक्रता एवं क्लिष्टता से मुक्त रख कर सहज बोध गम्य स्वरूप दिया गया, जनसाधारण में उन तालो में ही रंजकत्व के मौलिक तत्व उपलब्ध हुए और इन्हीं सरल तालों को लोक संगीत मे स्थायित्व भी प्राप्त हुआ। भारत ही नही वरन् विश्व के लोक संगीत की विभिन्न धाराओं मे 6 मात्रा के दादरा तथा 8 मात्रा के कहरवा सदृश तालों की बहुलता इस तथ्य को प्रमाणित करती है । अवधी लोक गीतों में भी दादरा तथा कहरवा की बहुलता दिखाई पडती है केवल कुछ ही संस्कार गीत में विशेष रूप से रूपक तथा दीपचंदी का प्रयोग हुआ है ।

गीत अथवा काव्य के संगीतात्मक होने के लिये उसका छन्दोबद्ध होना आवश्यक है क्योंकि छन्दोबद्ध होने से ही उसमें लयात्मकता एवं ताल का समावेश

होता है। छदो का सगीत शास्त्र से अन्योन्याश्रय सबंध है और लय, मात्रा, ताल का विकास छदों में सम्पूर्ण रूप से व्याप्त है । जिस प्रकार सगीत मे मात्राओ की गणना एवं विभाग, विभिन्न तालो का निर्माण और प्रत्येक तालो का विभाजन होता है, बहुत कुछ इसी प्रकार काव्यों में छद का विधान है।

संगीत मे लय की गणना मात्राओ से होती है । इसी प्रकार छंदो मे मात्राओं द्वारा उसकी गति का बोध होता है। विभिन्न छदो मे लय के विधान के कारण अभिव्यक्ति की विशिष्ट क्षमता आ जाती है । यही छान्दिक विशेषता संगीत का पुट पाकर धुन अथवा गीत को और प्रभावशाली बना देता है। इग्लैण्ड के वाट्स ड्यूटोन ने एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका मे कहा है –

> "Poetry is the concrete and artistic expression of the human mind in emotional and rhythmical language."

छदो को सगीत की बदिश मे आत्मसात करने के लिए छद की मात्राओ का ताल के बोलो, मात्राओ और स्वरघातो के साथ सामजस्य स्थापित कर छद की शब्द योजना का गीतात्मक स्थरीकरण किया जा सकता है । फलतः ताल के आधार पर किसी छद को उसकी मात्राओ से कम या अधिक मात्राओ के ताल मे गाया जा सकता है ।

शास्त्रीय सगीत अथवा उपशास्त्रीय सगीत अथवा लोकगीत सभी को छद की लयात्मकता अथवा आघात के आधार पर ही ताल बद्ध किया जाता है। इस ताल बद्धता मे गुरू दीर्घ –)और लघु (1) का विशेष महत्व है। गुरू अथवा दीर्घ वर्ण की ही अकार (S S) के द्वारा भावानुकूल बढाया जाता है। उदाहरण के लिये शास्त्रीय सगीत की सूरदासी मल्हार के गीत के शब्दो, स्वरो तथा मात्राओ का अवलोकन करे तो स्पष्ट हो जाएगा कि गीत के शब्दो के गुरू अक्षरो को ही लयबद्ध तथा ताल बद्ध करने के लिए आकार द्वारा बढाया गया है–

प

म मप

ब ऽऽ

प	ध			म				नि		म							
नि	नि	प	म	प	म	रे	सा	सा	–	रे	म	–	–	–	–		
त	न	के	ऽ	बा	ऽ	द	र	का	ऽ	रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	
0				3				×			4	2					

रे									प						
म	म	म	प	नि प	प	नि नि	सा	सा	सा	सा	–	सा	रे	सा	–
उ	म	ड	घ	टा	घ	न	बि	जु	री	ऽ	च	म	क	ऽ	
0				3			×				2				
सा सा रे														नि	
नि सा	म	म	रे	रे	सा	सा	सा	–	सा	–	नि	–	म	म	
दि न	त	रू	व	र	ह	रि	या	ऽ	रे	ऽ	ऽऽ	ब	र		
0				3			×				2				

स्थायी गत के शब्द – "बरसन के बादर कारे मे 14 मात्राए है जिसमे हम 16 मात्रा की ताल मे इस प्रकार गाते है। दूसरी तथा तीसरी पक्ति पुन. 16 मात्रा तथा 14 मात्रा की है, अतएव इसे तीन ताल मे ही बद्ध करना श्रेयकर है।

यही रचना का सिद्धान्त लोकगीतो पर भी क्रियान्वित होता है । गीत के छद, भाव तथा लयात्मक चलन के आधार पर प्रस्तुत कजरी लोकगीत को खेमटा ताल मे अथवा दादरा ताल मे गाया जाता है । सर्वप्रथम लोकगीत के मात्रिक छद का अवलोकन करे –

<u>लोकगीत</u> –

घे रि घरि आई सावन कै बदरिया ना

ऽ । ऽ । ऽऽ ऽ ।। ऽ ।। । ऽ ऽ = 24 मात्रा

पानी बरसे बडी जोर

ऽऽ ।। ऽ। ऽ ऽ । = 14 मात्रा

सूझै नाही चारो ओर

SS SS SS SI = 15 मात्रा

जिया का पै मोरा चमकत विजुरिया ना

IS SS SS IIII II I SS

इस कजरी की यही विशेषता है कि प्रथम पक्ति मे छद शास्त्र के आधार गुरू और लघु के आधार पर चौबीस मात्राए है और ताल के मात्राओ के अनुसार भी चौबीस मात्राए यानी खेमटा ताल की दो आवृत्ति है। जैसा कि धुन की निम्न स्वर लिपि से स्पष्ट है –

ग	रे	ग	सा	–	–	रे	–	रे	ग	म	ग
घे	S	रि	घे	S	रि	आ	S	ई	सा	व	न
रे	–	स	रे	–	–	सा	–	रे	सा	–	–
के	S	ब	द	रि	S	या	S	S	ना	S	S
x			2			0			3		

पक्ति की प्रारम्भिक घेरि घेरि से ही प्रतीत होता है कि धुन तीन मात्रा के विभाग वाले ताल मे निबद्ध होगा । दूसरी पक्ति मे उच्चारण तथा लयात्मकता के लिये "पानी", तथा "वरसै" मे "नी" तथा "सै" को गुरू के स्थान पर लघु अर्थात एक मात्रा मानने पर यह पक्ति भी बारह मात्रा की होगी । शेष गुरू अक्षरो के आगे प्राकृतिक रूप से बढ़ाने के लिये अकार (S) का प्रयोग किया गया है। यही प्रकृति हमे तीसरी पक्ति मे भी दिखाई पडती है। "सूझै", "नाही" "चारो" के अन्त्याक्षर "झै" , "ही" तथा "रो" यद्यपि गुरू है या उन्हे 9 मात्रा काल का ही माना गया है । अतएव गीत के अनुसार बारह मात्रा की रचना ही हो सकती थी। पाचवी पक्ति की स्वरलिपि के "जिया कापे मोरा चमक", 14 मात्रा 'कापे तथा मोरा' शब्दो के अन्त्याक्षर को एक मात्रा मे रखा गया है परिणामस्वरूप धुन की यह पंक्ति भी बारह मात्रा मे ही निबद्ध की गयी । गायक सुविधा के लिये कभी-कभी ह्रस्व को भी दीर्घ बना लेता है। अन्तिम पक्ति मे मात्राओ को पूरा करने केलिये "ना" शब्द जोडा गया है तथा सुविधानुसार उसे तीन मात्रा

का बनाया गया है , जो सटीक एव उचित है। अतएव इस गीत को तीन मात्रा के विभाग वाले खेमटा अथवा दादरा ताल मे ठीक ही गाया गया है। इस जगह यह स्मरण रखना चाहिये कि लोक गायक शास्त्रीय तालो तथा विभागो से अनभिज्ञ होता है अतएव उसे केवल इतना ही ज्ञान होता है कि धुन का आधार तीन मात्रा है। अस्तु भाव, लय तथा स्वराघात के अनुसार इस गीत को खेमटा ताल मे वद्ध करके लोकगायक ने कुशलता के साथ धुन के सौन्दर्य की वृद्धि की है।

छद और ताल की साम्यता के लिये कहरा गीत प्रस्तुत है। गीत के मात्रिक विश्लेषण तथा "धुन" की स्वर लिपि से सिद्ध है कि "कहरा" लोकगीत के लिये कहरवा ताल (जलद) ही उपयुक्त है ।

कहरा लोकगीत

पिया ऊँची रे अटरिया तोरी देखन चली

IS SS SII I S SS SII चS = 25 मात्रा

ऊँची अटरिया, जरद किनरिया

SS II I S III II I S = 17 मात्रा

लागी नाम की डुरिया

SS SI S I I S = 13 मात्रा

चाँद सुरज सम दियना बरत है

S I III II II S III S = 17 मात्रा

ता विय भूली रे डगरिया

S II SS S III S = 14 मात्रा

कहरा लोकगीत के छादिक मात्रा तथा ताल स्वरूप के स्पष्टीकरण के लिये लोक गीत की धुन प्रस्तुत है जिससे स्पष्ट हो जावेगा कि यह लोकगीत चार मात्रा के जल्द कहरवा मे ही गाया जा सकता है ।

कहरा गीत – ताल (कहरवा)

स्थाई –

स रे

रेम मप ग्रे | स ग़ स नि | स स ग़ रे | ग – स –

ऊऽ चीऽ रे अ | टरी पी तो री | दे ख न च | ली ऽ ऽ ऽ

× × × 0

प प प ध | पध सानि निध धप | ग ग म प | गम गम रेग़ सरे

दे ख न च | लीऽ ऽऽ पिऽ याऽ | दे ख न च | लीऽ ऽऽ पिऽ याऽ

× × × ×

अन्तरा –

नी – नि नि | नि नि नि नि | स स स सं | स स स –

ऊ ऽ ची अ | ट रि या ऽ | ज र द कि | न रि या ऽ

रे म म म | ग़ ग़ रे ग़ | स स स स | – – – –

ला ऽ गी ना | ऽ म की ऽ | डरि या ऽ | ऽ ऽ ऽ ऽ

रे – रे रे | म म म म | प प प प | प प प प

चा ऽ द सु | रू ज स म | पिय ना ब | र त है ऽ

– प प प | प निध पम मग | रग़ ग़स सम रे | रेम मप ग़ रे

ऽ ता वि च | भू लीऽ रेऽ डऽ | गरि याऽ पिऽ या | ऊऽ चीऽ रे ऽ

लोक गायक की सूझ सराहनीय है कि प्रथम पक्ति को दो भागो मे बॉटा गया है । पहली पक्ति 'पिया ऊची रे अटरिया तोरी देखन चली' तथा दूसरी पंक्ति "देख चली" शब्दो की तथा तदनुकूल स्वरो की तालात्मक पुनरावृत्ति करके गाया जाता है । पुनरावृत्ति में "देखन चली पिया" मे "ली" के बाद ही केवल 9 मात्रा के अकार (ऽ) का रूप प्रथम पक्ति की भाति है । गीत के मात्रिक विश्लेषण (गुरु–लघु) के अनुसार प्रथम पक्ति मे पचीस मात्रा, द्वितीय पक्ति मे सत्रह मात्रा तृतीय पक्ति मे तेरह मात्रा, चतुर्थ पक्ति मे पुन. सत्रह मात्रा तथा अतिम पंक्ति

मे चौदह मात्रा है । प्रथम पक्ति का धुन निर्माण सभवत. वर्णो की सख्या के आधार पर की गई है । सोलह वर्णों के इस गीत को कहरवा मे ही निबद्ध करना उचित था दीर्घ वर्ण के अकार का प्रयोग कही एक मात्रा मे दो स्वर अथवा दो मात्रा को एक मात्रा मे किया गया है जैसे 'ऊ ऽ ची ऽ तथा ऽरि' से स्पष्ट है ।

अन्तरा की प्रथम पक्ति 'ऊची अटरिया जरद किनरिया' मे 'ऊची' मे "ऊँ" को तथा अत मे "या" को एक मात्रा नियमानुसार ही बढाया गया है । ऊँची केवल एक मात्रा काल का है जिससे यह कहरवा मे सरलता तथा सुगमता से गाया जा सकता है । द्वितीय पक्ति मे उपर्युक्त नियम ही दिखाई पडता है, केवल मात्राओ की पूर्ति के लिये पक्ति के अन्त मे डुरिया के "या" को पाच मात्रा काल का अकार के सहारे खीचा गया है । अन्तरे की प्रथम पक्ति की तरह ही सत्रह मात्रा को सोलह मात्रा गाया गया है । (चाद) के "चा" तथा "है" को यथानुसार ही एक मात्रा तथा दो मात्रा क्रमशः अकार (ऽ) के द्वारा बढाया गया है । अन्तिम पक्ति मे अन्तरे की पहली और तीसरी पक्ति की प्रवृत्ति ही दिखाई पडती है । पक्ति की सपूर्ण धुन रचना वस्तुतः नौ मात्रा मे ही निबद्ध किया गया है । 'डगरिया' के "गरि" को एक मात्रा काल मे ही गाया जाता है पिछली पक्ति "के है" का एक अकार इस पक्ति के साथ जोड कर कुल रचना 19 मात्रा मे की गयी है । उसके बाद दो मात्रा 'पिया' के बाद 'ऊची र अ' जोड के स्थाई की पक्ति प्रारम्भ हो जाती है। जलद कहरवा मे निबद्ध होने के कारण दस मात्रा की रचना तथा उठाव के 'पिया' से बारह मात्रा पूर्ण हो जाता है । वस्तुतः यह धुन रचना की अपूर्व कुशलता है । अशास्त्रीय होने पर भी शैलीगत विशेषता से लोक गायक की मर्मज्ञता का ही अनुभव होता है । गीत की रचना कहरवा ताल के लिये ही उपयुक्त थी ।

अवधी लोकगीतो मे "सावन" लोकगीत का विशेष महत्व है जो "कहरवा" ताल मे ही गाया जाता है । उदाहरण स्वरूप "सावन" लोकगीत के प्रथम पक्ति का गायिका स्वरूप तथा धुन की स्वर लिपि प्रस्तुत है जिससे यह कहना सुगम होगा कि मात्रा, धुन तथा ताल तीनो मे कितनी साम्यता है ।

गीत की पहली पक्ति –

पिया नाही आये भवनवा हरे सावनवा मे चौबीस मात्राए है जो कहरवा ठाट अथवा जलद के गुणनफल (8×3 = 24) मे ही आता है । गीत के पढने से ही चार मात्रा पर स्वराघात से भी स्पष्ट हो जाता है कि यह गीत अथवा धुन कहरवा ताल के निमित्त ही रची गई थी । धुन की स्वरलिपि, ताल विश्लेषण के लिये नीचे दी जा रही है .–

ग ग ग ग | र – स रेस | नि़ नि़ ध़ – | ध स ग –
पि या ना ही | आ ऽ ये भऽ | ऽ व न वा | ह रे सा ऽ
X | 0 | X | 0

रे सा रे स – | – – – –
व न न वा ऽ | ऽ ऽ ऽ ऽ
X | 0

दीर्घाक्षर पर एक मात्रा का प्रस्तार तथा अन्त मे अकार (ऽ) पाच मात्रा के गाने से ताल तथा मात्रा मे साम्यता स्पष्ट दिखाई पडता है। स्वर, ताल तथा मात्रा का अनुपम ऐक्य ही इस धुन की विशेषता है, अत. "सावन" गीत की कहरवा मे रचना उचित ही है । गीत के अ न्तरा की पक्तिया

गौना लै आये, पिया घर बइठाये –

अपुना छवावै मधुवन वा हरे सावनवा ।

अन्तरे की दोनो पक्तियो को सोलह मात्राओ मे गाया गया है । प्रथम पक्ति मे बै ऽ ठा ऽ से ऽ इस प्रकार गाया जाता है । दूसरी पक्ति मे मधुवन वा ऽ हरे सा ऽ वन व ऽ इस प्रकार 3 मात्रा अकार (ऽ) द्वारा बढ़ा कर गाया जाता है । भाव, शब्द तथा धुन के अनुसार ही स्वर और मात्रा को बढ़ाने की परिपाटी गीत के धुन और ताल के मेल का उदाहरण है ।

अवधी लोकगीतो मे चौताल और डेढताल का ताल तथा लयकारी के कारण विशेष स्थान है । चौताल को फागुन गीत भी कहा जा सकता है । चौताल (चारताल) नाम के अनुसार इसे अलग–अलग चार तालो मे गाया जाता है । पहले चाचर में, फिर कहरवा की तीन लय बरती जाती है ।चौताल लोकगीत के साथ

ढोल अथवा ढोलक वादक नैसगिक रूप से ताल तथा लय इस खूबसूरती से बदलते है कि देखते ही बनता है ।

चाचर के चौदह मात्रा अथवा सात मात्रा के विभाग के पश्चात् उसी लय मे चार मात्रा या आठ मात्रा गाना कितना कठिन है यह तो शास्त्रीय सगीतज्ञ भी मानेगे । किन्तु इस कठिन लयकारी सात मात्रा में चार मात्रा तथा चार मात्रा मे सात मात्रा की लयकारी लोक गायक आसानी से प्राकृतिक रूप से गा कर दिखा जाता हे । उदाहरण के लिये चौताल का गीत तथा स्वर लिपि प्रस्तुत है ।

<u>स्थाई</u>

दृग रेख कजर धोइ डारौ बिना मदुराई । (चाचर ताल)

<u>अन्तरा</u>

श्याम सुन्दर कुबरी के रस वस (कहरवा ताल)
हमरी सूरत विसराई
गुन गुन विरह अगिन उपजत
मनुआ मोरा वौराई – विना मदुराई (चाचर ताल)

स्थाई की पक्ति मे गुरू और उसकी पक्ति मे गणानुसार चौबीस मात्राए है जिसके लोक गायक ने कलात्मक रूप से अकार (ऽ) के सहारे स्वर प्रस्तार करके बयालीस मात्राओ में गाया है । कुशल सगीतज्ञो को भी इस प्रकार रचना करने मे क्लिष्टता का अनुभव होगा पर लोक गायक के लिये सह अत्यत सुगम है। प्रस्तुत है गीत की स्वर लिपि ।

<u>चाचर</u> – (<u>दीपचदी</u>)

स	–	स	–
दृ	ऽ	ग	ऽ
3			

रे ग -	म - प -	म ग -	रे - स -
रे ऽ ऽ	ख ऽ क ऽ	ज रे ऽ	धा ऽ य ऽ
×	2	0	3
ग ग रे	सं - रे नि	रे - -	सा - स -
डा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ना ऽ ऽ	म ऽ दु ऽ
नि - -	- - -	सा - -	स - स -
रा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ई ऽ ऽ	दृ ऽ ग ऽ
×	2	0	3

स्थाई के पश्चात् अन्तरा कहरवा (प्रथम) ताल मे प्रारम्भ हो जाता है ढोलक वादक इतने सिद्धहस्त होते है कि , चाचर की लय के पश्चात् तुरन्त जलद कहरवा पकड़ लेते हैं। प्रस्तुत है कहरवा मे धुन की स्वर लिपि-

कहरवा ताल-

म - म म	म म म -म	र ग ग रे	नि स रे रे
हऽ म सु	द र कुब	नरी ऽ केऽ	रे ञु त त
×	0	×	0
रे ग ग म	ग रे स रे	नि - - -	सा - - -
ह म री सु	र त बि स	रा ऽ ऽ ऽ ऽ	यी ऽ ऽ ऽ
×	0	×	0

(उपरोक्त कड़िया दो बार गायी जायेगी)

- रेरे रे ग	म मप प प	प पध प म	मग रेग रे रे
ऽ गुन गु न	वि रऽ ह अ	गि नऽ ड र	उऽ पऽ ज त
×	0	×	0

अन्तिम कहरवा -

- रेरे रे ग	म मप प प	प पध प म	मग रेग रे रे
ऽ गुन गु न	कि रऽ ह अ	गि नऽ उ र	उऽ पऽ ज त
×	0	×	0

दूसरी तथा तीसरी पक्ति को कहरवा मे ही लय भिन्नता के साथ गाया जाता है । प्रथम अन्तरा की पक्ति मे सत्रह मात्राए है जिसे सोलह मात्रा मे गाया जाता है अर्थात् कहरवा (जलद) की चार आवृत्ति मे । दूसरी पक्ति मे तेरह मात्रा है जिसे सोलह मात्रा मे गाया गया है । तीसरी तथा चौथी पक्तिया एक सी सोलह मात्राओ की है, अतः ये सम मात्रिक ताल मे निबद्ध है । चौताल के अनुसार ही यह लोक गीत ताल बद्ध है । यहाँ पर भी अकार (S) दीर्घ स्वर के पश्चात् ताल की मात्राओ की पूर्ति के लिये किया जाता है ।

कहरवा के पश्चात् द्वितीय अन्तरा पुन. चाचर लय मे गाया जाता है । स्वर लिपि तथा धुन स्थाई की ही भाति गाई जाने की प्रथा है।

चौताल की भाति ही डेढताल भी गाया जाता है । इसका छद चौताल से बडा है तथा इसमे मात्राए भी अधिक है । अवधी भाषा का यह एक लोक प्रिय गीत है। विद्वानो का अनुमान है कि इस लोकगीत की लय चाचर ताल से प्रारम्भ होती है । बीच मे कहरवा ताल मे गीत की पक्तिया गाई जाती है तथा अत पुन. चाचर ताल मे परिवर्तित हो जाता है । इसी से इसका नाम डेढताल पडा होगा। उदाहरण के लिये "डेढताल" का मात्रिक विश्लेषण, लयात्मकता तथा ताल स्वरूप का तुलनात्मक विवेचन निम्नलिखित है ।

<u>डेढताल लोकगीत</u> –

फगुआ के खेलन हारे, अरे मोरे गढिगे नयनवा मझारे जुगल नृप वारे

= 42 मात्रा

I I S SSI I SS I I SI I I I I I I S I SS I I SS

दीपचंदी ताल के अनुसार भी 14×3 = 42 मात्रा होता है । आश्चर्य की बात है कि इस लोकगीत मे मात्रा तथा लय और ताल का समन्वय है। प्रमाण मे प्रस्तुत है लोकगीत के धुन की ताल बद्ध स्वर लिपि –

<u>चाँचर ताल</u>

स रे

फ गु

नि – स	रे गरै – ग रे	स – स	– – स ग
आ ऽ के	ऽ चे ऽ ऽल	न हा ऽ रे	ऽ ऽ अ रे
– ग रे	ग म म म	ग रे स	रे नि – स
ऽ मो रे	ग ढि गे न	या न बां	डा [illegible] ऽ रे
x	2	0	3
म ग रे	स रे नि –	– – –	स –
जु ग ल	नृ प वा ऽ	ऽ ऽ ऽ	रे ऽ
x	2	0	3

इसके बाद मध्य – मे चाचर ताल के पश्चात् गीत की मात्राए तथा रचना के ताल मे साम्यता का अवलोकन करे –

पील दुकूल अक पै राजत रिखत कोटि काम छबि लाजत

ऽ। ।ऽ। ऽ। ऽ ऽ।। ।।।। ऽ। ऽ। । । ऽ । । =32मात्रा

तिलक रे ख अरू नारे

।।। ऽ । ऽऽ = 12 मात्रा

मात्रा तथा स्वराघात के अनुसार इसे कहरवा ताल मे ही गाया जाना उचित है। गीत की तीसरी पक्ति मे 12 मात्राए ही है अत. अकार (ऽ) के द्वारा 16 मात्रा बनाना सार्थक एव समुचित है। गीत की इन पक्तियो की धुन मे ताल स्वरूप निम्नलिखित है–

स म म म	म – म म	ग ग ग –	रे स रे रे
पी ऽ त दु	कू ऽ ल अ	ऽ क पै ऽ	रा ऽ ज त
x	x	x	x
स म म म	म – म म	ग ग ग –	रे स रे रे
रि ऽ ख त	को ऽ टि का	ऽ म छ वि	ला ऽ ज त
x	x	x	x
म म म म	म ग रे स	नि – – –	सा – – –
x	x	x	x

ति ल क रे	ऽ ख अ रू	ना ऽ ऽ ऽ	रे ऽ ऽ ऽ
नि स रे ग			
क म ल न			
×			

अन्त मे पुन. 42 मात्रा की पक्ति को चाचर लय मे गाया जाता है।

लोकगायक की कलात्मक, एव लय तथा ताल मे सुनियोजित धुन वस्तुत सराहनीय है। यह भी लयकारी का उदाहरण है। चाचर ताल– 14 मात्रा के पश्चात् कहरवा जलद 16 मात्रा पुन: चाचर 14 मात्रा मे गाकर 4 मात्रा मे 16 मात्रा तथा 16 मात्रा की लयकारी प्राकृतिक रूप से धुन मे समाहित है । ढोलक अथवा डफ वादक धुन के स्वराघात के आधार पर 4 मात्रा या 4 मात्रा की ही स्वररचनाबजाएगे।

इस लयकारी के सबध म एक ऐसा भी लोकगीत प्राप्त है जिसमे दादरा से कहरवा ताल मे परिवर्तन होता है तथा पुन. दादरा ताल स्थापित हो जाता है । इस लोक गीत मे ताल के निबद्ध और अनिबद्ध दोनो स्वरूप भी दिखाई पडते है दादरा ताल मे निबद्ध धुन की स्वरलिपि –

सा – नि
वा ऽ लू

र – र	सा – सनि़	ध़ – ध	प – प़
रे ऽ ति	या ऽ इ ऽ ग	ग ऽ रि ऽ	या ऽ च
ध – ध	स – नि	सा – –	ग – ग
सा बि	कै	से	हा
	0	× .	0

अतरे की पहली पक्ति बिना ताल के गाई जाती है जैसे –

ग – ग ग ग ग म रे – रे – रे रे रे रे रे ग स
वा ऽ ही प न घ ट वा ऽ पै ऽ स खी के स हे ल री

इसके बाद दूसरी पक्ति कहरवा ताल मे बॉधी गई है जैसे –

																स	नि
																रे	ऽ
रेरे	रे	स	नि	ध	–	प	प	ध़	ध	स	नि	स		–			
सरि	या	वा	ट	छो	ऽ	ट	म	र	ब	कै	ऽ	से		ऽ			

इसके पश्चात् पुन. सम से कहरवा की लय मे दादरा शुरू हो जाता है ।

उपर्युक्त दादरा ताल मे बद्ध पक्ति 'धालू रेतिया डगरिया चलब कैसे' में 20 मात्राए है जिसे लोक गायक ने अपने धुन के अनुसार 24 मात्राओ मे निबद्ध किया है जो सटीक एव उचित ही है । कहरवा की पक्ति "रसरिया बाट छोट भरब कैसे मे 18 मात्राए है जिसे लोक गायक ने 16 मात्राओ मे अर्थात जलद कहरवा (4 मात्रा) मे गाया है। मात्रानुकूल ही दादरातथा कहरवा ताल मे गीत को निबद्ध किया गया है। इस गीत मे 6 मात्रा के बाद 4 मात्रा तथा पुनः 4 मात्रा के बाद 6 मात्रा मे गाकर 6 मात्रा मे 4 मात्रा, तथा 4 मात्रा मे 6 मात्रा का सयोजन कितने सुन्दर ढग से किया है, यह देखते ही बनता है ।

उपरोक्त से सिद्ध होता है कि लोक सगीत मे मात्रिक छदो का बाहुल्य है। इन मात्रिक छदो की विशेषता यह है कि वे भाव, रस के अनुकूल विभिन्न तालो मे निबद्ध है। तालो के प्राण– ग्रह, जाति, काल, मार्ग, गति, यति प्रस्तार ही इन लोक गीतो मे ताल का निर्णय करते है । यद्यपि, गीतो मे निश्चित छद नही होने पर, फिर भी उनमे गति तथा यति विद्यमान है जिससे गायक को सुविधा मिलती है । वह स्वर लहरी तथा लयात्मकता के आधार पर इन गीत के शब्दो को कभी हृस्व कर लेता है तथा कभी दीर्घ रूप मे । इन लोकगीतो मे तुकान्त का विधान है और केवल तुकान्त मे ही नही वरन् गीत के प्रत्यैक प्रधान शब्द मे ऊपर और नीचे की पंक्तियो मे एकरूपता है। इस विधान से लयात्मकता एव ताल के विधान मे भी सरलता प्राप्त होती हे। आश्चर्य की बात है कि लोकगीत मे तालो का विधान और शास्त्रीय सगीत के तालो के विधान में अपूर्व एकरूपता दिखाई पडती है ।

लोक गीतो मे छन्दात्मकता का मूल्याकन लोकगायक की गेय परिपाटी तथा मन की तरग पर आश्रित है। गायक की गेय परिपाटी की विशेषता के कारण ही गीतो की कोई पंक्ति छोटी तथा कोई पक्ति बडी होती है । उसे न तो छद का ज्ञान होता है और न पिंगल शास्त्र का। गायक शब्दो, अक्षरो तथा मात्राओ को अपने धुन के अनुकूल रखता है। भाव, स्वर, लय, छद, शब्द आदि सभी एक सूत्र मे पिरोहे हुए दिखाई पडते है । गीतो मे लय है, गति है और ताल का प्राण यति है। ताल कुछ गीतो में उपान्त्य स्वर पर विशेष काल तक विश्राम करने की रीति है। जैसे बिरहा मे या धोबियो के गीत मे (पुनरूक्ति या जोड के शब्दो अथवा टेक का प्रयोग गीत के छद की मात्राओ को पूर्ण करने के लिये ही की जाती है । वस्तुत. इस प्रस्तार शैली से "ताल" पूर्ण होती है तथा गायक की शैली मे विलक्षणता आ जाती है ।

लोक सगीत मे लयात्मकता के निर्वाह के लिये वादक जिन बोलो का प्रयोग करता है उसमे शास्त्रीय नियमों का पालन नही होता है। अधिकाश निरक्षर होते है। उन्हे शास्त्रीय तालो के ठेका, ताल, काल, खाली, भरी आदि का ज्ञान नही होता है फिर भी स्वराघात के आधार पर लय मे लीन होकर वे अपने वाद्य को विभिन्न लयो मे श्रेष्ठ रीति से बजाते हैं । उनके ताल के बोल दो मात्रा, तीन मात्रा, चार मात्रा अथवा सात मात्रा उनके स्वयं के निर्मित होते है । वादक लय मे भीग कर अपनी कला का प्रदर्शन करता है ।

सगीत मे रस का विधान चचल प्रकृति के राग (धुन) द्रुत कहरवा मे, श्रृगार रस (सयोग) के गीतो मे कहरवा और दादरा का ही प्रयोग होता है । विरह, बिदाई तथा अन्य हृदय –स्पर्शी लोक गीतो मे दीपचंदी , खेमटा तथा झपताल का प्रयोग होता है । भजन देवी–गीत श्रमगीत. पूर्वी आदि कहरवा ताल मे ही निबद्ध है यद्यपि इन तालों को लोक वादक अपने ही ढग से बजाता है। शास्त्रीय ठेके पीछे दिया जा चुके है। [1]

---

1. इस शोध प्रबन्ध के पृष्ठ 80-81 पर तालो के ठेके उपलब्ध है ।

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि 3 मात्रा, 4 मात्रा के तालो का विकसित रूप दादरा, कहरवा, खेमटा तथा दीपचदी (चाचर) आदि है ।

सगीत मे प्रयुक्त तालो मे नैसगिक प्रभाव है । ताल तलैया ताता थैई, के अनुसार वस्तुत ताल, तलैया ही है जिसमे डूब कर, अथवा मज्जन कर अनेक तत्व, रस, वादन शैली की खोज की जा सकती है । सामूहिक गायन तथा वादन के साथ तबला, ढोलक मे ताल सम्पूर्ण वातावरण मे गूँज जाती है । ताल के बीच मे थाप देने के परिपाटी लोक शैली की ही विशेषता है। नौटकी के नगाडा वादन से सम्पूर्ण ग्रामीण नर-नारी झूम उठता हे। सगीत मे नगाडा की मुक्त वादन शैली तालो के प्रस्तार का ही निरूपण करते है । लय, गति अथवा ताल सगीत की आत्मा हे । गीतो की थिरकन है। लोकधुन तथा ताल मे अन्योन्य सबध है । निश्चय ही सगीत के कलेवर को सजीव ताल और छन्द ही करते है ।

सगीत के क्षेत्र मे कलाकर स्वय "रसात्मक" प्रभाव का "सृजक" है , परम्परा का "सृष्टा" , अनुयायी तथा सुरक्षा का "पोषक भी। लोक-सगीत से सम्बन्धित होने पर सगीत का "रस-पक्ष" और उभर कर सामने आता है । लोकगीतो मे भावो से ही रस की उत्पत्ति होती है । लोकगीतो का प्राण है "भाव" । हृदय की अनुभूतियो की मार्मिक अभिव्यक्ति इन गीतो मे होता है ।

पचम अध्याय

रस :

रस शब्द का अर्थ "पदार्थों का सारभूत द्रव्य" सर्वप्रथम वेद मे उल्लिखित हुआ । उपनिषद् मे "रस" शब्द का प्रयोग द्रव्य के अर्थ मे मिलता है । अथर्ववेद मे रस ग्रहण की परिकल्पना "रसनापर्वणादपि" का उल्लेख करते हुए किया गया है । वेद मे रस भौतिक अर्थ की सीमा पार कर आध्यात्मिक अर्थ की सीमा मे प्रवेश करता है । वाणी के चमत्कार से वैदिक ऋषि पूर्णत. परिचित थे । इसकी विभूतियो का उन्होने अनेक स्थलो पर भाव विभोर होकर उद्गीथ किया है । ऋषि वाणी का पान करते थे । वाणी उन्हे मधुरपेय अथवा रस के रूप मे मान्य थी । महाभारत मे भी यह जल, सुरा पेय, गध आदि का ही पर्याय है ।

वाल्मीकि रामायण के प्रचलित सस्करणो के चतुर्थ सर्ग मे नौ रसो का अत्यन्त स्पष्ट उल्लेख है । महाभारत काल के पश्चात भरत नाट्यशास्त्र के रचना काल तक सूत्र काल आता है । इसी युग मे वात्स्यायन का "कामसूत्र"[1] लिखा गया । कामसूत्र मे "रस" शब्द को शास्त्रीय अर्थ मे लिया गया । नाट्यशास्त्र मे रस भावादि[2] का विस्तार से वर्णन है । मुनि रस और भाव के विषय मे पाँच प्रश्न करते है । उसके उत्तर मे रसभावादि के स्वरूप, परस्पर सम्बन्ध तथा भेदो का विस्तार से विवेचना करते है । रसो का वर्णन "छठे अध्याय" मे करते है । सचारी और सात्विक भावो का निरूपण "सातवे अध्याय" मे किया गया है । इसके पश्चात के अन्य अध्यायो मे रस की शेष सामग्री नायिका के अगज, सहज और उयत्नज, अलकार, कामदशा तथा अवस्था अनुसार नायिका के वासक सज्जा आदि आठ भेद प्रकृति के अनुसार उत्तम, मध्यम और अधम नायक

---

1 कामसूत्र–जयमगल टीका–2 1 65/2 2 32/6 2 55

2. नाट्यशास्त्र– भरत कृत–6/17

– नायिका भेद तथा उसी प्रसग की चर्चा है । इसके अतिरिक्त "सगीत", अभिनय (आभूषण आदि का प्रयोग) वाद्य यत्रो के प्रयोग आदि के सदर्भ मे भी रस का उल्लेख किया गया है । इन प्रसगो मे विभिन्न रसो के अनुसार स्वर विधान, वाद्य यत्र, वेषभूषा आदि के प्रयोगो की व्यवस्था है । भावो की अभिव्यक्ति करने की चेष्टा प्राणीमात्र का स्वभाव है । भावाभिव्यक्ति के साधनो मे नाद के उस रूप का भी विशिष्ट स्थान है जो व्याकरण की दृष्टि से निरर्थक होता है । विविध भावो से सयुक्त होकर स्थायी भाव "रस" बनते है ।

"तत्र विभावानुभाव व्यभिचारी सयोगाद्र सनिष्पति [1]

इस सूत्र मे "रस" की निष्पत्ति का आख्यान है, स्वरूप का नही । परन्तु इसके स्वरूप का विवेचन भी इसी मे निहित है । जिस प्रकार नानाप्रकार के व्यजनो, औषधियो तथा द्रव्यो के सयोग से भोज्यरस की निष्पत्ति होती है उसी प्रकार विविध भावो से सयुक्त होकर स्थायी भाव भी "रस" रूप को प्राप्त होते है । रस का अर्थ है आनन्द और आनन्द विषयगत न होकर आत्मगत ही होता है । जब श्रोता या दर्शक के समक्ष साहित्य, लय, ताल और स्वर, राग आदि की सहायता से जो सगीत प्रस्तुत किया जाता है तो श्रोता या प्रेक्षक के चित्त मे स्थित रति आदि स्थायीभाव जागृत होकर उस चरमसीमा तक उद्दीप्त हो जाते है जहाँ प्रेक्षक या श्रोता निर्विघ्न होकर अर्थात व्यक्ति, देशकाल आदि का अन्तरभूलकर "प्रस्तुत" के साथ तन्मय होकर आत्मविश्रान्तिमयी आनन्द चेतना मे विभोर हो जाता है । यही आनन्द चेतना "रस" है । अभिनव गुप्त के अनुसार नाट्य मे स्थित भावो से प्रभावित श्रोता मे उत्पन्न 'आनन्द चेतना' ही रस है ।

रस का आधार भाव है तथा यह आस्वाद का विषय है । चौदहवी शताब्दी के आचार्य विश्वनाथ[1] ने रस के विषय मे अपने विचार करते हुए लिखा है कि रस का आविर्भाव सतोगुण के उद्रेक की स्थिति मे होता है[2] रस अखण्ड है और पूर्ण है । यदि पूर्ण से कम है तो वह रस की स्थिति नही है । रस लोकोत्तर चमत्कार का प्राण है । रस न प्रत्यक्ष अनुभव है न परोक्ष, न कार्य है न ज्ञाप्त है और रस ऐसा ज्ञान है जिसमे ज्ञाता की चेतना विलीन हो जाती है । रस ब्रह्मानन्द सहोदर है तथा विषयानन्द से भिन्न है । उसका अनुभव चिन्मय है वह इन्द्रियो का विषय न होकर चैतन्य आत्मा का विषय है ।

"रस" सगीत का आस्वाद है । यह आस्वाद आनन्दमय है अर्थात रस एक प्रकार की आनन्द चेतना है । इस आनन्द चेतना मे आनन्द भोग आदि का प्राय अभाव तथा चैतन्य आत्मानन्द का सद्भाव रहता है । लौकिक भाव सगीत मे रस, लय, ताल, निवद्ध होकर अपना स्थूल इन्द्रिय रूप त्याग कर स्थूल रूप धारण कर लेते है और ये भाव देशकाल की सीमा से मुक्त साधारणीकृत हो जाते है । साधारणीकृत होने के कारण वे अपने ससर्ग से श्रोता या प्रेक्षक को भी "स्व", 'पर' आदि की भावना अथवा व्यक्तिगत राग-द्वेष से मुक्त कर देते है । अतएव सगीत अर्थात सगीत मे लय, ताल निबद्ध भावो के माध्यम से श्रोता को जो आत्मविश्रान्ति या आत्मपरामर्श या सविश्रान्ति उपलब्ध होती है उसमे एन्द्रिय सुख का प्राय. अभाव रहता है । भाव की भूमिका के बिना रस की स्थिति सम्भव नही है । नाट्यशास्त्र का यह वाक्य सर्वदा प्रमाण रहा है ।

"न भावहीनोऽस्ति रसोन भावो रस वर्जित [3]

रसानुभूति भावानुभूति से भिन्न है । इसी स्थिति मे दोनो एक

--1. साहित्य दर्पण-3,2,3

2 भट्ट नायक का भी यही मत है इसको अभिनव गुप्त ने यथावत स्वीकार किया है ।

3. नाट्य शास्त्र-षष्ट अध्याय-37 श्लोक

नही हो सकते । रस के आश्रयभूत स्थायीभाव आस्वाद की दृष्टि से सामान्यत दो प्रकार के माने जाते है--रति, उत्साह, विस्मय, हास्य का आस्वाद सुखद है शोक, क्रोध, भय तथा जुगुप्सा का आस्वाद लोक जीवन मे दुखद् है ।

वैज्ञानिक विश्लेषण के अनुसार भाव सहृदय के मानसपटल पर अचेतन रूप मे छुपे रहते है । भावोत्पत्ति मानवमात्र के व्यवहारिक या लौकिक जीवन से होती है । मनुष्य जब किसी से प्रेम, दया, घृणा करता है तो इन अनुभावो का प्रभाव उसके अवचेतन मन पर पडता है इन्ही भावो की अनुभूति जब उसको गति, नाद और काव्य आदि मे होती है तो वह छुपे हुए भाव, विभावादि से युक्त होकर रस मे बदल जाते है और मनुष्य की प्रक्रिया उसी रस के अनुसार होती है । भावो का स्मरण व्यक्ति की सीमा मे परिवद्ध होने के कारण परिस्थिति के अनुसार सुखमय और दुखमय दोनो प्रकार का होता है । स्मृति की दशा मे चित्त बीतविघ्न नही होता । इसलिये मिलन की स्मृति सुखद् और वियोग की दुखद् होती है । परोक्ष अनुभव होने के कारण दोनो मे तीव्रता की कमी तो अवश्य आती है किन्तु अनुभूत्यात्मक रूप नही बदलता । "रस" मे सयोग और वियोग के आस्वाद मे मधुर और कटु इस प्रकार का भेद नही होता । सगीत मे लयताल, निबद्ध प्रेम प्रसग के भावो से पूर्वानुभूति, प्रेम सस्कारो की उद्‌बुद्धि भी, तब तक रस का रूप धारण नही करती जब तक व्यक्ति की सीमाये विद्यमान रहती है । जब सगीत के प्रभाव से यह सीमाएँ टूट जाती है तभी प्रेम का यह सस्कार रस मे परिणत होता है । अत· भाव का स्मरण रस नही है । परोक्ष अनुभव होने के कारण स्मृति मे इन्द्रिय तत्व कम हो जाता है और कल्पना तत्व का भी समावेश हो जाता है । इसलिए वह प्रत्यक्ष भावानुभूति की अपेक्षा रसानुभूति के निकट प्रतीत होती है । रस साधारणीकृत भावो का आस्वाद है । साधारणीकृत का भाव निर्विषय होने के कारण राग-द्वेष के दश से मुक्त हो जाता है । इसलिए वह आनन्दमय होता है । यह एक प्रकार से

भाव के माध्यम से आत्मा अर्थात शुद्ध–बुद्ध चेतना का आनन्द है जो सर्वथा आनन्दमय ही होता है । आनन्द के दो रूप है– उदात्त आत्मविश्रान्ति, आल्हाद इन दोनो रूपो मे प्रीति तत्व या सुखात्मक रूप सामान्य है । रस दुखात्मक भी है अप्रीतिकर स्थायी भावो पर आश्रित करूण, भयानक, वीभत्स आदि का स्वरूप दुखात्मक भी होता है । रस उभयात्मक है अर्थात सुख दुखमयी मिश्र अनुभूति है तभी स्थायी भावो मे सुख दुख का विभिन्न अनुपातो मे मिश्रण रहता है जो उन पर आश्रित रसो मे भी प्रतिफलित होता है ।

सामान्य हृदय न तो दार्शनिक होता है और न सत या सूफी उसकी सहृदयता तो सामान्य मानव मे ही निहित है । इसलिए यह कल्पना करना कि दुख के प्रति अनुरक्त होकर या दुखजन्य लाभ के लिए सहृदय करूण और भयानक प्रसगो से कटु रस ग्रहण करता है, लोकानुभव के विरूद्ध है । करूणादि रसो का अनुभव तो श्रोता या द्रष्टा के लिए दुखमय ही होता है । फिरभी वह कलाकार के कौशल के चमत्कार के प्रति आकृष्ट होकर, सगीत का श्रवण करता है । जिसके कारण श्रोता और दर्शक को करूणादि रसो के आस्वाद मे भी आह्लाद की भ्रान्ति होती है । इस स्पष्टीकरण को स्वीकार कर लेने पर सगीत कला के चमत्कार और रस आस्वाद का स्पष्ट विच्छेद हो जाता है । दोनो की सर्वथा पृथक स्थिति मानने को वाध्य होना पडता है ।

रस के कारक :

सम्पूर्ण सृष्टि आनन्द से ही उद्‌भूत है, ब्रह्म के आनन्द की अभिव्यक्ति ही रस है । उपनिषद् मे कहा है –

आनन्दाद्धि खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्द प्रयन्ति, अभिसविशन्ति ।।

जहा आनन्द का अतिरेक होता है वहाँ किसी न किसी सृष्टि मे अभिव्यक्त हो जाता है । रस का सम्बन्ध आनन्द से जुडा है । रस

की निष्पत्ति भाव से होती है । यह सर्वमान्य तथ्य है । अग्रेजी मे भाव के लिए प्र'य. इमोशन शब्द का प्रयोग होता है । आधुनिक हिन्दी विद्वानो ने इसके अनुरूप "अनुभूति" शब्द गढा है । यद्यपि यह भाव का पर्याय नही है । इमोशन शब्द के पहले "ई" लगा है । मोशन, मूव से बना है । जिसका शाब्दिक अर्थ है जो सचालित करता है वह आन्तरिक भाव जो बाहर अभिव्यक्त हो जाय । यदि कोई भाव भीतर ही भीतर रह जाय तो उसे भाव की अपेक्षा भावना (फीलिग) कहना अधिक उपयुक्त होगा । क्रोध आने पर आँखे लाल हो जाना, मुट्ठी बँध जाना, दूसरे को मारने, नकोटने लगना आदि यह सब भाव (इमोशन) के साथ जुडे है । शोक मे आह भरना, रोना केवल भीतर ही भीतर शोक करना, ऐसा नही होना । अत भाव, भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए सचालित होता है । रस जन्म लेता है जब बाहरी अभिव्यक्ति को रोक कर मन के भीतर किसी भाव को चबाया, घुलाया जाता है । मनरूपी जिह्वा से चलाते है इससे जो टपकता है वह 'रस' है । भावो को लेकर मन पागुर करता है इसके दौरान जो टपकता है वही 'रस' है । जीवन मे जो कारण है वही कला मे विभाव है परन्तु कला मे आकर भावो की बात बदल जाती है । कहा गया है "भावते इति भाव" अर्थात् जो हो रहा हो, गुजर रहा हो वह 'भाव' है । "भावयति इति भाव" के अर्थ मे जो कलाकार द्वारा श्रोताओ पर गुजरवाया जा रहा हो वह 'भाव' है ।

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र मे उल्लिखित किया है कि विविध भावों के संयोग से अर्थात् विभाव, व्यभिचारीभाव आदि से सयुक्त, स्थायी भाव ही रस में परिणित हो जाते है । "भाव" का सर्वप्रथम विवेचन नाट्यशास्त्र के सप्तम् अध्याय में भरत मुनि ने किया है । उन्होने भाव और विभाव के विषय मे इस प्रकार उल्लिखित किया है :–

"विभावानुभाव व्यभिचारी सयोगात् रस निष्पत्ति "

इनके अनुसार भाव, विभाव और अनुभाव के सयोग से रस निष्पत्ति सभव है । संगीत मे भरत का स्थायी भाव सगीत का वादी स्वर, विभाव— सवादी, तथा अनुभाव-अनुवादी स्वर है। अनुभाव है भावो का अनुगमन करने वाली, वाह्य अभिव्यक्ति वह अनुवादी स्वर का पर्याय कदाचित नही हो सकती। नाटक मे जो तत्व आवश्यक है, अनिवार्य नही कि सगीत कला मे भी उसी रूप मे उन तत्वो का प्रयोग उचित हो। एक श्लोक के माध्यम से इस तथ्य को स्पष्ट करने का प्रयास इस प्रकार है –

कमलिनि मालिनी करोपि चेत ।

मिमिति वकैरेवहेलिता क्षनभिज्ञै ।।

परिगत मकरन्दमार्मि कास्ते।

जगति भवन्तु चिरायुषोभिलिन्दा।।

एक कमलिनी सकुचाई खडी है। सरोवर तट पर बगुला सामने तैरती मछली को पकड़ने की ताक मे उसकी ओर ध्यान लगाये बैठा है। कवि कहता है "कमलिनी क्या तूँ बगुले के द्वारा उपेक्षित समझ कर सकुचाई है। घबरामत तेरे सौरभ को जानने वाले पारखी, अभी जीवित है।" इस प्रकार सुन्दर काव्योक्ति मे कौन सा विभाव, अनुभाव है? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है जब "मुक्तक" पर विभाव, अनुभाव सिद्धान्त लागू नही होते तो सगीत पर भी भरत के रस सम्बन्धि सिद्धान्त अक्षरशः घटित नही हो सकते।

सगीतज्ञ रस निष्पत्ति किस प्रकार करता है?। संगीत-रत्नाकर मे शारगदेव ने इस पर विचार किया गया है तथा छियानवे प्रकार गिनाये गये हैं जिनसे निष्पत्ति सम्भव है । इनमे चार प्रकार प्रमुख हैं :– उच्चारण, लय, काकु, तथा विश्रान्ति ।

स्वर का उच्चारण जिसमे स्वर के प्रभाव की मार्मिकता का रहस्य निहित है । आवाज को कहाँ चौडी, सकरी, धीमी तेज किया जाय? जिससे रस टपकता है । भरत ने कोमल गधार और निषाद को करूण रस की अभिव्यक्ति का माध्यम बताया है । परन्तु बहार मे यही दोनो स्वर जिस सन्निवेश में आते है उससे उल्लास की अभिव्यक्ति होती है । सन्निवेश मे भिन्नता होने के कारण रस मे भिन्नता अपरिहार्य है । एक स्वर से कभी रस निष्पत्ति नही हो सकती।

अत: रागों के स्वर सन्निवेश के अनुसार रस अपना रूप बदलता रहता है । यमन तथा तिलक कामोद मे गधार लगता है परन्तु अलग-अलग ढग से अलग-अलग रस की निष्पत्ति करता है। केदार मे मध्यम लगता है तो प्रतीत होता है कि चाँदनी छिटक रही है वही मध्यम जब भीमपलासी के स्वरो के साथ प्रयुक्त होता है तो उसका प्रभाव शान्त उदासी मे बदल जाता है । एक स्वर पर अन्य आस-पास स्वरो की जैसी छाया पडती है उसका रूप, तदनुरूप बदल जाता है ।

सगीत रत्नाकर मे रस निष्पत्ति के लिये लय को भी एक महत्वपूर्ण कारक बताया गया है । मध्य लय को श्रृगार प्रधान तथा विलम्बित को करूण रस प्रधान बतलाया गया है । सगीत मे लय, बदिश की प्रकृति, राग के स्वभाव के अनुसार परस्पर ताल-मेल होने पर लय विशेष से रस की निष्पत्ति होगी। "ओओ" शब्द की आज्ञा, अनुरोध सूचक बोध गम्यता में सभी लय अलग है। "कौनगतभई" बदिश को लेकर यदि द्रुतलय मे प्रस्तुत किया जाय तो विरहिणी नायिका के विप्रलम्भ श्रृगार की अभिव्यक्ति नही होगी। इसी प्रकार दरबारी जैसे गम्भीर राग मे "घर जाने दे छाँड दे मोरी बँइयाँ" बन्दिश द्रुतलय मे प्रस्तुत होने पर रसात्मक विकर्षण ही करेगी । बन्दिश तथा राग के स्वाभाव मे समन्वय होने के साथ ही साथ लय का निर्धारण भी सफलता पूर्वक रसाभिव्यक्ति होने मे सहायक होगा ।

काकु भेद, सगीत रत्नाकर में रस निष्पत्ति के कारको मे वर्णन किया गया है। 'काकु' का अथ है ध्वनि का लचीलापन अथवा हृदय के उत्ताप, भाव को अभिव्यक्त करने वाला। काव्य तथा सगीत मे अन्तर है। कवि एक बात कह कर आगे बढ़ जाता है । संगीत मे रूपकालप्ति , आलप्ति की सुकुमारता , एक-एक भाव के सूक्ष्मतम भेद ध्वनि काकु द्वारा सगीत के विभिन्न रूपो में व्यक्त होते है । यह अभिव्यक्ति सगीत से ही सभव है। सगीत में शब्दों का महत्व कम है । स्वर तथा सूक्ष्म भावो को सुनना होगा तभी रस का आनन्द मिलेगा "टेर सुनों" स्वरों मे सुनो के अनगिनत रूपों की सूक्ष्माभिव्यक्ति सुरों से होती है।

सगीत रत्नाकर मे "विश्रान्ति" रस निष्पत्ति के लिये आवश्यक कारको में से एक है। कही-कही अल्प विश्रान्ति से रस विशेष की उत्पत्ति होती है।

आहत गमक से बात कहकर समझाई जाती है । जैसे देशी मे "कहा अब मान" को कई प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है । जिससे मचलकर .अनुरोधपूर्ण स्वरो मे आग्रह का परिचय मिलता है । ताल के विभाग, ताली, खाली, चलन आदि सम, विषम, अतीत.अनागत, ताल के ठेके के प्रकार , लग्गी, लडी , बाँट, ताल के ठके की विभिन्न लयकारियाँ आदि रस निष्पत्ति करने मे बहुत महत्वपूर्ण योगदान देती है ।

रस के प्रकार :

संगीत की व्यवहारिक साधना मे "रस" सबसे अधिक महत्वपूर्ण है और कला का प्राण भी। इसी कारण "रस" पक्ष आदि काल से ही सगीतज्ञो तथा सगीत शास्त्रियो को समान रूप से आन्दोलित करता रहा है । रस का अनिवार्य परिणाम है "आनन्द" परन्तु आनन्द का परिणाम सदैव "रस" हो आवश्यक नही अभिनव गुप्त की मान्यता हे कि रस दर्शक मे है नट मे नही, परन्तु सगीत मे यह कहना कठिन है कि श्रोता की भाति गायक अथवा वादक उस रसआनन्द को अनुभव कर रहा है या नही या कलाकार या श्रोता दोनो को आनन्द प्राप्त हो.यह आवश्यक नही है । रस का प्रमुख तत्व है "साधारणीकरण"है।प्रत्यक्षत जो गायक अथवा वादक मंच पर बेठा है वह अनुकरण कर रहा है अथवा स्वतन्त्र रचना कर रहा है या वह जो भी प्रस्तुत कर रहा है उसका श्रोता, दृष्टा के मध्य साधारणीकरण होना चाहिये ।

संगीत आन्तरिक लोकोत्तर आनन्द की अभिव्यक्ति है । रस आनन्द की अनुभूति है । भाव और रस परस्पर पर्याय नहीं है । भाव स्मरण रस का रूप लेता है अत· कहा गया है "भाव. स्मरण रस."। भाव सुखद और दुखद दोनो हो सकते है परन्तु रस सदैव आनन्द रूप ही होता है। रसात्मक अभिव्यजना का अर्थ है सहृदय श्रोता, दर्शक द्वारा आस्वाद अथवा चर्वण, जो एक वस्तु तत्व है, एक बिलक्षण ससंवेदन है, जिसका सौन्दर्य आनन्द जन्य किसी सवेदन प्रकार मे सभव नहीं है । जो नाम रूपात्मकता से परे है। रस के अनुभव से सहृदय श्रोता को ऐसा लगने लगता है कि ससार मे जो कुछ है कवल रस ही रस है ।

दार्शनिक तो इस दृष्टि को भी ब्रम्ह के परमानन्द की अभिव्यक्ति मानते है। इस सृष्टि मे जो कुछ भी अलौकिक है वह आनन्द की अभिव्यक्ति है। आनन्द से ही जीवो का आर्विभाव होता है आनन्द ही सृष्टि का सरक्षण करता है और अन्त मे जीवो का आनन्द मे तिरोभाव हो जाता है। भक्ति सगीत का उद्देश्य इसी प्रकार के आनन्द की प्राप्ति करना है ।

भरतमुनि ने गीत, वाद्य प्रयोग को दो प्रसग मे कहा है .– एक तो पूर्व रग मे और दूसरे नाट्य मे । पूर्वरग मे कोई "अवस्था" नही रहती अर्थात गीत और वाद्य नाट्यगत किसी परिस्थिति के पोषक या उपरजक मात्र नही होते इसलिये अभिनव गुप्त ने कहा कि गीत और वाद्य वहाँ स्वय प्रतिष्ठित होते है। उन्हें किसी रस के अनुसार नहीं प्रयुक्त होना है । भरत ने पूर्वरग के प्रसंग मे रस का नाम कही नही लिया है । पूर्वरग के प्रसग मे भरत ने रसों का नाम न लेकर केवल दो भेद किये है , सुकुमार और उद्धत । जहाँ किसी रस या भाव विशेष का नाम न लिया जा सकता हो वहाँ ये दो भेद अत्यन्त सार्थक माने जाते है। सम्पूर्ण "भाव–राज्य" मे दो ही भेद प्रमुख है। एक तो वह जिसमे चित्त पिघलता है और दूसरा वह जिसमे चित्त मे उत्तेजना आती है । ये दो क्रियाये इसके धर्म है, ऐसा मम्मट ने कहा है। चित्त की द्रुति की दृष्टि से अर्थात चित्त के पिघलने की स्थिति मे शान्त, श्रृगार और करूण रस की चरमपरिणति माधुर्य गुण है। इसी प्रकार चित्त दीप्ति की दृष्टि से रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अदभुत सबकी चरम परिणति एक ही है वह है ओजगुण।

"श्रृगार हास्य करूणा रौद्र वीर भयानका
भीभत्सादभुतसज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसा. स्मृता ।
एते ह्यष्टौ रसा. प्रोक्ता. द्रुहिणैन महात्मना।।[1]

अर्थात श्रृगार हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अदभुत यह सख्या निर्धारण भरत ने नहीं किया है वरन उनसे पूर्व द्रुहिण नाम के कोई प्राचीन विद्वान इस विषय में निर्णय दे चुके थे।

भरतोक्त सुकुमार और उद्धत को माधुर्य और ओजस के समकक्ष

---

1. भरत – कृत नाट्यशास्त्र 6/16 – 17 पूर्वार्ध

माना जा सकता है । नाट्य से स्वतन्त्र आज के गीत, वाद्य प्रयोग को ‸ सुकुमार और उद्धत अथवा माधुर्य और ओजस इन दो वर्गों मे बाँटा जा सकता है। श्रृंगार , हास्य, करूण, रौद्र, वीर , भयानक.वीभत्य और अदभुत रसो के भेदो के अन्तर्गत जो संगीत, लय और ताल नही आते वे निश्चित रूप से अद्‌भुत रस के विशेष प्रकार के अन्तर्गत आते है । जैसा शंकुक आचार्य कहते है "रस" सहृदय सामाजिको द्वारा कलात्मक, आनन्दमय सवेदनशील अनुभव कहा जा सकता है। रस का सार तत्व "आस्वाद" है परन्तु यह आस्वाद अनुभव परक होने के कारण पानक रस जैसे इलाइची की सुगन्धि, काली मिर्च, शर्करा से बनाये गये कश्मीरी पेय पानक जैसा है। शोक भाव प्रधान करूण रस भी एक विशिष्ट आनन्द की अनुभूति देता है । विप्रलम्भ भाव मे चिन्ता, निर्वेद, विरहाकुलता होते हुये भी श्रृगार रस का अलौकिक आनन्द है। रस की यही सबसे बडी विशेषता है।

"लोके हर्ष शोक कारणेभ्यो हर्ष शोकैवाहे जायते, अत्र पुन सर्वेभ्यो इवतेभ्य सुखमित्यलम् किकत्वम्"

अर्थात सामान्य जीवन मे हर्ष से उल्लास, सुख और दुख से शोक की अनुभूति होती है । परन्तु रस की अपनी विशेषता है चाहे करूण हो , चाहे सवेग प्रधान अन्य स्थिति हो, आनन्द की अनुभूति ही होती है । सगीत के क्षेत्र मे कलाकार स्वय रसात्मक प्रभाव का सृजक है , परम्परा का सृष्टा अनुयायी तथा सुरक्षा का पोषक भी। लोक सगीत से सम्बन्धित होने पर सगीत का "रस पक्ष" और उभर का सामने आता है। लोक गीतो मे भावों से ही रस की उत्पत्ति होती है। लोक गीतो का प्राण है "भाव"। हृदय की अनुभूतियो की मार्मिक अभिव्यक्ति इन गीतों मे होती है । इनमे कही मिलन की रागिनी है तो कही विछोह की "अनन्त पीडा। कहीं जन्म और विवाह का उल्लास है तो कहीं मृत्यु का विषाद। पारिवारिक सम्बन्धों की प्रीति, सहानुभूति, त्याग अनुशासन, सशय और ईर्ष्या आदि भावो का भी इनमें सहज प्रकाशन हुआ है । भारतीय काव्य शास्त्र मे वर्णित नव रसों का अनुभव लोक गीतों मे होता है । किन्तु आनन्द रस के अतिरिक्त संगीत मे नव रसो मे मुख्यत(5)पाँच प्रकार के रसो का ही अनुभव किया जाता है । भरत के द्वारा उल्लिखित आठ रसों का वर्णन नाट्य के संदर्भ में उचित प्रतीत होता है। धनजय तथा भरत ने मानवीय मूल प्रवृत्तियो के आधार पर रसो की कल्पना प्रस्तुत की है। एक दूसरी सूची मानव की चित्त स्थिति के विकास, विस्तार, क्षोभ तथा

विक्षेप के आधार पर बनायी जा सकती है। भरत सौन्दर्य दर्शन पर सन्तुलित विचार न करके जब भरत के सूत्र को सगीत पर बलात लादा जाता है तो विचित्र कृत्रिमता उत्पन्न होती है । घृणा, जुगुप्सा के भाव भी रस मे परिणित होते है। पृष्ठ भूमि सगीत मे दृश्य से मिलता-जुलता अथवा दृश्य के अनुकूल उद्दीपन करने वाला सगीत महत्वपूर्ण होता है । सगीत मे वीभत्स जैसे रसो का स्थान नही है। हास्य ही लेले, हास्य सामान्यत स्वरो के उच्चारण, आदि मे विकृति से उत्पन्न होता है। सगीत मे ऐसा करना सगीत सिद्धान्त के प्रतिकूल होगा। इसलिये भरत के आठ रस सगीत मे सम्भव नही है। अभिनवगुप्त ने शान्त रस और दूसरे विद्वानो ने "वात्सल्य" रस" मधुसूदन सरस्वती ने "भक्ति रसामृत सिन्धु" मे भक्ति रस जोडा। आचार्य विश्वनाथ केवल अदभुत रस ही मानते है। आनन्द से चमत्कृत हो जाना ही प्रमुख रस है। भोज "श्रृगार प्रकाश" मे केवल श्रृगार को ही रस मानते है। उनके अनुसार श्रृगार को रति की अपेक्षा सौन्दर्य बोध या सौन्दर्य की सृष्टि माना जाना चाहिये

भरत मुनि के सिद्धान्तो से आगे बढकर मूल प्रकृति के स्थान पर चित्त वृत्ति के आधार पर रस का अध्ययन और रसास्वादन किया जाना उचित प्रतीत होता है । चित्त वृत्ति की तीन स्थितियाँ है:- प्रसाद, ओज और माधुर्य "आल्हाद कत्वं माधुर्य श्रृगारे द्रुतिकारणम्"

चित्त के द्रवीभाव का कारण और श्रृंगार मे विद्यमान जो आल्हादस्वरूपत्व है वह माधुर्य गुण है। — "करूणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम।" यह माधुर्य करूण विप्रलम्भ और शान्त मे अधिक होता है।"चितस्य विस्तार रूपदीप्तत्वजनकमोज " अर्थात चित्त के विस्तार रूपदीप्तत्व का जनक ओजगुण है। यह वीर, वीभत्स और रौद्र रसो मे दिखाई देता है ।

शुष्केन्धनाग्नि वत स्वच्छजल वत्सहसैव य ।

व्याजोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थिति· । ·

सूखे ईधन में अग्नि के समान, स्वच्छ वस्त्र मे जल के समान जो चित्त मे सहसा व्याप्त हो जाता है, वह सब मे रहने वाला प्रसाद गुण है। सगीत के सदर्भ में रस सम्बन्धित अध्ययन का विस्तृत विश्लेषण करने के लिये रस के प्रकारो का वर्णन करना उपयुक्त होगा ।

श्रृंगार रस – साहित्य के सदर्भ मे श्रग तथा आर दो शब्दो से बना है । श्रृंगार जिसका अथ है कामोद्रेक । "श्र" धातु से आर शब्द बना है । अर्थ है गमन । गमन का अर्थ यहाँ पर प्राप्ति हे अत श्रृगार का अर्थ है "काम वृद्धि की प्राप्ति" इनके दो भेद है सयोग श्रृगार व वियोग श्रृगार है।

I-संयोग श्रृगार – इस श्रृगार रस के अन्तर्गत नायक नायिका के पारस्परिक अलिगन, अवलोकन, सभाषण एव सामिप्य, मिलन का अनुभव करते है । वहाँ सयोग श्रृंगार होता है। इसमे निम्नलिखित तत्वों का होना आवश्यक है । जैसे – नायक– नायिका, निर्जन स्थान, एकान्त, बसन्त ऋतु, नदीतट, चाँदनी, सगीत तथा शारीरिक प्राकृतिक दृश्य आदि ।

II-वियोग श्रृंगार – जब नायक–नायिका मे मिलन होकर भी विछोह हो जाय उसे वियोग श्रृगार कहते है । इसके अन्तर्गत मिलन से पूर्व गुण श्रवण, चित्रदर्शन, स्वप्न दर्शन और प्रत्यक्ष दर्शन, मिलन के पश्चात रूठने की प्रवृत्ति , मिलन के पश्चात नायक के परदेश गमन, विदेश प्रवास, नायक में अन्य स्त्री के प्रति प्रेम उत्पन्न होने की आशंका , प्रियतम के वियोग में प्रियतमा के हृदय मे, उसके मिलन की जो तडपन उत्पन्न होती है आदि सभी स्थिति वियोग श्रृगार के अन्तर्गत आती है ।

संगीत के सदर्भ मे नाट्यशास्त्र मे विभिन्न रसों के लिये उदात्त, स्वरित तथा कम्पित स्वरो के प्रयोग का निर्देश मिलता है । श्रृगार के लिये स्वरित और उदात्त स्वरो के प्रयोग का उल्लेख मिलता है । भरत ने स्वरों को वर्ण कहा है [1] और मध्यम तथा पंचम स्वरों का प्रयोग श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति के लिये प्रयोग करने का निर्देश दिया है।[2] बृहद्देशी तथा सगीत रत्नाकर में मध्यम पचम स्वरो के द्वारा श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति करने का निर्देश है । काव्य शास्त्र और सगीत के संदर्भ मे वर्ण की ध्वनि का रस से सम्बन्ध जोडा जाता है जो बंदिशों की रचना मे सहायक होते है और श्रृंगार रस की कोमल कान्त पदावली द्वारा अभिव्यक्ति के लिये अनुस्वार का प्रयोग किया जाता है ।

---

1 ना0शा0 भरत कृत 19/38/39

2 ना0शा0 भरत कृत 29/13/40

लोक-गीतो मे श्रृगार रस के वियोग पक्ष का ही बाहुल्य है । प्रेमी, पति का विदेश गमन , पति के वियोग मे पत्नी प्रेयसी का जितना सूक्ष्म चित्रण अवधी लोक गीतो मे प्राप्त होता है उतना शायद ही कही प्राप्त हो । अषाढ तथा सावन के बादलो को देखकर स्त्री का पति वियोग चरम सीमा को प्राप्त हो जाता है या पति, पत्नी से रूष्ट होकर विदेश चला जाता है । पत्नी , पति विरह मे व्याकुल होकर श्यामा पक्षी से पति को घर लौटा लान की प्रार्थना करता है , आदि प्रसग लोक गीतो के काव्य की विषय वस्तु होते है उसी के अनुसार उनकी लय तथा ताल का सम्मिलन होता है ।

करूण रस – साहित्य मे करूण रस मे द्रव्य, वभव, प्रिय के नाश तथा अनिष्ट की आशंका से यह रस उत्पन्न होता है । करूण रस मे हृदय मे शोक का आविर्भाव होता है । प्रिय के विनाश से रूदन, चीत्कार, मृतकदाह, प्रिय से प्रेम, यश, गुण का स्मरण तथा चित्रावलोकन, विलाप, मूर्छा, उच्छवास, प्रलाप, जडता, पीला पडना, कम्प, चिन्ता, भ्रम आदि करूण रस के काव्य की विषय वस्तु होते है।

सगीत मे करूण रस की अभिव्यक्ति के लिये भरत मुनि ने उदात्त, स्वारेत और कम्पित स्वरों का प्रयोग करने का निर्देश दिया है। गंधार तथा निषाद स्वरो के बाहुल्य वाली रागो की अवतारणा से करूण रस की उत्पत्ति की सम्भावना भरत मुनि ने व्यक्त की है ।[1] सगीत रत्नाकर तथा वृहद्देशी मे गधार को करूण रस प्रधान स्वर कहा गया है । लोक गीतों मे करूण रस सम्बन्धि गीतो में बेटी की विदाई का चित्रण, उसकी काव्य रचना , लय , ताल आदि इस रस के प्रमुख उदाहरण है ।

वीर रस – साहित्य में वीर रस मे प्रताप विषय, अध्यवसाय, उत्साह शखनाद शत्रु का पराक्रम, युद्ध की ललकार और मारू वाद्यों का बजना, भृकुटि चढाना, सैन्य संचालन, अस्त्र–शस्त्र का प्रयोग, रोमांचक गर्वीली वाणी, उत्सुकता, आवेश, श्रम हर्ष, मरण आदि भाव वीर रस उत्पन्न करने मे सहायक होते है।

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र मे उदात्त और कम्पित स्वरो के प्रयोग का उल्लेख वीर रस की अभिव्यक्ति करने के लिये किया है। षडज और ऋषभ[2] का प्रयोग

---

1 नाOशाO 19/38 39

नाOशाO 19/38/39

वीर रस की अभिव्यक्ति करने के लिये नाट्यशास्त्र तथा वृहद्येशी और सगीत रत्नाकर में उल्लेख किया गया है ।

श्रृगार रस का स्थायी भाव रति होता है । रति का अर्थ कामना है। कामना या इच्छा जब पूर्ण या सफल होती है तो वह उत्साह मे परिणित हो जाती है और उनके द्वारा वीर रस की निष्पत्ति होती है । परन्तु जब वही कामना असफल होकर कुंठा का रूप धारण कर लेती है तो शोक मे बदल कर करूण रस की निष्पत्ति करने लगती है । लोक गीतो मे श्रृगार के साथ ही साथ वीर रस भी प्राप्त होता है । देवी के भक्त अत्याचारियो के अत्याचारो के कारण अत्यधिक दुखी हो जाते है । देवी अपने भक्तो का कष्ट देखकर प्रबल उत्साह के साथ उनके कष्ट को हरण करना चाहती है आदि विषय वस्तु लोक गीतो मे वीर रस की अभिव्यक्ति के लिये प्राप्त होते है और उनके विषय वस्तु के अनुसार लय, ताल और वाद्यो का समिश्रण होकर वीर रस की अभिव्यक्ति करते है ।

शान्तरस – साहित्य मे शान्त रस की अभिव्यक्ति, ससार और शरीर की नश्वरता अथवा तत्वज्ञान द्वारा चित्त मे एक विशेष प्रकार को उदासीनता उत्पन्न होती है अथवा भौतिक व लौकिक बस्तुओं से विराग हो जाना आदि भावो क द्वारा होती है। अनित्य रूप ससार की असारता का ज्ञान या परमात्म चिन्तन बुढापा, मरण, व्याधि, पुण्य क्षेत्र, ऋषि आदि का सत्सग हितोपदेश , विलाप, स्मृति, हर्ष, रोमांच, ससार से विरक्ति, ईश्वर के गुणो का वर्णन , ईश्वर की भक्ति मे डूबने का भाव आदि इस रस की विषय वस्तु होती हे ।

पडित भातखडे जी ने हिन्दुस्तानी सगीत पद्धति मे स्वरो के अनुसार रागो के जो तीन वर्ग, नियम किये है उनमें रे , धा कोमल. सन्धि-प्रकाश रागो मे शान्त रस की अभिव्यक्तिका नियम किया है ।

लोक संगीत में भजन, स्तुतियाँ , मत्रोचार, वन्दना, कीर्तन आदि इसी रस के अन्तर्गत आते हैं इन रचना के काव्यो और इन काव्य के भावो के अनुसार लय और ताल का प्रयोग होता है और शान्त रस की अभिव्यक्ति होती है।

अद्भुत रस – साहित्य मे अद्भुत रस की अभिव्यक्ति आश्चर्यजनक या अभूतपूर्व असाधारण वस्तु या घटना देखकर या सुनकर होती है । विस्मय, अलौकिक या आश्चर्यजनक वस्तु या घटना , वैचित्रय, शका, आवेग, हर्ष, मोह, वितर्क, रोमाच, विस्फारित नेत्र आदि भाव अद्भुत रस की विषय वस्तु होते है । भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र मे अद्भुत रस की अभिव्यक्ति के लिये उदात्त और कम्पित स्वरो को प्रयोग करने का उल्लेख किया है [1] तथा अद्भुत रस की प्रस्तुतीकरण के लिये षडज और रिषभ स्वरो के प्रयोग का वर्णन किया है ।[2] ऐसा ही उल्लेख बृहद्देशी तथा संगीत रत्नाकर मे भी किया गया है ।

भरत ने वर्णों हो नही, रसों की सिद्धि के लिये विवरण प्रस्तुत किया जिसमे स्वरो की प्रधानता को रस निष्पत्ति का आधार माना गया है । उनके अनुसार जिस जाति मे जो स्वर बलवान हो प्रयोग करने वालो को उसी स्वर के रस मे गायन करना चाहिये ।[3] भरत ने जातियो का भी रस निर्धारण किया है ।[4] नाटक के संदर्भ मे स्वर विशेष मे रस का प्रावल्य भले हो, सगीत के सदर्भ मे भरत के द्वारा स्वरों को रस विशेष तक सीमित करना सभव नहीं क्योंकि राग के लिये कम से कम पाँच स्वर होना चाहिए । अलग–अलग और कही–कही प्रतिकूल रस प्रधान स्वरो के संयोजन से रसाभिव्यक्ति और अनुभूति दोनो मे ही व्यतिक्रम होने की सम्भावना बढ जायेगी । इसके अतिरिक्त राग का स्वरूप भी बदल जायेगा । रस वस्तुत काकुभेद, स्वरो के उतार–चढाव, गायक की प्रतिभा के द्वारा उभरता है। उदाहरण के लिये अडाना, आभेरी, आसाबरी, काफी , कौसी कान्हणा, गौढ़ मल्हार , चन्द्रकौस , जौनपुरी, दरबारी कान्हणा, बागेश्री, भीमपलासी, मालकौस आदि रागों में कोमल गधार और निषाद का प्रयोग होता है किन्तु सभी रागों का अपना अलग–अलग रस है । अपनी कलात्मक प्रतिभा से कलाकार दो स्वरों को अलग–अलग ढग से प्रस्तुत करता है । जिससे समान दो स्वर लगने वाले रागों का अलग – अलग स्वरूप और अलग–

---

1. ना0शा0 भरतकृत– 19/38/39
2. ना0शा0 भरतकृत – 19/39–39
3. ना0शा0 – 29/12
4. ना0शा0 – 29/13/40

अलग प्रभाव पडता है । इसी प्रकार भूपाली और देशकार के स्वरो मे समानता है परन्तु अदायगी के ढग से रागो का स्वरूप और रसात्मक प्रभाव बदल जाता है। एक ही राग मे अनेक रसो की बन्दिशे मिलती है उदाहरणार्थ जैजै वन्ती की बदिश सयोग श्रृंगार का उदाहरण है । [1]इसी राग मे भगवती शारदा की स्तुति की बंदिश निवद्ध मिलती है । इसी जैजै वन्ती राग मे विप्रलम्भ श्रृंगार प्रधान बदिश भी मिलती है।2 जैजै वन्ती राग मे ही धमार का उदाहरण प्रस्तुत है जो कि विलम्बित धमार ताल में निवद्ध है ।

स्थायी

रे नि सा	रे ग सा सा	रे म – म रे	रेग सारे
भ ली भ	ई ऽ ब्र ज	हो ऽ ऽ री ऽ	घऽ रऽ
0	3	×	2
प		प	ग
ग प प	प म नि प	ध म ग म –	रे ग
आ ऽ ए	घ ऽ ऽ न	श्या ऽ ऽ ऽ ऽ	म ऽ।
0	3	×	2

अन्तरा

प			
म म प नि –	सा नि	सा – –	नि सा सा सा
अ बो ऽ र ऽ	ऽ गु	ला ऽ ऽ	ल अ त र
×	2	0	3
सा ग			
नि सा सा रे –	रेंग रेंग	सां – ग्नि –	. ध पं प –
अ र ग जा ऽ	ऽऽ सुऽ	ग ऽ ऽऽ ६	घा लिऽ ऽ
×	2	0	3
प प			
मप सां नि ध प	मग म	रे ग	
भऽ र ऽ भ ऽ	रुऽ ऽ	औ भु री	
×		0	

---

1 क्रमिक पुस्तक माला चौथी पुस्तक क्रम स0 306 – (307)

2 क्रमिक पुस्तक माला चौथी पुस्तक पृष्ठ 271–310

षष्टम् अध्याय

सगीत मे रस उत्पन्न करने वाले कारक :

"चेतना के प्रथम स्पन्दन से प्राण वायु की उल्लासना के फलस्वरूप आकार आदि वर्णो के रूप विशेष से हीन जो वाक उत्पन्न होती है वह नाद रूप रहकर हर्ष, शोक इत्यादि वृत्तियो को प्रकट करती है । नाद जीवमात्र की आन्तरिक भावनाओ को प्रतिबिम्बित करता है । मृग और गाएँ आदि भी नाद से प्रभावित होते हैं । प्राणियो के नाद को सुनकर उनके हृदय मे भय, रोष, शोक इत्यादि का प्रतिभाष हो जाता है । फलत नाद से चित्त वृत्ति का अनुमान सिद्ध है ।" आचार्य अभिनव गुप्त के इस कथन से यह तथ्य स्पष्ट है कि सगीत केवल सामान्य ध्वनि नही अपितु सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियो के प्रस्तुतिकरण का साधन है तथा आत्मा और भावनात्मक जीवन के बीच की कडी है । भारतीय मनीषा मे सगीत के हृदयगत भावो के उद्‌घाटन का सवल साधन माना गया गया है । प्राणीमात्र की रोदन, चीत्कार और हास्य इत्यादि क्रियाओ के द्वारा उत्पन्न ध्वनियाँ निरन्तर बिना किसी अपवाद के एक जैसी हो रही है । विभिन्न भावो को प्रकाशित करने वाली ये ध्वनियाँ सम्भवत संगीत की उत्पत्ति का मूल स्रोत रही हैं । संगीत मे साहित्य की तरह केवल भाषागत सुविधा से सम्पूर्णता सम्भव नही । केवल शब्दो द्वारा भावो की सूक्ष्मतम् व्यजना और वोध, सगीत मे सम्भव नही है । सगीतात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम ध्वनि, लय और ताल है । जिसके उतार चढाव, आन्दोलन, कम्पन, लय और ताल से अलग-अलग भाव उत्पन्न किये जा सकते है । प्रभाव की दृष्टि से दो वर्गो मे विभाजन किया जा सकता है-प्रथम उल्लास और द्वितीय अवसाद जन्य । उल्लास के अन्तर्गत प्रेम, सौन्दर्य, वात्सल्य, श्रृगार और वीर रस से सम्बन्धित भाव माने जा सकते है । अवसाद मे शोक, करूण, रौद्र, भयानक, वीभत्स को रखा जा सकता है । ध्वनियो की भाषा किसी कथोपकथन घटनाक्रम पर आधारित नही होती बल्कि ध्वन्यात्मक प्रभाव से विशिष्ट भावो की सूक्ष्म अभिव्यक्ति अथवा उद्दीपन कार्य सम्पन्न होता है । इस दृष्टि से साहित्य के नौ रस (श्रृगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्‌भुत तथा वात्सल्य) की अपेक्षा संगीत की दृष्टि से शान्त, करूण, श्रृगार, वीर, तथा अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति होती है । राग, रागनियो के वादी, संवादी, विवादी, अनुवादी स्वरो मे अन्तर से समान स्वरो के रहते रसात्मक अभिव्यक्ति मे महत्वपूर्ण अन्तर हो जाता है ।

संगीत मे रस उत्पन्न करने वाले कारक स्वर,[1] लय,[2] ताल,[3] छन्द,[4] रागो की प्रकृति, रागध्यान , रागमाला चित्र, काकु, राग का समय, राग का ऋतु के अनुसार गायन, स्थान तथा

अवसर विशेष का वातावरण के अनुसार राग का प्रस्तुतिकरण चाहे वह किसी भिन्न प्रदेश के सास्कृतिक वातावरण से सम्बन्धित हो, जहाँ सगीत का प्रस्तुतिकरण होना है तथा किसी अवसर विशेष के अनुसार तथा श्रोताओ की रूचि और ज्ञान के अनुसार. संगीत का प्रस्तुतिकरण आदि ऐसे तत्व है जिनके विना सगीत के द्वारा अधिकतम् रसाभिव्यक्ति सम्भव नही हो सकती । इन तत्वो का वर्णन विषय के गहन अध्ययन के लिए आवश्यक है । रागो की प्रकृति के अनुसार काव्य की रचना, लय, चलन, ताल आदि का समन्वित प्रस्तुतिकरण रस निष्पत्ति करने मे सफल होता है । इसीलिए पीलू, ठुमरी, पहाडी, काफी आदि रागो मे ध्रुवपद की वदिश प्राय नही मिलती तथा दरबारी, मालकौस, भैरव आदि रागो मे ठुमरी का प्रस्तुतिकरण अधिकतर सुनने को नही मिलता । इसका मुख्य कारण रागो की विशिष्ट प्रकृति और विशेष शैलियो के लिए उसकी अनुरूपता को ध्यान मे रखकर उसी के अनुसार लय और ताल का समन्वय किया जाता है जिससे रसाभिव्यक्ति और प्रस्तुतिकरण अत्यधिक प्रभावशाली हो सके । रसनिष्पत्ति मे राग के समय, उसके अनुसार लय और ताल का प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है । रात्रि मे तोडी, ललित, भैरव और प्रात काल दरबारी, मालकौस गाने बजाने से यथोचित रसाभिव्यक्ति की की सम्भावना नही हो सकती । मध्यकालीन कृष्ण भक्ति धारा की अष्टप्रहर उपासना मे समयानुकूल प्रकृति वाले राग लय और ताल की प्रधानता मिलती है । "जागिये नन्द लाल कुँवर " जैसे पद भैरवी, ललित मे निवद्ध है तो गोचारण विषयक पद "विलावल राग" मे मिलते हे । इसी प्रकार मध्यकालीन पद सारग, भीमपलासी और रात्रिगेय पद, मालकौस, दरबारी आदि मे बाँधे गये है । रसाभिव्यक्ति को चरमसीमा तक पहुँचाने के लिए ऋतुओ के अनुसार रागो का चयन किया जाता है । पुष्टिमार्गी भक्ति पद्धति की आरती, कीर्तन परम्परा मे रागो की प्रकृति तथा रस का सामजस्य मिलता है ।

भाव और रस परम्परा रस का पर्याय नही है । भाव स्मरण रस का रूप लेता है । अत कहा गया है "भाव स्मरण रस "। भाव सुखद और दुखद दोनो हो सकता है परन्तु रस सदैव आनन्द रूप ही है । राग तोडी का ध्यान पद उदाहरण के लिए प्रस्तुत है :–

मृगनैनी मोहति मृगनि रागति लैकर बीन ।
सम्पूरन दुपहर सिसिर टोडी कनक रंगीन ।।
चौसर चमेली चारू हास नील कंचुकी पै ।

ऊजरे विचित्र बास हास रस रौस की ।
मोहति मृगनि मृगनैनी परबीन वाल ।
लीनपर वीन तान बोले हिय हौस की ।
सम्पूरन भोग सुख सरिगम प्योधनी के देव ।।
देखि दुति अनूप दामिनी ज्यो बहु जैास की ।
सिसिर पहर दूजे आनन्द अनूप रूप,
यौवन उज्यारी प्यारी तोडी मालकौस की ।।

"ध्यान" का अर्थ है--अपने चित्त को अपने इष्ट मे एकाकार करना । 'ध्यान' शब्द के दो अर्थ है -- चित्त को समाहित करने की प्रक्रिया और वह साधन जिसके द्वारा समाहित करने की प्रक्रिया हो सके । सगीत मे ध्यान इन्ही दो अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है । राग का वर्णित रूप भी ध्यान की प्रक्रिया के लिए अवलम्बन बन जाता है । किसी भी राग की मूल प्रवृत्ति के अनुसार उसकी आकृति की मानसिक रूप से अनुभूति करना ही राग ध्यान है । सगीत के क्षेत्र मे यह आवश्यकता उस युग मे पडी जब सगीत की श्रृखला नाट्य से एकदम विच्छिन्न हो गयी । किसी वस्तु के रूप की नही बल्कि उसकी आध्यात्मिक चेतना की ही पूजा होती है और यही चेतना भारतीय जीवन मे "देवता" कहलाती है । सगीत मे राग स्वय एक शक्ति है । राग स्वरो का वह सयोजन है जो निश्चित रंजक भाव को जगा सके । अथवा अपने जैसा रंग सके । चूँकि रंग की विशेषता सम्पर्क मे आने वाले को अपना रग दे देना है और यह प्रभावित करने का धर्म चेतना का ही है । अत· लोक स्तर पर इसे मूर्त रूप देना पडा और इसी संधि स्थल पर यह पद्धति पनपी ।

भारत का सगीत विशेष रूप से आध्यात्मिक परिपेक्ष्य मे ही चला । भक्तिकाल मे तो मदिरो मे ही एकमात्र स्थान था, इसलिए वाग्येकारो मे देवध्यान, छन्दध्यान और तालध्यान के साथ-साथ राग ध्यानो की भी परम्परा चल पडी । रस ही राग का देवमय रूप है । राग मे रस तत्व विशेष अनुभूतिमात्र है । जिसका कोई निश्चित आकार नही । भगवत तत्व भी रस की तरह निराकार होते हुए भी आनन्दमय है इसमे मन को समाहित करने के लिए जिस प्रकार स्थूल आधार की आवश्यकता पड़ने पर मूर्ति पूजा की जरूरत पडी, उसी प्रकार राग रस मे डूबने के

लिए स्थूल अवलम्ब की आवश्यकता पडने पर इन रागध्यानो के सहारे राग के देवमय रूपो को एक निश्चित रूप दिया गया । यदि संगीतज्ञ राग को मूर्तिमय रूप देना चाहता है तो उसे नादमय रूप के साथ-साथ अपने मस्तिष्क मे रागो के मूर्तिमय रूप का भी ध्यान करना पडता है ।

रागमाला चित्र इस ध्यान पद्धति के विशिष्ट अंग माने जाते है । रस मे तन्मय श्रोता, कलाकार एकाकार होकर एक ऐसी अलौकिक अवस्था मे पहुँच जाते है जहाँ उनका अस्तित्व बोध समाप्त हो जाता है । रस अथवा रसात्मक आनन्द के अतिरिक्त कुछ नही रह जाता । रस निष्पत्ति मे "काकु" का महत्वपूर्ण स्थान है । नाट्य शास्त्र मे काकु प्रयोग नाट्य के अभिनय के चार प्रकारो मे से वाचिक अभिनय मे बताया गया है । वाचिक अर्थात वाणी का तथा अभिनय अर्थात् सामने, प्रत्यक्ष किया जाने वाला । नाट्य मे जो कुछ बोला जाता है उसे पाठ्य कहते है और उसी पाठ्य के अन्तर्गत काकु प्रयोग का भरत ने विधान किया है । इस काकु प्रयोग अर्थात वाचिक अभिनय द्वारा नाट्य के नट अपने वचनो के अर्थ तथा भाव सुहृदय प्रेक्षको के हृदय एव मस्तिष्क तक पहुँचाने मे सफल होते है । काकु मुख्यत स्वर, लयाश्रित होते है । काकु को पाठ्य के छ. गुणो के अन्तर्गत, 'काकु को' एक गुण के रूप मे कहा है । पाठ्य के छ गुणो मे वर्णित षडलकार तथा अगो में मुख्यत. ऊँच, नीच स्थान, द्रुत विलम्बित लय, विराम, अविराम, पूर्ण विराम, भराव, सकोच तथा उतार चढाव आदि का काकु प्रयोग के विस्तृत अर्थ मे लिया गया है । स्वर, विराम, अविराम और शास्त्रीय शब्दो मे कहे तो, उच्चनीच स्थान, विच्छेद तथा अनुबध की शक्ति का प्रयोग संगीत में रसनिष्पत्ति करने मे सहायक होते हैं ।

"काकु" का उल्लेख सगीत रत्नाकर मे भी हुआ है यथा :-

छाया काकुः षट्प्रकारा स्वररागन्यरागजा ।।
स्वाद्येश क्षेत्रयत्राणा तल्लक्षणमथोच्यते ।।

महान सगीतज्ञ शारगदेव ने सगीत मे सभावित काकु प्रयोग को बताते हुए स्वर काकु, रागकाकु ,अन्य रागकाकु, देशकाकु, क्षेत्रकाकु तथा यंत्र काकु का वर्णन

किया है । काकु वस्तुगत नही किन्तु प्रयोगगत वैशिष्ट्य है

स्वरकाकु से आशय है, जिससे रागरूप स्पष्ट होने मे सहायता मिले यथा--भैरव तथा जोगी के कोमल ऋषभ ।

रागकाकु कोई एक विशेष स्वरावली है जिससे राग का रूप स्पष्ट एव स्थिर होता है यथा--दरबारी कान्हणा का "रे सा ध ध ध नि प ।" हमीर का म प गम सा ध ।" जयजयवन्ती का नि सा धा नि रे इत्यादि । देश काकु देशविशेष से सम्बन्ध रखती है । अपने सगीत मे हम इस समय उसे प्रदेश विशेष की परम्पराओ से समझ सकते है यथा--ग्वालियर, आगरा, जयपुर, पटियाला के गायक एक ही राग को अपनी भिन्न शैलियों से प्रस्तुत करते है और वे सभी अपने ढग से रसाभिव्यक्ति करेंगे ।

क्षेत्रकाकु, प्रत्येक व्यक्ति के (चाहे स्त्री या पुरूष के) अपने कठ के गुण धर्म से सम्बन्धित है । क्षेत्र शरीर को कहा है, कण्ठ शरीर का ही अवयव है । भिन्न कंण्ठो से नि:सृत ध्वनि अर्थात स्वरो के प्रभाव मे भी भिन्नता अवश्य रहती है । इतना ही नही एक ही तबला तथा एक से बोल भिन्न व्यक्तियो के हाथो से बजने पर उन हाथो की अलग अलग पहचान स्पष्ट हो जाती है । इसे क्षेत्रकाकु ही न कह कर उसका विशेष प्रकार कह सकते है क्योकि काकु शब्द मूलत: वाणी से सम्बन्धित है । ध्वनि के विशेष गुण को बताने के लिए शारंगदेव ने हमे 'क्षेत्रकाकु' एक उत्तम शब्द दिया है ।

यंत्र काकु, यंत्र अर्थात् वाद्यों की ध्वनि से सम्बन्धित है । यह सर्वविदित है कि दरबारी जैसा बीणा मे बजेगा वैसा जल तरंग मे नही । राग हंसध्वनि जलतरंग से बहुत अच्छा बजेगा । वाद्य विशेष के लिए उचित रागो का चुनाव, तालो का चुनाव श्रोताओ के लिए रसाभिव्यक्ति करने मे अधिक प्रभावशाली होगा । इसी प्रकार कण्ठ विशेष के लिए भी उसके अनुकूल राग का गायन, कण्ठ के अनुकूल गायकी का गायन सहज रंजक, सहज भावोत्पादक तथा रसानुभूति के लिए भी सक्षम हो जाता है ।

भिन्न-भिन्न वाद्यो की अपनी अपनी ध्वनि के विशेष गुण से भी उसके प्रस्तुतिकरण और रसाभिव्यक्ति के प्रभाव मे अन्तर आ जाता है । यदि मधुर स्वर समूह, तेज लय मे धीमी आवाज में बज रहे हो और तबला पर ताल का ठेका तेज लय मे बजने के साथ-साथ तेज आवाज मे जोरदार बोल समूह की तिहाई बजाते हुए तबला वादक सम से आकर मिलता रहे तो गायन या वादन जिस पर राग विशेष के स्वर समूह, तालवद्ध होकर बज रहे है, राग का स्वरूप, उससे उत्पन्न रस आदि सभी नष्ट हो जायेगे संगीत से रसाभिव्यक्ति के स्थान पर रसछिन्नता उत्पन्न हो जायेगी । इसलिए यंत्रकाकु का रसनिष्पत्ति मे महत्वपूर्ण स्थान है ।

इसी प्रकार नृत्य प्रदर्शन मे नर्तक एक घुंघरू की ध्वनि और पदसचालन को ताल निवद्ध करते हुए विभिन्न लयकारी मे दिखाकर जब धीरे-धीरे पॉच घुंघरू, चार घुंघरू, तीन घुंघरू, दो घुंघरू और एक घुंघरू की ध्वनि करते हुए लयकारी का प्रदर्शन करता है और तबला वादक घुंघरू की ध्वनि के अनुसार अपने तबले के बोलो की ध्वनि का अनुपात रखता है तो रसाभिव्यक्ति चरमोत्कर्ष पर होती है किन्तु यदि घुंघरूओ की सख्या के क्रमिक ह्रास के साथ ही साथ ध्वनि का अनुपात, बोलो की ध्वनि का अनुपात, तबला वादक ने समान नही रखा या सवाल-जवाब की सगत करते समय भी बोलो की ध्वनि का अनुपात समान नही रखा तो रसनिष्पत्ति की कल्पना ही लुप्त हो जायेगी । यंत्र काकु मे यंत्र की प्रासंगिकता, रसाभिव्यक्ति मे अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसका आभास उक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है ।

प0 दामोदर मिश्र ने अपने ग्रथ संगीत दर्पण मे रागो को समयानुकूल गाने के नियम का प्रतिपादन किया है और भिन्न ऋतुओं तथा दिन के भिन्न-भिन्न समयो पर गाने के लिए अलग-अलग रागों का वर्णन किया है । सूर्योदय के तीन घटे बाद गाने वाले रागो का वर्णन उन्होने इस प्रकार किया है :-

गुज्जरी कैशिकश्चैव सावेरी पट मंजरी,
रेवागुण किरि चैव भैरवी रामकिर्य्यापि ।

सौराटी च तथा गेया प्रथम प्रहरोत्तरम ।।

रागो को वर्ष के विभिन्न ऋतुओ मे गाने के लिए उन्होने उसका प्रतिपादन करते हुए स्पष्ट कियाहै कि श्रीराग उसकी रागनियो को शिशिर ऋतु मे, बसतराग और उसकी रागनियो को बसत ऋतु मे , भैरव राग और उसकी रागनियो को ग्रीष्म ऋतु, मेघराग और उसकी रागनियो को वर्षा ऋतु, पचमराग और उसकी रागनियो को शरदकाल और नरनारायण राग एव उसकी रागनियो को हेमत ऋतु मे ही गाना चाहिए ।

रागो के समायानुकूल गाने[1], बजाने उसी राग की प्रकृति के अनुसार लय और ताल का समन्वय करने पर रस की अधिकतम अभिव्यक्ति की जा सकती है प्रकृति का जो प्रभाव वातावरण पर पडता है उसका प्रभाव गायक एव श्रोता दोनो पर पडता है । सगीत जैसी ललित कला को प्रकृति से अलग नही किया जा सकता । जिस समय बसत ऋतु की बहार चारो ओर छा रही है उस समय राग बसत मे दोनो मध्यम के साथ धैवत और तार षडज तथा तार रिषभ और फिर निषाद, धैवत एव पचम का प्रयोग एकदम बसत का वातावरण उत्पन्न कर देता है । इसी प्रकार वर्षा ऋतु मे जब बादल गरज रहे होते है, वर्षा की फुहार पड रही होती है, मल्हार मे कोमल निषाद से धैवत को छूते हुए शुद्ध निषाद पर रिषभ से पचम और पचम से गधार की चाल एकदम वर्षा की फुहार और मेघ गर्जन की समा बाँध देती है । राग के स्वर आन्दोलन सख्या के परिणाम है। आन्दोलन सख्या नियमित लय के फलस्वरूप ही उत्पन्न होती है इसलिए प्रत्येक स्वर विशेष की उत्पत्ति मे लय निहित है और लय ही स्वरराग का सृजन करते है और तालबद्ध होकर रस निष्पत्ति करते है । राग के बेसमय गाने बजाने से रसाभिव्यक्ति की चरमउत्पत्ति सम्भव नही होगी ।

राग-समय-चक्र

1 बजे रात्रि

रात्रि 3 प्रहर

कोमल ग कोमल नि

दरबारी कानड़ा

काफी

7 बजे रात्रि
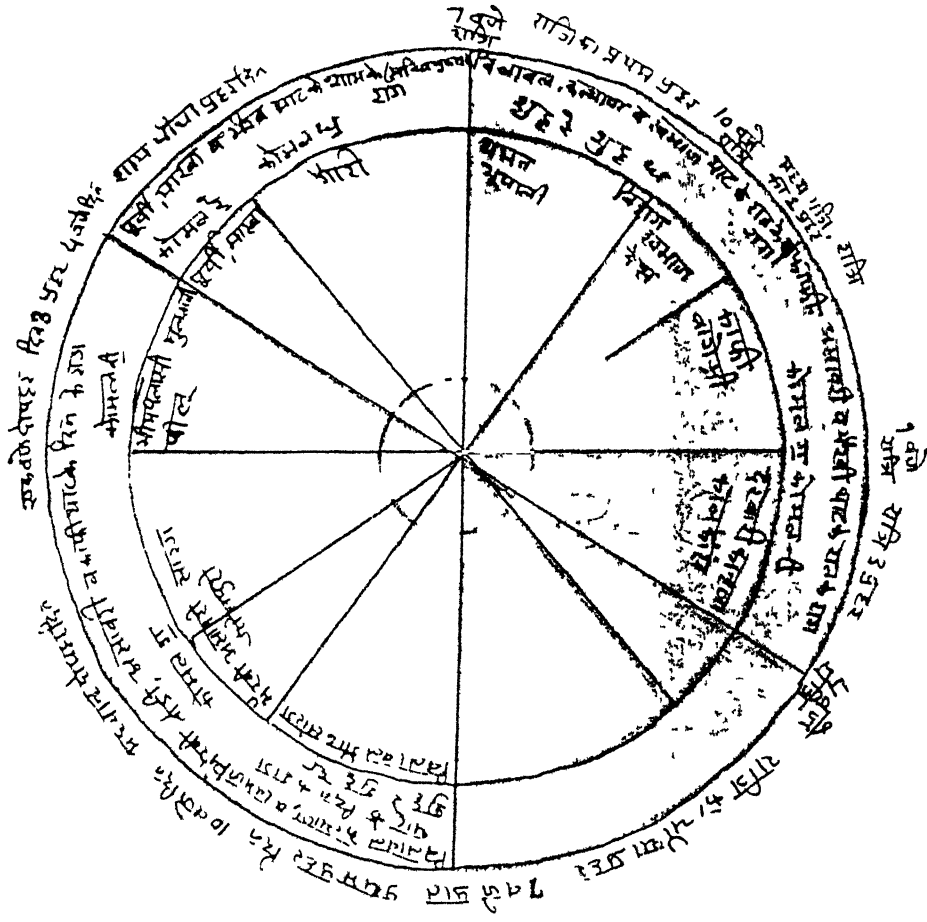
सगीत के बारहो स्वरो का अपना अलग गुण है । जब भी कलाकार को मच पर प्रदर्शन के लिए राग का चयन करना होता है तो सोचता है कि जिस भाव एव रस की अभिव्यक्ति उस समय वह करना चाह रहा है वह उसके द्वारा चुने गये राग द्वारा प्रदर्शित हो सकेगी अथवा नही? और उस समय कलाकार को रागो के समयानुकूल गाने बजाने के नियम का पालन करना आवश्यक हो जाता है ।

सधि प्रकाश रागो के उदाहरणार्थ कोमल रिषभ, तीव्र मध्यम का प्रयोग मान्य है । उदाहरण के लिए प्रात काल सूर्योदय के समय जब अरूणिमा की लाली धीरे-धीरे आसमान पर छाती है उस समय भैरव मे कोमल रिषभ पर आन्दोलन करने से जो भाव उत्पन्न होता है वह सूर्योदय के समय धीरे धीरे ऊपर आ रहे सूर्य की लालिमा के समान ही है । अब इस समय यदि भैरव के स्थान पर शुद्ध रिषभ वाले यमन को गाया जाय तो उस शुद्ध रिषभ का स्वर वातावरण के अनुरूप नही होगा और अधिकतम रसाभिव्यक्ति नही हो सकेगी ।

देवकृत-रागरत्नाकर मे भैरव का स्वरूप इस प्रकार वर्णित किया गया है :-

भैरव पूजति भोर ही रागिनि भैरव वाल ।
कमलमुखी कमलासनी, कोमलाग, पटलाल ।

अत. प्रात काल भैरव या रामकली के स्थान पर यमन या मुल्तानी गाने बजाने से उतना प्रभाव नही पडेगा जो उस वातावरण मे भैरव, रामकली या ललित की लयताल वद्ध रचना बजाने से पडेगा ।

आपत्ति सम्भव है कि शाम को गाये बजाये जाने वाले राग मुल्तानी मे भी तो कोमल ऋषभ है उसे प्रात. गाया जा सकता है । परन्तु यदि ध्यानपूर्वक

देखा जाय तो ज्ञात होगा कि मुल्तानी मे कोमल ऋषभ के साथ निषाद और तीव्र मध्यम महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है जो सायकालीन वातावरण मे अधिकतम रसाभिव्यक्ति मे सहायक हो रहा है ।

सायकाल मे तीव्र मध्यम की प्रमुखता लिये पूर्वी, पूरिया धनाश्री तथा मारवा राग ज्यादा कर्णप्रिय होते है । इनको सायकाल गाने से जो भाव पैदा होता है वह उन्हे प्रात काल गाने बजाने से नही होगा । कोमल रिषभ, तीव्र मध्यम और शुद्ध धैवत वाले राग "मारवा" मे सायकाल के वातावरण के अनुरूप है । कोमल रिषभ के साथ बार बार शुद्ध धैवत के प्रयोग से एक अजीब सी बेवसी और आकुलता झलकती है, प्रतीत होता है कि नायिका अपने प्रियतम की बॉट देख रही है । उसकी आशाभरी दृष्टि बार-बार द्वार पर अपने प्रीतम को खोज रही है ।

मारवा राग को प्रातः गाने से यह भाव उस वातावरण मे पैदा नही हो सकेगा । कुशल कलाकार तो हर भाव प्रकट करने का प्रयास करेगा और कुछ हद तक सफल भी होगा, परन्तु इस रस की अभिव्यक्ति जितनी इस समय होगी वह इसको प्रात.काल गाने से नही होगी । उस समय तो भैरव, रामकली और ललित ही शोभा देती है ।

मारवा के कोमल रिषभ को शुद्ध करके गन्धार पर न्यास देने से सधि प्रकाश राग के बाद रात्रि के प्रथम प्रहर मे गाये जाने वाला राग यमन आरम्भ हो जाता है और इस प्रकार सधिप्रकाश राग से शुद्ध "रे" "ध" वाले राग मे प्रवेश हो जाता है । अब कोमल रिषभ के रागो को सुनने के पश्चात शुद्ध "रे" "ध" वाले राग को सुनने से दूसरे रस की अभिव्यक्ति होती है । यमन को सुनने से प्रातःकाल के वातावरण के अनुरूप भाव उत्पन्न नही हो सकेगा ।

रात्रि के प्रथम प्रहर मे शुद्ध रे ध वाले राग खूब जमते है और धीरे धीरे तार षडज का स्वर चमकने लगता है । रात्रि का अन्तिम प्रहर होते होते तार

षडज इतना चमकता है और उसमे जिस रस की अभिव्यक्ति होती है वह अभी तक नही थी । इस समय शुद्ध मध्यम प्रवल राग मालकौस के स्वर दिलो को खूब छूते है । अगर इसी मालकौस को ऊषाकाल मे, जब ललित मे कोमल रिषभ के साथ दोनो मध्यम चमक रहा होता है, गाये बजाये तो उसका प्रभाव, वह नही हो सकता जो रात्रि के द्वितीय प्रहर मे गाने से होगा । जैसे जैसे रात्रि बीतती जाती है और प्रभातकाल आने लगता है उत्तराग के अन्य स्वर अपना वैचित्र्य प्रकट करने लगते है ।

इन्ही विचारो की पुष्टि मे मै भक्तिकाल मे गाये जाने वाले कृष्ण की अष्टप्रहर उपासना मे गाये जाने वाले समयानुकूल रागो मे बाँधे हुए भजनो को इसका उत्तम उदाहरण मानती हूँ ।

अत. स्पष्ट है कि रागो के रस एव भाव की अधिकतम अभिव्यक्ति समयानुकूल गाने बजाने से ही होती है और सगीत की सफल रसात्मक अभिव्यक्ति के लिए जितना महत्वपूर्ण रागो के स्वरो का सही चित्रण करना, वदिश के भावो को व्यक्त करना एव ताल तथा लय का सही प्रदर्शन करना है, उतना ही महत्वपूर्ण प्रदर्शन के लिए समयानुकूल रागो को चुनना और समयानुकूल भाव से रागो की अवतारणा करना है ।

सगीत मे रस की अभिव्यक्ति करने के लिए गायकी, गायकी का काव्य, उस गायकी के अन्तर्गत राग, रागो मे अमुक स्वर विशेष वाले राग, गायकी की रचना की लय और उसमे प्रयुक्त ताल तथा कलाकार की व्यक्तिगत क्षमता और उसकी शिक्षा-दीक्षा आदि तत्व मिलकर रस की अभिव्यक्ति मे आवश्यक भूमिका निभाते हैं ।

वादन मे वाद्यो के बोल, ध्वनि, लय तथा ताल के माध्यम से रस निष्पत्ति होती है । वादन का महत्व सोलो वादन के अतिरिक्त साथ सगत मे, पृष्ठभूमि सगीत मे रस निष्पत्ति मे बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

रसाभिव्यक्ति के लिए माहौल बनाना, वातावरण तैयार करने का महत्वपूर्ण कार्य वाद्य सगीत के द्वारा ही होता है ।

नृत्य मे रसनिष्पत्ति , तद्नुसार बोल, काव्य, लय और ताल वाद्यो के प्रयोग के साथ ही साथ,कलाकार के आगिक हाव-भाव और पद-सचालन, , श्रृगार और वस्त्र सज्जा आदि के द्वारा सम्भव होती है ।

स्थान तथा अवसर विशेष के अनुसार राग का प्रस्तुतिकरण से तात्पर्य यह है कि उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बगाल, पजाब, उडीसा, बम्बई और राजस्थान आदि प्रदेशो से सम्बन्धित प्रचलित गायकी और उन स्थानो मे रहने वाले श्रोता की रूचि के अनुसार सगीत का प्रस्तुतीकरण अधिकतम रसाभिव्यक्ति करने मे सफल होगा ।

अवसर विशेष पर सगीत के प्रस्तुतीकरण का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है यदि उल्लास और अवसाद से सम्बन्धित अवसर का ध्यान रखते हुए राग प्रस्तुत किया जाय और उसी के अनुसार लय और ताल का समन्वय किया जाय तो रस की अभिव्यक्ति निश्चय ही अधिकतम होगी । यह अनुभूत सत्य है और इसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नही है ।

भारतीय अवनद्ध वाद्यो मे यदि मेघ गर्जन की सी ध्वनि का श्रवण करना हो तो मृदग,मादल और नगाडे की लयात्मक ध्वनि मे अनुभव किया जा सकता है । प्रवल ध्वनि उत्पन्न करने वाले वाद्यो मे नक्कारा, ढोल, ताशा,ढाक, धौंसा, निशान आदि प्रमुख हैं ।

ध्वनि की मधुर किन्तु चचल प्रकृति, द्रुतलय, अति द्रुतलय की ध्वनियाँ तबला,नाल, खोल आदि में मिलेगी । हास्य तथा विनोद भरी ध्वनियाँ हुडुक्क, खजरी,गोपीजत्र आदि की लयात्मक ध्वनियो मे सुनी जा सकती है । भय तथा आवेश उत्पन्न करने वाली लयात्मक ध्वनियाँ नगाड़ा, धौसा, ढोल, ढाक,

सरोद, सतूर आदि से उत्पन्न की जा सकती है । वीणा की प्रतीकात्मकता भावुक हृदय के लिए कोमलतम भावो की प्रतीक रही है । उसी प्रकार बशी, मँजीरा, कास्यताल, जयघटा आदि की लयात्मक ध्वनियो से भक्ति भावना से सम्बन्धित ध्वनियाँ उत्पन्न की जा सकती है । सारगी, घुँघरू, सितार, तानपुरा, वीणा आदि वाद्यो की द्रुत लय और ताल मे निबद्ध ध्वनियाँ श्रृगार पक्ष की भावना को सवल बनाती है । यदि किसी नाटक मे युद्ध हो रहा है–ऐसा यदि परोक्ष सकेत देना है तो दुन्दुभि, भेरी, शख आदि का वादन द्रुत लय मे किया जाता है । यदि बालक के जन्म का सकेत देना है तो बधावा, मादिलारा आदि का वादन मध्यलय मे किया जाता है । वैवाहिक कार्यो के संकेत मे,मध्यलय मे तालनिबद्ध शहनाई, नागस्वरम आदि का वादन किया जाता है । उक्त ध्वनियो के श्रवण से दर्शको मे तत्सम्बन्धी भावो की उत्पत्ति होती है । नाटको मे या व्यवहारिक जीवन मे वाद्यो की ध्वनियाँ विशेष अवसरो का प्रतीक होने के कारण उस विशेष अवसर का दृश्य न होते हुए भी सकेत द्वारा तत्संम्बन्धी भावो को जागृत करने मे सक्षम होती है । उदहारणार्थ दुष्यन्त द्वारा न पहचाने जाने पर शकुन्तला अज्ञातवास के लिये जगल मे जा रही है उस समय उसके हृदय मे वेदना, पश्चाताप, भविष्य की चिन्ता, भय तथा परिस्थितियो का सामना करने की दृढता आदि जो मिले जुले मनोभाव एक के बाद एक उठ रहे है उनके अभिव्यक्तिकरण के लिए केवल शारीरिक हाव–भाव पर्याप्त नही हो सकते । यहाँ शकुन्तला के मनोभावो के अनुरूप किये गये हाव–भाव के साथ वाद्यो का योगदान आवश्यक है क्योंकि वाद्यो की ध्वनियाँ आन्तरिक द्वन्द, भय, चिन्ता, व्यग्रता, चचला और दृढता आदि भावो को व्यक्त करने मे अत्यधिक सफल होती है । इसी प्रकार यदि राम रावण युद्ध का दृश्य सामने हो अथवा राम चौदह वर्ष के वनवास की अवधि पूरी करके अयोध्या वापस आ रहे है उनके स्वागत की तैयारियाँ हो रही है । अयोध्यावासी हर्षोल्लास से भरे हुए है आदि ऐसे दृश्य प्रस्तुत करने हो तो वहाँ भी वाद्य विशेष की ध्वनियाँ आवश्यक हो जाती है । ऐसे अवसरो पर वाद्य विशेष और वाद्य समूह मनुष्य के आन्तरिक भावों के अभिव्यक्तिकरण को बढावा देते हैं । इस तरह भावाभिव्यक्ति रसोत्पत्ति वाद्यो के लय, तालवद्ध वादन के द्वारा सम्भव होती है ।

व्यवहारिक अनुभव से ज्ञात होता है कि सगीत के वाद्य, विशेष प्रयोजन और विशेष अवसर के कारण सृजित हुए है । इस दृष्टि से वाद्यो की प्रतीकात्मकता प्रकट होती है । वाद्यो की ध्वनियाँ परिस्थिति विशेष की सूचना देती है और इन ध्वनियो को सुनकर व्यक्ति के मन मे भाव विशेष की उत्पत्ति होती है वे भाव,वाद्यो की ध्वनि सुनकर, स्थल विशेष की कल्पना करने और उससे उत्पन्न भाव और भावो से रस की उत्पत्ति करने मे सफल होते है ।

शहनाई की लय और ताल निबद्ध ध्वनि सदैव जनमानस को मागलिक कार्य के प्रारम्भ की सूचना देती रहेगी । किसी वस्तु या व्यक्ति के मिलन की सूचना देकर जीवन मे सयोग श्रृगार पक्ष की उद्घोषणा शहनाई के द्वारा ही सम्भव होगी । घटा घडियाल, शख आदि की लयात्मक ध्वनि, पूजन, हवन और ईश्वर की उपासना से सम्बन्धित क्रिया कलाप की सूचक है । नगाड़ा, पटह, दुन्दुभि, भेरी आदि युद्ध की सूचक है । प्राचीन भारत मे युद्ध वाद्यो का लयात्मक प्रयोग एक आवश्यक क्रिया थी । युद्ध के समय वाद्यो के प्रयोग के द्वारा,युद्ध के समय के सकेतात्मक वार्तालाप का सम्प्रेषण होता था । सैनिको को आदेश देना, युद्ध के प्रारम्भ और अन्त की घोषणा, प्रमुख सेनापति की मृत्यु का समाचार आदि स्थितियाँ द्रुत गति, मध्य गति और अतिविलम्बित गति मे वादन करके, उक्त कार्यो के सम्पादन की सूचना दी जाती थी। युद्ध क्षेत्र मे कायर के हृदय मे वीर भावना की जागृति इन्ही वाद्यो के द्वारा की जाती थी । नाट्य मचन मे इनके व्यवहारिक प्रयोग इस तथ्य के प्रमाणस्वरूप उपलब्ध होते है ।

मानव मन की कोमल भावनाओ को जागृत करने मे तत्रीवाद्य केवल कल्पना हीं नही अनुभूति के आधार पर यह सिद्ध करते है कि जब भी किसी अत्यन्त प्रिय व्यक्ति का सामिप्य प्राप्त होता है तब उसके फलस्वरूप मानव हृदय खिल उठता है हृदय के तार बज उठते है और इस स्थिति का प्रस्तुतिकरण द्रुत लय में किया जाता है ।

कलाकार के द्वारा सगीत का प्रदर्शन कुल मिलाकर प्रदर्शन कैसा है ? और कलाकार व्यक्तिगत रूप से सगीत सम्बन्धी योग्यताओ से कितना पूर्ण है,?

इसके आधार पर भी रसनिष्पत्ति निर्भर करती है क्योकि सगीत मे लय और ताल उसी के द्वारा प्रस्तुत किया जाना है । गायक कलाकार की आवाज, वादक कलाकार के हाथ का वाद्य पर रखने का अदाज, नर्तक के पद सचालन, सगीत विषयक विशेष समझ जो कि बिना तैयारी के भी प्रस्तुतिकरण मे सफलता दे सके," सम, विषम, अतीत, अनागत गृहो और न्यास का ज्ञान जिसके द्वारा अद्‌भुत रस की उत्पत्ति सफलतापूर्वक कर सके," गायन, वादन और नृत्य की शैलियो का पूर्ण ज्ञान होने पर, खुली आवाज से आलाप और तीनो सप्तको मे गमक गाकर, काकु और राग के भेदो से परिचित ताल और लय मे मर्मज्ञ और सभी प्रकार के मुद्रादोषो से मुक्त कलाकार ही अनुकूल रसाभिव्यक्ति कर सकता है क्योकि यदि वह इन विशेषताओ से युक्त नही होगा तो केवल हास्य रस के अतिरिक्त और कोई रस उत्पन्न नही कर सकेगा ।

प्राय: कलाकार के कार्यक्रम प्रस्तुत करते समय कुछ व्यक्तिगत कठिनाइयाँ भी होती है जिनके कारण रसाभिव्यक्ति सम्भव नही हो पाती जैसे— मच पर अत्यधिक तेज प्रकाश की व्यवस्था जिससे चकाचौध के कारण कलाकार की प्रस्तुति मे विघ्न उपस्थित होता है । इसीलिए कईबार देखने मे आता है कि कलाकार मच की अधिक प्रकाश व्यवस्था पर आपत्ति करते है । मच पर ध्वनि विस्तारक यत्र का ठीक न होना तथा कलाकार के वाद्य यत्र सबधी कठिनाई जैसे बार बार वाद्य मिलाये हुए स्वर से उतर जाना या कलाकार के बैठने की सही व्यवस्था न होना, गायक, वादक कलाकार और सगतकार की गायन, वादन क्षमता में सामजस्य न होना या किसी दबाव मे आकर कार्यक्रम का प्रस्तुतीकरण करना, शारीरिक, मानसिक थकान के दौरान कार्यक्रम प्रस्तुत करना आदि कुछ कारण हैं जिनके फलस्वरूप सगीत के कार्यक्रम मे समुचित रसाभिव्यक्ति नही हो पाती । कई बार कलाकार मच और सगीत के कार्यक्रम को लय, ताल और रसमय प्रस्तुति न समझ कर व्यक्तिगत कुठा को व्यक्त करने का अखाडा समझ कर कार्यक्रम का प्रस्तुतिकरण करते है और एक दूसरे कलाकार के कार्यक्रम को अपनी लयात्मक उठा पटक या ध्वनि अनुपात का सामजस्य न रखकर या

कृत्रिम बेलय, बेतालापन दर्शा कर सगीत के कार्यक्रम को महज एक तमाशा ही बनाकर प्रदर्शित करते है । इस स्थिति मे लय, ताल और रस का सम्बन्ध कदापि नही अनुभव हो सकेगा ।

सगीत की रचना का साहित्य या काव्य, यदि राग या शैली के अनुरूप, लय और ताल के अनुरूप, काव्य का सृजन नही हुआ तो रसाभिव्यक्ति कदापि नही हो सकेगी । यदि श्रृगार रस की अभिव्यक्ति करने वाली राग मे वीर रस से युक्त काव्य या भक्ति रस को उत्पन्न करने के लिए बनायी गयी राग, लय, ताल की सयोजना मे वीर रस से युक्त काव्य का समन्वय कर दिया जायेगा तो निश्चय ही रसाभिव्यक्ति नही हो सकेगी । इसी प्रकार तबले की तालो मे, तबले की वर्ण योजना के अनुसार ही शैली विशेष के साथ सगत करने का निर्णय लिया जाता है । जैसे– बडे ख्याल के साथ पखावज अग के ताल, चारताल या सूल ताल के खुले बोलो की तालो के साथ सगत नही की जाती इसी प्रकार ठुमरी आदि चचल प्रकृति की श्रृगारिक गायकी के साथ, बिलम्बित एक ताल या विलम्बित तिलवाडा ताल नही बजाया जाता और ध्रुवपद, धमार अग की गायकी के साथ रूपक, दादरा और कहरवा जैसी चचल प्रकृति की तालो का वादन नही किया जाता ।

उपरोक्त सभी कारको को ध्यान रखते हुए यदि कार्यक्रम की प्रस्तुति की जायेगी तो सगीत मे लय और ताल का रस सिद्धान्त से सम्बन्ध अत्यन्त स्पष्ट हो सकेगा ।

सप्तम अध्याय

सगीत मे लय ताल और रस :-

"भारतीय सगीत मे लय. ताल और रस सिद्धान्त से सम्बन्ध" विषय का समुचित और विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के लिये प्राचीन काल से वर्तमान तक की विभिन्न गायन, वादन और नृत्य शैलियो मे लय, ताल और रस किस प्रकार समन्वित रूप मे प्रस्तुत होता रहा है? और रसाभिव्यक्ति किस प्रकार सम्भव होती है? उसका विस्तृत और उदाहरण सहित वर्णन अत्यन्त आवश्यक है ।

प्राचीन काल मे भरत का नाट्य शास्त्र रस सिद्धानत का प्रवर्तक ग्रन्थ माना जाता है किन्तु भरत कालीन संगीत लय और ताल का अस्तित्व केवल नाट्य के सदर्भ मे ही किया गया है । भरत कालीन जातियो, गीतियो, गीतो और ध्रुवाओ का प्रयोग और उनमे लय, ताल और रस का प्रयोग और वर्णन नाट्य के सदर्भ मे ही हुआ है अलग से सगीत के सदर्भ मे नही है। "षडजोदीच्यवतती आदि 18 जातियो का सम्बन्ध आठ रसों से स्थापित किया गया है । [1]

भरत कालीन गीतियाँ मागधी, अर्धमागधी, सम्भाविता, पृथुला है। चित्रा, वार्तिक और दक्षिण गायन, वादन शैली मे द्रुत लय, समयति तथा अनागत ग्रह, चित्रा वृत्ति मे मध्य लय, स्रोतोगतायति तथा द्विकल ताल-वार्तिक शैली मे तथा दक्षिण वृत्ति मे विलम्बित लय , गोपुच्छायति तथा चतुष्कल ताल के प्रयोग का वर्णन किया गया है ।

मागधी गीत मे गीत का गान 3 विभिन्न लय खण्डो मे किया जाता रहा है अर्थात गीत के प्रथम खण्ड का गान विलम्बित लय मे, द्वितीय खण्ड का गान मध्य लय मे तथा तृतीय अन्तिम खण्ड का गान द्रुत लय मे किया जाता था । अर्धमागधी द्रुत लय मे गायी जाने वाली गायन शैली थी । नाट्यशास्त्र मे आसारित वर्धमान, उपोहन आदि गीतो का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है तथा सप्तरूप नाम से [2] गीतकों का वर्णन

---

1 ना0शा0 - 29-/1-10 श्लोक

2 ना0शा0 -31/288-414

मद्रक, अपरान्तक, प्रकरी, ओवेणक, उल्लोप्यक, गोविन्दक , उत्तर आदि के नाम से किया गया है । उपर्युक्त गीतो का छन्दादि नियमो के अनुसार त्रिविध विभाजन किया जाता है जो निर्युक्त, पद निर्युक्त , अनिर्युक्त के नाम से वर्णित है । नाट्यशास्त्र मे छन्द, वृत्त और पद से युक्त विशिष्ट रचना ध्रुवा गीत के रूप मे वर्णित की गयी है । आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार नाटक के विभिन्न प्रसगो मे भावनात्मक ऐक्य स्थापित करने के कारण ये नाट्य गीत 'ध्रुवा' कहलाये । ध्रुवाओ का प्रयोग नाट्य प्रसगो के अनुरूप रस का प्रयोग किये जाने पर नाट्य को उज्जवल बना देता है ।[1] ध्रुवा 5 प्रकार की वर्णित की गयी है । (1) प्रावेशिकी (2) आक्षेपिकी (3) प्रासादिकी (4) अन्तरा तथा (5) नैष्कामिकी ।[2] आक्षेपिकी का गान द्रुत लय मे, प्रसादिकी का सम्बन्ध विशिष्ट मन.स्थिति के साथ है। अन्तरा नामक ध्रुवा खेद, विस्मृति, क्रोध आदि अवस्थाओ को व्यक्त करने के लिये प्रयोग की जाती थी । ध्रुवा गीत शब्द, छन्द तथा ताल की दृष्टि से पूर्णतः निबद्ध हुआ करते थे । भरत के अनुसार गीत का ऐसा कोई पद नही जो छन्द पर आश्रित न हो ।[3] ध्रुवा गीतो मे प्रथम अलाप, पश्चात वाद्य, और छन्दगान यही क्रम आवश्यक माना जाता था । ध्रुवा के साथ मृदग और पुष्कर जैसे वाद्यो की संगति की जाती थी । इन गीतो का प्रयोग नाट्यानुकूल भावो की वृद्धि करने में होता था । नाट्यशास्त्र मे भरत ने पात्र तथा रस के अनुकूल लय तथा मृदग वादन के सम्बन्ध मे पर्याप्त विवेचन किया है।[4] भरतानुयायी कोहल ने प्रवेशिकी ध्रुवा का गान वलित नाम से मध्य लय मे किया जाना चाहिये, ऐसा उल्लेख किया है । उल्लसन नामक लय का प्रयोग वीर रस के

---

1 ना० शा० 312 / 455

2 ना० शा० 32/ 4-6 श्लोक सख्या

3 ना०शा० 32/400

4 ना०शा० 33 अध्याय , 13/ 10-23

लिये, जन्भलिका लय का प्रयोग करूण रस के लिये तथा खण्ड धरा का उपयोग रथ की गति को सकेतित करने के लिये है। [1] इन विविध लय प्रकारो का प्रयोग अभिष्ट रस के परिपोषण के लिये किया जाता रहा है। ध्वनि समूहो का गान अथवा वादन विशिष्ट लय में किये जाने पर तदनुकूल भावो को उद्दीप्त करता है । यह तथ्य अनुभव सिद्ध है । द्रुत लय मे गान अथवा वादन यदि भावो को सरल बना देता है तो विलम्बित लय मे प्रस्तुत सगीत वातावरण को शात कर देता है। नाट्य शास्त्र के अनुसार चचत्पुट , चाचपुट, षटपिता पुत्रक , पचपाणि, समपक्वेष्टा और उधट्ट ताले ध्रुवा, जाति, गीत, गायकी के साथ निबद्ध हुआ करती थी ।[2] भरत कालीन ध्रुवा गायन शैली का शास्त्र ही केवल उपलब्ध है इसके क्रियात्मक पक्ष को प्रस्तुत करने के लिये कोई भी प्रमाण उपलब्ध नही है ।

भरत कालीन सगीत केवल स्वर तथा ताल का स्वछन्द प्रयोग नही वरन् स्वर तथा ताल के समन्वित सार्थक शब्दो का समूह है । अत रसानुभूति से पूर्व श्रोता के लिये उन्ही स्थायी भावो की अनुभूति सभप है जो विशुद्ध काव्य से हो सकती है। इस दृष्टि से काव्यगत रस प्रक्रिया सगीत पर चरितार्थ हो सकती है तथा नाट्य एव काव्य के अष्टरस संगीत मे पूर्णत. अनुभूत किये जा सकते है । वाद्य वादन का सम्बन्ध मुख्यतः गीत की संगति से रहा है। अतः स्वाभाविक है कि गीतो का वादन , श्रोताओं के अन्तस मे तदनुकूल स्थायी भाव, जागृत करके रस सिद्धि सम्भव कर सके । नृत्य का भरतोक्त गान्धर्व मे कोई स्थान नही है। वह एक स्वतन्त्र ललित कला है जो गीत के अभिनय से प्रेक्षको को रस प्लावित कर देती है । गीत के शब्द और अर्थ के साथ आगिक, वाचिक आदि चतुर्विध अभिनय का सयोग होने पर नृत्य के द्वारा रसानुभूति काव्य तथा सगीत की अपेक्षा, द्रुततर गति से होती है । जाति गायन तथा वाद्य वादन की रस निर्माण क्षमता विशिष्ट सदर्भ एव वातावरण पर निर्भर करती है ।

जनरल आफ म्यूजिक एकेडमी मद्रास भाग 25 पृष्ठ 10 डा राघवन का लेख।

सगीत रत्नाकर के प्रबन्ध अध्याय मे तालो के प्रयोगिक पक्ष का भी वर्णन किया गया है । प्रबन्धो का प्रदर्शन उदग्राह मेलापक, ध्रुव एव आभोग कहे जाते थे । इनके स्वर, विरूद्ध , पद, तेनक पाट व ताल इस प्रकार छः अग माने गये । "ताल" प्रबन्ध का एक अनिवार्य अग था एव दो अगो वाले तारावलि प्रबन्ध मे भी स्वर के साथ ताल का सयोग था उक्त छ. अगो के आधार पर 5 जातियो का निर्माण हुआ जो श्रुति, नीति, सेना कवित्त एव चम्पु आदि नामो से जाना गया। सगीत रत्नाकर मे आलि जाति के चौबिस प्रबन्ध, विप्रकीर्ण श्रेणी के 36 प्रबन्ध तथा शुद्ध सूड जाति के 8 प्रबन्धो का वर्णन किया गया है। जिनमें तालो का प्रयोग उनकी लय , वर्णनीय विषय, रस आदि का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ मे लय, ताल और रस का सम्बन्ध बहुत स्पष्ट एव विस्तृत रूपों मे उद्धृित किया गया है।

शुद्ध सूड प्रबन्ध के अन्तर्गत एला प्रबन्ध मे मठ द्वितीय, ककाल एव प्रति ताल का प्रयोग हुआ है तथा गीत के वर्णनीय विषयो में त्याग, सौभाग्य, शौर्य , धैर्य आदि रसो की अभिव्यक्ति हुयी है।

करण नामक प्रबन्ध के साथ रस, ताल की सगति का उल्लेख है। ढेनकी नामक प्रबन्ध मे उदग्राह एव मेलापक विलम्बित ककाल ताल का प्रयोग मान्य था। वर्तनी प्रबन्ध मे ककाल, प्रतिताल, कुडुवक एव द्रुमंठक मे से किसी एक ताल का प्रयोग होता था। .झोम्बड नामक प्रबन्ध मे रास तालो के प्रयोग का उल्लेख है ये ताल है नि.सारूक, कुडुवक, त्रिपुट, प्रतिमठ, द्वितीय, गारूगी, रास, यति लग्न अड्डे तथा एक ताली। एक ताली और लस्तुक तारावलि जाति का स्वरताल बद्ध प्रबन्ध था । रासक प्रबन्ध रास ताल मे गाया जाता था । आली जाति के अन्तर्गत 24 प्रबन्धों का सगीत-रत्नाकर के प्रबन्ध अध्याय मे उल्लेख किया गया है । वर्ण, स्वर एव वर्ण – इसमें वर्ण ताल का प्रयोग होता था ।

गद्य – छन्द हीन पद समष्टि को गद्य एव उनके गेय रूप को गद्य प्रबन्ध कहते थे जिसमे सुसम्बद्धता का नियम था इसमे 6 गतियो का निर्देश है:-

-द्रुत, विलम्बिता, मध्या, द्रुतामध्या, द्रुतविलम्बिता, मध्यविलम्बिता । कैवाड प्रबन्ध के लिये ताल के निश्चित नियम नही थे । तत्कीन कैवाड प्रबन्ध से आधुनिक ख्याल व तराना गीतो की उत्पत्ति हुयी ऐसा विद्वानो का कथन है । [1]

सगीमज्ञ अकचारिणी प्रबन्ध एव रौद्र रसो को मिश्रित कर एक से लेकर पॉच तालो का समावेश करते थे एव इन भेदो को वासवी , कलिका, वृत्ता, वीरवत्ती, वेदोत्तरा एव जातिमती कहते थे । कन्द प्रबन्घ को ताल वर्जित कहा है । तुरगलील प्रबन्ध की रचना हरलील. ताल मे हुयी है जिसका दूसरा नाम तुरगलील भी है। गजलील प्रबन्ध मे गजलील ताल गाया जाता था । द्विपदी प्रबन्ध के शुद्धा,खण्ड, मात्रा एव सम्पूर्णा ऐसे चार प्रकार है । उसे करूण ताल मे प्रस्तुत किया जाता था । क्रौचपद प्रबन्ध मे प्रतिताल का उल्लेख सगीत-रत्नाकर मे है । स्वरार्ध प्रबन्ध मे किसी ताल के प्रयोग का निर्देश नही है । आर्या प्रबन्ध मे आर्या छन्द के प्रयोग होने का उल्लेख है । द्विपथ प्रबन्ध को द्विपथ छन्द मे गाया जाता था। कलहंस प्रबन्ध की रचना कलहंस मे होती थी । इस प्रबन्ध हेतु झम्पा ताल का प्रयोग होता था । वृत्त प्रबन्ध छन्द मे कलाकार की इच्छा के अनुरूप ताल का प्रयोग करने पर वृत्त प्रबन्ध कहलाता था । मात्रिका प्रबन्ध मे देशी तथा मार्गी दोनो तालो के प्रयोग की मान्यता थी । राग कदम्बक प्रबन्ध मे प्रारम्भ मे सिह नन्दन ताल और समाप्ति ताल मानयोग से की जाती थी । पच तालेश्वर प्रबन्ध मे पाच मार्ग तालो का प्रयोग होता था । वीर रस के प्रयुक्त होने पर इस प्रबन्ध को वीरावतार एव श्रृंगार रस मे प्रयुक्त होने पर इसे तिलक कहते थे । पचतालो के प्रयोग के कारण ही इसका नाम पचतालेश्वर पडा । श्रीरग प्रबन्ध मे चार तालो के प्रयोग चार रागो मे होते थे । श्री विलास, पाच रागों के साथ पांच तालों का प्रयोग इस प्रबन्ध हेतु उल्लिखित है । उमा तिलक प्रबन्ध को तीन राग और तीन तालो मे निबद्ध कर अन्त मे विरूद का प्रयोग वर्णित है। विजय प्रबध का प्रयोग राजाओ के विजय समारोह मे होता था तथा

विजय ताल मे ही गाया जाता था । सिह लील प्रबन्ध को सिह लील ताल मे ही गाया जाता था । हसलील ताल का प्रयोग हसलील प्रबन्ध मे किया जाता था । झम्पट प्रबन्ध मे झम्पट छन्द की योजना क्रीडा ताल मे होती थी । त्रिभगी प्रबन्ध मे त्रिभगी ताल और त्रिभगी छन्द मे निबद्ध प्रबन्ध गाया जाता था । चर्या प्रबन्ध मे पद्धडी आदि छन्दो व द्वितीया आदि तालो का प्रयोग होता था । पद्धडी प्रबन्ध पद्धडी छन्द मे रचित वीर रस प्रधान प्रबन्ध है। मगलाचार, निस्सारूक ताल के साथ प्रयुक्त होता था । यह भावनी जाति का प्रबन्ध है । मगल वाचक पदो को विलम्बित लय मे गाने पर मगल प्रबन्ध होता था ।

वर्तमान सगीत की दृष्टि से सालग सूड प्रबन्धो का विशेष महत्व है क्योकि ध्रुवपद गीतो की परम्परा इन्ही प्रबन्धो से विद्वानो के मतानुसार प्रस्थापित हुयी । सालग सूड के अन्तर्गत ध्रुव , मठ, गतिमण्ठ, निस्सारूक , अड्ड ताल , रास और एक ताली इन सात गीतियो को मानते है। शुद्ध सूड़ मे वर्णित एक ताली का सालग सूड मे वणित एक ताली से कोई सम्बन्ध नही है। इन गीतियो मे प्रयुक्त तालो के नाम ध्रुव, मण्ठ ताल जिसके छः भेदो का वर्णन और उनका छ. प्रकार की गीतियो के साथ प्रयोग तथा उनके द्वारा विशेष रस की निष्पत्ति का वर्णन इस प्रकार हैः-

1 जनप्रिय गीत - जगणात्मक मण्ठ ताल का प्रयोग - वीर रस हेतु, मगल गीति भगणात्मक मण्ठ ताल का प्रयोग - श्रृंगार रस हेतु, सुन्दर गीति - सगणात्मक मण्ठ ताल का प्रयोग - श्रृगार रस हेतु, वल्लभ गीति मे रगणात्मक मण्ठ ताल का प्रयोग - करूण रस हेतु , कलाप गीति - मगणात्मक मण्ठ ताल का प्रयोग - हास्य रस हेतु, कमल गीति - विरामान्त दो द्रुत और एक लघु - अदभुद रस हेतु किया जाता रहा है । मण्ठ ताल के कुल 10 प्रकार के प्रयोगो का वर्णन सगीत-रत्नाकर के तालाध्याय मे हुआ है । प्रतिमण्ठ ताल का प्रयोग सालग प्रबन्ध की चार गीतियो मे चार प्रकार से किया जाता था तथा उनके द्वारा

निम्नलिखित रसो की निष्पत्ति होती थी – अमर गीति मे एक गुरू का प्रयोग होता था श्रृगार रस हेतु । तार गीति मे दो विरामान्त द्रुत के बाद दो लघु का प्रयोग – वीर तथा रौद्र रस हेतु, विचार गीति मे तीन विरामान्त लघु का प्रयोग – करूण रस हेतु , कुन्द गीति मे उद्ग्राह खण्ड के विराम ताल मे तीन लघुओ का प्रयोग श्रृगार रस हेतु किया जाता था ।

सप्त सूड प्रकारो मे तालो के जटिल प्रयोग होने के कारण वर्तमान ध्रुवपद की सरल शैली का शास्त्रीय सगीत मे प्रादुर्भाव हुआ। सगीत रत्नाकर के प्रबन्ध अध्याय मे वर्णित प्रबन्धो का लय, ताल और रस का विवेचन विश्व सगीत समाज के सम्मुख तत्कालीन ताल रूचि का गौरवपूर्ण स्वरूप उद्घाटित करता है । किन्तु इस प्रबन्ध गायकी का कोई क्रियात्मक पक्ष का उदाहरण स्वर लिपि रूप मे उपलब्ध नही है।

ध्रुवपद शैली – प्रबन्ध गायन शैली का रूपान्तर ही अधिकाश रूप मे आज ध्रुपद मे विद्यमान है । प्राचीन अलाप के जो नियम थे वे सब आज कुछ परिवर्तन के साथ ध्रुवपद गायन के अलाप मे मिलते हैं । अनिबद्ध गान की रूपकालप्ति का लय बद्ध रूप आलाप के सचारी भाव मे पूर्णत. परिलक्षित होता है । इन सब सबल आधारो से यह नि.सकोच कहा जा सकता है । कि ध्रुवपद शैली, प्रबन्ध गान का रूप कुछ रूपान्तर से हमारे सामने प्रस्तुत करती है । आज के ध्रुवपदो मे अनेक धार्मिक पर्वो, राज दरबारो, सामाजिक रीति रिवाजो, वेदान्त के सिद्धान्तो भक्ति मार्ग के विभिन्न पथो आदि का विस्तृत और सामाजिक रूप प्रस्तुत होता है। ध्रुपद गायन के विस्तार के मुख्य आधार राग, लय, ताल और भाव हैं। राग का शुद्ध रूप हमे ध्रुवपद की श्रेष्ठ रचनाओ मे उत्कृष्ट रूप से मिलता है। राग के वर्णित स्वरो, अल्पत्व , बहुत्व, वादी-सवादी आदि राग के रचनात्मक तत्वो का ध्रुवपदो मे पूर्ण रूप से परिपालन होता है । ध्रुवपद एक गम्भीर और जोरदार गायन शैली मानी जाती है । ध्रुवपद के गीत प्रायः हिन्दी, उर्दू एव ब्रजभाषा मे मिलते है । यह मर्दानी आवाज का गायन है । उसमे वीर, श्रृगार और शान्त रस प्रधान भाव मिलते है।

ध्रुपद मे स्थायी, अन्तरा, सचारी और आभोग ऐसे चार भाग होते हैं । ध्रुवपद अधिकतर चार ताल, सूलताल, गजझपाताल, तीव्रा ताल, ब्रम्हताल , रूद्र ताल लक्ष्मी ताल आदि मे गाये जाते हैं । ध्रुपद मे तानो का प्रयोग नही होता किन्तु गमक और बोल तान का प्रयोग होता है । इसमे दुगुन तिगुन, चौगुन आड, कुआड आदि लयकारियों के द्वारा अदभुद रस भी उत्पन्न किया जाता है । ध्रुपद गायको को कलावन्त की सज्ञा से विभूषित किया गया है । ध्रुवपद गायको के भेद उनकी चार वाणियो के अनुसार किये जाते हैं। चार वाणियाँ – गोबर हरी वाणी या शुद्ध वाणी , खण्डार वाणी , डागुरवाणी , नोहार वाणी । इन वाणियो के क्रियात्मक पक्ष का गान करने के लिये कोई स्वर लिपि उपलब्ध नही है केवल शास्त्र ही उपलब्ध है । गोवर हारी वाणी मे प्रधान लक्षण प्रसाद गुण है । यह शात रसोद्यीपक है । इसमे आशा विश्वास और विश्राम की स्थिति का आभास मिलता है । खण्डार वाणी मे वैचित्र्य और ऐश्वर्य प्रकाश खण्डार वाणी की विशेषता है । यह तीव्र रसोद्यीपक है । गोवर हरी वाणी की अपेक्षा इसमे वेग और द्रुत लय मे निबद्ध रचनाये होती है ये वीर, क्रोध, भयानक रस की उत्पत्ति करती है । इसकी गति या लय अति विलम्बित नही होती। डागुर वाणी मे सरलता और लालित्य गुण प्रधान है । इसकी गति सहज व सरल है । इसमे स्वरो का टेढा और चिवित्र काम दिखाया जाता है। नोहार वाणी मे नोहार रीति से सिह की गति का बोध होता है । एक स्वर से दो तीन स्वरो का लघन करके परवर्ती स्वर मे पहुँचना इसका मुख्य लक्षण है । नोहार वाणी विशेष रूप से अदभुद रस की सृष्टि करती है । गोबर हरी वाणी या शुद्ध वाणी मे डागुर वाणी का ही नाम का रूपान्तर मिलता है । शुद्ध वाणी ही इस शैली की आत्मा है और इस शैली की प्रतिष्ठा भी है। संगीत का प्राण स्वरूप जो रस वस्तु है उसका अविकल झरना शुद्ध वाणी मे ही मिलता है । इस लिये शैनी लोग सर्वदा शुत्र वाणी के संगीत पर विशेष जोर देते है । डाँगुरवाणी मे एक स्वर दूसरे स्वर के साथ जिस विचित्रता के साथ मिलता है उस कारण उसमे एक विचित्र और रहस्य मय भाव उत्पन्न हो जाता है ।

खडारवाणी को सस्कृत मे भिन्नागीति कहा गया है। इस वाणी मे स्वर के भिन्न-भिन्न टुकडे करके गाते हैं । सम्भवत इसीलिये सस्कृत मे इसको भिन्न कहा जाता है । दोनो शब्दो का मूल तात्पर्य एक ही है। स्वर को सरल भाव से प्रकट न करके कुटिल भाव मे खण्ड-खण्ड मे प्रकट करना ही खण्डार वाणी की विशेषता है । इस कृत्य मे स्वर की मधुरता का नाश नही होता , अपितु सूक्ष्मगमक की सहायता से स्वर को आन्दोलित करने पर उसमे मधुरता की और भी वृद्धि होती है । इसीलिये कलाकार गमक की सहायता से खडार वाणी गाते है । यत्र सगीत मे वीणा द्वारा खण्डार वाणी का सैनी लोग विविध प्रकार से मध्यलय का गमक व जोड मे उपयोग करते हैं । शुद्ध वाणी की प्रधानता रबाब द्वारा दिखायी जाती थी क्योकि रबाब का स्वर सरल होता है । इसमे विलम्बित , मध्य , द्रुत ये त्रिविध अलाप बखूवी दिखाये जा सकते है । [1]

लय की दृष्टि से उपर्युक्त चारो भागो के अलाप मे स्थायी मे विलम्बित लय के साथ अलाप चलता है । अन्तरे मे अलाप करते समय मध्यलय कर दी जाती है और बीच-बीच मे छोटी-छोटी तानो की सहायता से अलाप के काम मे सुन्दरता पैदा की जाती है । सचारी भाग मे लय द्रुत हो जाती है और तीनों सप्तको मे गमक तथा लयकारी का प्रदर्शन करते हुए अलाप चलता है । आभोग मे लय को और भी द्रुत करके अन्तरा के भाग को विविध प्रकार से दोहराते हुये गमक का प्रयोग जारी रखा जाता है और गायक जितनी तेजी से गा सकता है, अपना पूर्ण कौशल दिखाते हुये तबले या पखावज के बोलो के साथ एक प्रकार की प्रतियोगिता उपस्थित कर देता है। इस भाग के बोल नोमतोम के शब्द तथा अति द्रुत लय के कारण तराने का रूप धारण कर लेते हैं । [2] ध्रुवपद गायकी मे लय, ताल और रस का सम्बन्ध अत्यन्त ही स्पष्ट है और शोध विषय को अत्यधिक स्पष्ट करने मे सहायक है।

---

1 इस शोध प्रबन्ध के पृष्ठ 141/142 पर उदधृत

2 इस शोध प्रबन्ध के पृष्ठ 144 . पर उदधृत

ब्रजधर हरि हे गिरधर ।
दाता धाता त्राता विष्णु भानु जह्नु जिष्णु दामोदर कैटभारि !
कृपाकर मायापति सर्वभावन जगदीश सर्वमगल समदृष्टि विश्वरूपी ग्रसुरारि ।
हर प्रिय विभु कवि भग पितु मनु रवि यम गिरि भृगुत्रदपि घटपति वर स्वर,
गुरु खल धर ऋत कृत कलियुगहयबलि श्रुतशुभधर हे गिर हे गिर .... ।
ग्रनघ ग्रक्षय ग्रचल ग्रयन भरत चपल सूर्य नित्य वायु देव मत्स्य वत्स्य
कूर्म शेष हंस दक्ष भानु वेद सुधी वशी तपी व्रती शिखी सुखी
पावन चरणशरण दे, चरणशरण दे, चरणशरण दे .... !
ग्रविकल रतिप्रिय ग्ररजुन गणपति शुचिव्रत निरमल सत्पथ निरगुण कुलवर
जल्पक सर्वग कर्मद वामन मानद सागर पावक तारक रामक
रामक यादव राघव नारद विशाल उदार पुराण मानी
ज्ञानी नादी निरमल बुधिकर हे, निरमल बुधिकर हे, निरमल बुधिकर हे ....!
जगद्गुरु जगत्पति जगन्मय गदाधर राजपति भवसेतु वैकुण्ठ
निरञ्जन गुणवान् वसुधार ग्रणुरूप भगवान् दयाल
सुमगल सुमगल दे, सुमगल सुमगल दे, सुमंगल सुमगल दे .... ।
गिरवरधर करुणाकर सदयहृदय वासुदेव मधुसूदन गोतापति महासेतु
दशाराम ग्राङ्कार ध्यानवान् रागवान् शक्तिमान मोहन
शार्ङ्गपाणि चक्रपाणि हे गदापाणि पद्मपाणि हे हेमराशि पद्मनाभ ।
सुरग्रसुरगुरु वामकरमा भक्तवत्सल शेषशायी भूमिशायी
जलशायी सत्यगामी सत्यवादी ब्रह्मज्ञानी सर्वसाक्षी
दिव्यमाली मेघमाली शुभप्रद सर्वमगल मगलाकर हे,
सर्वमगल मगलाकर हे, सर्वमगल मगलाकर हे ....!
माधवमोहन, सुररिपुमर्दन जनमनरंजन भवभयभंजन
वराहरूपधर गोपमोक्षकर गोवर्धनधर काममानहर
ग्रधरधराधर ऋद्धिसिद्धिप्रद सामगानकर नरनारायण
मंगल रोहिणिनंदन यशुदानंदन हे, रोहिणिनंदन
यशुदानंदन हे, रोहिणिनदन यशुदानन्दन हे ....!

ताल : चारताल

• स्थायी

×		०		२		०		३		४	
						सा	रे	म	प	सां	नि
						ब्र	ज	ध	र	ह	रि

ध	-	प	ग	ग	रे						
हे	ऽ	गि	र	ध	र						
प	ध	प	मं	नि	ध	प	म	ग	रे	सा	-
दा	ऽ	ता	ऽ	धा	ऽ	ता	ऽ	श्रा	ऽ	ता	ऽ
गा	रे	म	ग	-	रे	सा	-	नि	ध	प	ध
वि	ऽ	ष्णु	भा	ऽ	नु	ज	ऽ	हृ	जि	ऽ	ष्णु
सा	रे	म	ग	रे	म	प	सां	नि	ध	प	म
दा	ऽ	मो	ऽ	द	र	कै	ऽ	ट	भा	ऽ	रि

हे गिरधर..............।

अन्तरा •

×		०		२		०		३		४	
ध	प	-	म	ग	रे	सा	रे	म	प	ध	प
हृ	पी	ऽ	के	ऽ	श	मा	ऽ	या	ऽ	प	ति
म	-	ग	रे	प	ध	ग	रे	म	प	ध	सां
स	र्	व	भा	ऽ	व	न	ज	ग	दी	ऽ	श
सां	मं	पं	ग	-	रें	सां	नि	सां	ध	-	प
स	र्	व	मं	ऽ	ग	ल	स	म	ह	ऽ	ग्रि
म	प	नि	ध	प	ग	-	रे	सा	रे	म	प
वि	ऽ	श्व	रू	ऽ	पी	ऽ	अ	गु	रा	ऽ	रि

हे गिरधर............।

सम से दुगुन •

सारे	सानि	धगा	रेम	गरे	मप	गग	रेम	धप	धध	पप	गग
हर	प्रिय	विभु	कवि	भग	नितु	मनु	रवि	यम	गिरि	भृगु	ऋषि
सासा	रेरे	मम	पप	धध	सांसां	निनि	धध	पप	मम	गग	रेरे
घट	पति	वर	स्वर	गुरु	गोल	धर	ऋत	कृत	कवि	युग	क्षय

मप धुसा | रेंमं पधुं | पं मम | गु गु | रेंरें सां | सां ऩिऩि
बोल श्रुत | शुभ धर | हे ऽऽ | गि र | हे ऽ | गि र
हे गिरधर...... ।

• सम से तीया-सहित तिगुन

× | ० | २ | ० | ३
धुधुधु पपप | ममम गुगुगु | रेरेरे सासासा | म-रे म-गु | रे-म प-गु
अनघ अक्षय | अचल अयन | भरत चपल | सूऽर्य निऽत्य | वाऽयु देऽव

४ | × | ० | २ | ०
प-गु गु-रे | म-प धु-प | प-प सां-रें | मं-पं धुं-पं | मगु- रेसां-
मत्स्य वत्स्य | कूऽर्म शेऽप | हृऽस दऽक्ष | भाऽनु वेऽद | सुधीऽ वशीऽ

३ | ४ | × | ० | २
ऩिधु- पम- | गुरे- सासा- | रे म | प धु | सारेंमं पधुप
तपीऽ व्रतीऽ | शिखीऽ सुखीऽ | पा ऽ | व न | चरण शरण

० | ३ | ४
ग रेंसांऩि | धुपम गु | सारेम पधुप |
दे चरण | शरण दे | चरण शरण | हे गिरधर ...... ।

• सम से तीया-सहित चौगुन

× | ० | २ | ०
धपमगु रेसाऩिधु | सागुरेगु रेसारेम | रेमपधु धपपम | पधुपप धुसांनिधु
अविचल रतिप्रिय | अरजुन गणपति | शुचिव्रत निरमल | सतपथ निरगुण

३ | ४ | × | ०
पऩिधुधु पपऩिधु | धुसांरेंसां रेंमंपपं | धुंपधुंधुं पमंपंपं | मगुमम मगुगुगु
कुलवर जलपक | रावंग करमंद | वाऽमन भाऽनद | साऽगर पाऽवक

२ | ० | ३ | ४
गुरेंसांसां सांऩिधुधु | सांसांऩिऩि धुधुपप | ममगुगु रेरेसासा | रेरेमम पपधुधु
ताऽरक साऽमग | राऽसक याऽदव | राऽघव नाऽरद | विशाऽल उदाऽर

× | ० | २ | ०
सांसांसांसां रेंमंगुरें | सांगुरेंसां ऩिरेंसांऩि | धुपधुप मगुमगु | रें सारेंसारें
पुराऽण माऽनीऽ | ज्ञाऽनीऽ नाऽदीऽ | निरमल बुधिकर | ह निरमल

३   ४
मगगग   ध | सांरेंमम   गरेंसांनि |
नभि ाउर   हे | निरगन   बुधिकर | हे गिरधर ·· ।

सम से तीया-सहित पँचगुन •

×   ०   २
पधपधनि   निधनिधसां | सांनिधपम   गरेगानिध | सागगगरे   रेरेम-प
जगद्गुरु   जगत्पति | जगन्मय   गदाऽधर | राऽजपति   भवसेऽतु

०   ३   ४
पधपधम   ममगनिध | धमांनिधमां   रेंसांगरेंसां | सांनिधमांनि   धपमगरे
वैऽकुण्ठ   निरऽजन | गुणावाऽन   वसुन्धाऽर | अग्मूऽऽत   भगवाऽन

×   ०   २   ०
सा   रे | म   प | धधपमग   पमगमग | प   मगरेमप
द   या | ऽ   ल | सुमऽगल   सुमऽगल | दे   सुमंऽगल

३   ४
मगरेमग   रे | सागरेगरे   सारेमपप |
सुमंऽगल   दे | सुमऽगल   सुमऽगल | हे गिरधर · · ।

सम से तीया-सहित छद्गुन •

×   ०   २
सारेमपधमा   निसांनिधनिध | धपधपधप   प-पपमप | गमगपमग   रेगरेमगरे
गिरवरधार   करुणाऽकर | गदगद्हृदय   नाऽगृदेऽव | मधुसूऽदन   मीऽनाऽननि

०   ३   ४
मपधमांनिसां   निधपमगरे | सारेसारे-रे   मरेमप-प | धपधसां-सां   गरेंसारेंसांरें
महाऽसेऽतु   दयाऽराऽम | ओऽङ्काऽर   ध्याऽनवाऽन | राऽगवाऽन   शऽक्तिमाऽन

×   ०   २   ०
मं   पं | धं   प | मंममगगग   रें-रेंमां-सां | नि   - धध-प-प
मो   ऽ | ह   न | शंऽखपाऽणि   चऽक्रपाऽणि | हे   गदाऽपाऽणि

३   ४
ममगगगग   रे | सारेमरेमप   मपधपधसां |
पऽद्मपाऽणि   हे | हेऽमराऽणि   पऽद्मनाऽभ | हे गिरधर ·· ··।

• सम से तीया-सहित सतगुन

×		०		२	
रेमपधुमारेमं	पमगुमपप-	धुपमपधुधुधु	प-पमगुमप	ममममगुगुगुगु	रेंरें-रें-सा-
सुरअसुरगुरु	वाऽमकरमाऽ	भऽक्तवत्सल	शेऽपशाऽयीऽ	भूऽमिशाऽयीऽ	जलेऽशाऽयीऽ
०		३			
सारेमगुरेसा-	नि-निरें-सा-	गु-गुगुरेंसां-	मां-सांनि-नि-		
सऽव्यसाऽचीऽ	सऽत्यवाऽदीऽ	ब्रऽह्मज्ञाऽनीऽ	सऽर्वसाऽक्षीऽ		
४		×		०	
धु-पधु-प-	पमगुगुरेरेसा	नि	रे	म	गु
दिऽव्यमाऽनीऽ	मेऽघमाऽलीऽ	शु	भ	प्र	द
२		०		३	
रेसारेमगुरेसा	रेमगुमपपप	गु	रेमगुरेरेगुरे	म-मप-धुधु	प
सऽर्वमऽगल	मंऽगलाऽकर	हे	सऽर्वमऽगल	मऽगलाऽकर	हे
४					
पमपधुपनिधु	धसांनिधुसां-नि				
सऽर्वमंऽगल	मंऽगलाऽकर	हे गिरधर ……।			

• सम से तीया-सहित अठगुन

×		०	
धुमांनिधुसांरेंगुरें	सानिधपमगुरेसा	रेंरेंमम धुधु	सांसासासागुगुगुगु
माऽधवमोऽहन	सुररिपुमर्दन	जनमनरंऽजन	भवभयभंऽजन
२		०	
रेंमंपंधुंपंपंमंमं	गुरेंसांगुरेंसांगुरें	सांनिधुसांनिधुमांनि	धपमगुपमगुरें
वत्सरूऽपधर	गोऽपमोऽक्षकर	गोऽवरधनधर	काऽमगाऽजहर
३		४	
सारेंगारेंसारेंमप	मपधुसांपधुमांसा	मगुरेंसांपमगुरें	सांमनिगुमगुपगा
अधरधराऽधर	ऋऽद्धिसिऽद्धिप्रद	साऽमगाऽनकर	नरनाऽराऽयण

ध्रुपद - राग मालकोश

ताल : चन्द्रचारताल

स्थायी •

×				२				३			४	
सां	-	सां	नि	सां	(नि)ध	नि	-	(नि)ध	नि	ध	मग	गा
सं	ऽ	क	प	र	च	ढयो	ऽ	रा	ऽ	म	दऽ	रा
नि	सा	ध	नि	सा	सा	ग	म	ग	म	ध	म	ध
भि	ड़	त	लं	ऽ	क	प	ति	म	सु	र	ख	ल

अन्तरा •

×				२				३			४	
म	ग	म	म	ध	नि	सां	सां	नि	सां	गं	नि	सां
उ	ड	त	भु	ज	मुं	ऽ	ड	गि	र	त	थ	ल
(नि)ध	नि	सां	सां	गं	गं	म	म	(म)ग	मं	ग	सांनि	सां
को	ऽ	पे	क	पि	भा	ऽ	लु	नी	ऽ	ल	नऽ	ल
(नि)ध	-	नि	सां	गं	सां	नि	(नि)ध	नि	ध	म	(म)ग	म
दे	ऽ	व	दे	ऽ	ख	हिं	वि	मा	ऽ	न	च	ढ़
ग	म	ग	सा	नि	सा	ग	म	ग	म	ध	म	ध
य	ज	त	शं	ऽ	ख	[illegible]	ब	जो	ऽ	तो	ग	ढ

पखावज पर चन्द्रचारताल के बोल (मात्रा १३) •

×				२				३			४	
धा	कि	ट	धा	घेघे	धा	दिं	ता	ता	तृक	धिकि	टधा	ऽन

स्थायी की दुगुन •

×				२				३			४	
सां-	सांनि	सां(नि)ग	नि-	(नि)धनि	धमग	मानि	सांग	निसा	साग	मग	मध	मध
लंऽ	कप	रच	ढयौ	राऽ	मदऽ	लगि	ड़त	लंऽ	कप	तिग्र	गुर	खल

तीया-सहित स्थायी की चौगुन •

× नि । २ नि

--मां- सांनिसाध नि-धनि धमगगानि साधनिमा गागमग

ऽऽलऽ कपरच ढ्योऽराऽ मदऽलभि इतलऽ कपतिश्र

३ | ४

मधमध मां-सांग मधमध | सां-सांग मधमध |

गुरखल लंऽकम्र गुरखल | लंऽकम्र गुरखल |

स्थायी की आड (ड्योढ़ी) •

३ | ४ नि | × नि

- -मां --- मां-नि | -मां- ध-नि | --- ध-नि -ध- गग-सा

ऽऽमं ऽऽऽ कऽप | ऽरऽ चस्कृयो | ऽऽऽ राऽऽ ऽमऽ दऽऽल

२ | ३ | ४

-नि- सा-ध -नि- सा-गा | -ग- म-ग -म- | ध-म -ध-

ऽभिऽ हुऽत ऽलंऽ ऽऽक | ऽगऽ तिऽश्र ऽगुऽ | रऽग ऽलऽ

तीया-सहित स्थायी की आड़ •

× | २ नि नि | ३

सां-- -सां- | नि-मां -ध- नि-- -ध- | नि-ध -मग- सा-नि

लंऽऽ ऽकऽ | पऽर ऽचऽ ढ्योऽऽ ऽराऽ | ऽऽम ऽदऽऽ लऽभि

४ | × | २

-गा- ग-नि | -गा- गा-ग -म- ग-म | -ध- म-ध -ग- म-ध

ऽड़ऽ तऽलं | ऽऽऽ कऽप ऽगिऽ श्रऽसु | ऽरऽ खऽल ऽश्रऽ सुऽर

३ | ४

-म- ध ग -म- | ध-म -ध- |

ऽखऽ लऽश्र ऽगुऽ | रऽग ऽलऽ |

तीया-सहित स्थायी की आड़ •

४ | × नि नि | २

सां-- -सां- | नि-मां -ध- नि-- -ध- | नि-ध -मग- सा-नि -सा-

लंऽऽ ऽकऽ | पऽर ऽचऽ ढ्योऽऽ ऽराऽ | ऽऽम ऽदऽऽ लऽभि ऽड़ऽ

ताल : चारताल   ध्रुपद - राग हिंडोल

स्थायी •

०		३		४		×		०		२	
सां	निध	ध	मं	ग	मं	ध	-	मं	ग	-	सा
श	रऽ	ण	ते	ऽ	री	आ	ऽ	ए	मा	ऽ	तु
ध्	सा	सा	ग	-	मं	ध	-	मं	ग	सा	-
ज	ग	त	ज्यो	ऽ	ति	ज्वा	ऽ	ऽ	ला	ऽ	ऽ

अन्तरा •

ग	-	मं	ध	-	ध	सा	-	सां	ध	ध	-
जा	ऽ	ल	पा	ऽ	प्र	स	ऽ	न	भ	ई	ऽ
गं	-	सां	गं	-	ग	सां	-	नि	ध	सां	-
रि	ऽ	द्धि	सि	ऽ	द्धि	दे	ऽ	त	भ	ई	ऽ
ध	-	मं	ध	-	सां	ध	ध	मं	ग	-	मं
ता	ऽ	न	से	ऽ	न	श	र	ण	आ	ऽ	ए
ध	सां	गं	सां	-	नि	ध	-	मं	ग	सा	-
दे	हु	मु	रा	ऽ	द	ए	ऽ	दा	ऽ	ता	ऽ

दसवीं मात्रा से स्थायी की दुगुन •

०		३		४		×		०		२	
सां	निध	ध	सां,निध	धमं	गमं	ध-	मंग	-सा	धगा	साग	-मं
श	रऽ	ण	श,रऽ	णते	ऽरी	आऽ	एमा	ऽतु	जग	तज्यो	ऽति

०		३		४	
ध-	मंग	सा-	सां,निध	धमं	गमं
ज्वाऽ	ऽला	ऽऽ	श,रऽ	णते	ऽरी

• साढ़े चार मात्रा के बाद से स्थायी की चौगुन

×	०	२	०	३
ध -	मं ग	-,सा-निध धमंगमं	ध-मंग -साधसा	साग-मं ध-मंग
आ ऽ	ए मा	ऽ,शऽरऽ णतेऽरी	आऽएमा ऽतुजग	तज्योऽति ज्वाऽऽला

४
सा-,सां-निध धमंगमं
ऽऽ,शऽरऽ णतेऽरी

• तीसरी मात्रा से स्थायी की तिगुन

×	०	२	०	३
ध -	सा,निध,ध मंगमं	ध-मं ग-सा	धसाग ग-मं	ध-मं गसा-
आ ऽ	श,रऽ,ण तेऽरी	आऽए माऽतु	जगत ज्योऽति	ज्वाऽऽ लाऽऽ

४
सां,निध,ध मंगमं
श,रऽ,ण तेऽरी

• दसवीं मात्रा से अन्तरा की दुगुन

०	३	४	×	०	२
ग -	मं ग-	मंध -ध	सांसां -ध	ध- ग-	सांगं -गं
जा ऽ	ल जाऽ	लपा ऽप्र	सन्न ऽभ	ईऽ रिऽ	द्विसि ऽद्वि
सां- निध	सां- ध-	मंग -सां	धध मंग	-मं धसा	गसध -नि
देऽ तभ	ईऽ ताऽ	नसे ऽन	शर णआ	ऽए देहु	मुरा ऽद
ध- मंग	सा- ग-	मंध -ध			
एऽ दाऽ	ताऽ जाऽ	लपा ऽप्र			

• साढ़े चार मात्रा के बाद से अन्तरा की चौगुन

×	०	२	०	३
ग -	मं ध	-,ग- मंध-ध	सांसां-ध ध-गं-	सांग-ग सां-निध
जा ऽ	ल पा	ऽ,जाऽ लपाऽप्र	सन्नऽभ ईऽरिऽ	द्विसिऽद्वि देऽतभ

४	×	०	२
सां-ध- मंध-सां	धधमंग -मंधमां	गंसां-नि ध-मंग	सा-ग- मंध-ध
ईऽताऽ नसेऽन	शरणआ ऽएदेहु	मुराऽद एऽदाऽ	ताऽजाऽ लपाऽप्र

सातवीं मात्रा से अन्तरा की तिगुन •

०	३	४	×	०
ग-मं ध-ध	सांगां- धध-	गं-मां गं-गं	सां-नि गगां-	ध-गं ध-म
जाऽल पाऽप्र	सन्नऽ भईऽ	रिऽद्वि सिऽद्वि	देऽत भईऽ	ताऽज गेऽज

२	०	३	४
धगमं ग-मं	धसांग सां-नि	ध-मं गसा-	ग-मं ध-ध
शरणा आऽहु	देहुमु ऽद ऽए	दाऽ ताऽ ऽजाऽ	जाऽल पाऽप्र

ख्याल गायकी –

फारसी भाषा मे ख्याल का अर्थ है विचार या कल्पना । राग के नियमो का पालन करते हुये एक ताल, त्रिताल, झूमरा ताल, आडाचारताल इत्यादि मे ख्याल गाया जाता है । ख्यालो के साहित्य मे , गीतो मे श्रृगार के दोनो पक्षो (सयोग और वियोग) का प्रयोग अधिक पाया जाता है। स्वर वैचित्र तथा चमत्कार पैदा करने के लिये ख्यालो मे तरह–तरह की ताने ली जाती है । ख्याल गायान मे ध्रुवपद जैसी गम्भीरता और भक्ति रस जैसी शुद्धता नही पायी जाती । ख्याल दो प्रकार के होते है एक जो विलम्बित लय मे गाये जाते हैं उन्हे बडे ख्याल कहते है[1] और जो द्रुत लय मे गाये जाते है उन्हे छोटा ख्याल कहते हैं ।[2] गायक जब ख्याल गाना प्रारम्भ करते है तो पहले विलम्बित लय मे बडा ख्याल गाते हैं जिसे प्रायः विलम्बित एक-ताल , तीन-ताल , झूमरा-ताल, आडाचार ताल इत्यादि मे गाते है फिर इसके बाद ही छोटा ख्याल मध्य या द्रुत लय मे प्रारम्भ करते है उसे तीन-ताल या द्रुत एक-ताल मे गाते हैं । छोटे, बडे ख्याल जब गायक एक स्थान पर, एक समय मे गाता है तो दोनों प्रायः किसी एक ही राग मे होते है किन्तु बोल या कविता छोटे–बडे ख्यालो की अलग–अलग होती है । ख्याल के विस्तार मे बढत, फिरत, बोल उपज , लयकारी, बोलतान, तान और सरगम के साथ लय-ताल का प्रयोग करते हुये प्रदर्शन मे श्रृगार और अदभुत रसो की अभिव्यक्ति होती है ।

टप्पा –

यह हिन्दी का शब्द है शब्द कोष मे टप्पा के बहुत से अर्थ मिलते है जैसे उछाल, कूद, फलाग , अन्तर, फर्क, और एक प्रकार का चलता गाना जो पंजाब में गाया जाता है ।[3] अन्तिम अर्थ सगीत के सदर्भ मे उचित प्रतीत होता है । टप्पा अधिकतर काफी, मिश्र काफी, मान्ड , झिझोटी,

---

1 इस शोध प्रबन्ध के पृष्ठ 151 पर उल्लिखित

2 इस शोध प्रबन्ध के पृष्ठ 152 पर उल्लिखित

3 इस शोध प्रबन्ध के पृष्ठ 153 पर उल्लिखित

राग विहागड़ा—छोटा ख्याल, एकताल

स्थाई—मन अटक्यो री मेरो साँवरी सूरत मे कैसे जिया लागे।
अन्तरा—जब से देखी वाकी छवि मोरी सुध गई 'रामरङ्ग' न लागे॥

स्थाई

ग	म।प	नि।सा	नि।ध	पध।(नि)	ध।प	प
म	न।अ	ट।क्यो	ऽ।ऽ	ऽऽ।ऽ	ऽ।मे	रो
३	४	×	०	२	०	
नि	–।निध	प।ग	म।प	मग।ग	–रे।सा	सा
सां	ऽ।वऽ	री।ऽ	मु।र	ऽऽ।ऽ	ऽऽ।त	मे
३	४	×	०	२	०	
सा	–।गरे	ग।म	प।गम	गम।पध	पध।निसां	निध
कै	ऽ।मेऽ	जि।या	ऽ।लाऽ	ऽऽ।ऽऽ	ऽऽ।ऽऽ	गेऽ
३	४	×	०	२	०	
पम	गम।प	नि।सा	नि।			
मऽ	नऽ।अ	ट।क्यो	ऽ।			
३	४	×				

अन्तरा

ग	म।प	नि।सा	सां।सा	गं।रे	सांनि।रेंसां	सारें
ज	ब।से	दे।ऽ	खी।वा	ऽ।ऽ	कीऽ।ऽऽ	छऽ
३	४	×	०	२	०	
नि	–।निसां	निध।प	प।प	पध।(नि)	ध।प	मग
वि	ऽ।ऽऽ	मोऽ।ऽ	री।सु	–ऽ।ऽ	ग।ई	ऽ
३	४	×	०	२	०	
प	ग।म	गरे।सा	सा।गम	गम।पध	पध।निसां	निध
रा	ऽ।म	रंऽ।ग	न।लाऽ	ऽऽ।ऽऽ	ऽऽ।ऽऽ	गेऽ
३	४	×	०	२	०	
पम	गम।प	नि।सां	।			
मऽ	नऽ।अ	ट।क्यो	।			
३	४	×				

१ गड्डी चलदी ए लीकां ते, अगे माही नित मिलदा हुण मिलदा तरीकां ते।
२ तन्दूरी ताई ओई ए, खसमां नूं खाण रोटियां चिट्ठी माइये दी आई ओई है।
३ चिट्टी चादर सूतर दी, माही मेरा ऐंज तुरदा जीव चाल कबूतर दी।
४. चलदी गड्डी वी खलो गई ए, जेड़ा सानूं नित मिलदा ओदी बदली वी हो गई ए।
५ कोठे ते का बोले, चिट्ठी मेरे माइये दी विच मेरा वी नां बोले।
६ गड्डी चलदी नूं लुक लावां, अज मेरे माही आणा सिर धो के कलिप लावां।

कई बार 'टप्पे' गाते समय आपस मे मुकाबला शुरू हो जाता है और घटो तक चलता रहता है। मुकाबले मे दो टोलियां बन जाती है। एक टोली प्रश्न करती है और दूसरी उसका उत्तर देती है। यदि 'टप्पे' गाते समय केवल औरते ही हों, तो औरतो के ही दो दल बन जाते है, अन्यथा (पुरुषों के भी होने पर) औरतो की पक्तियाँ औरते व पुरुषों की पक्तियाँ पुरुष गाते है। एक उदाहरण देखिए —

लड़की—सुण हीर पई कैंदी ए, जिदड़ी दी बाज़ी चन्ना ऐस वेले की लग जादी ए।
लड़का—सुण रांझा प्या कैंदा ए, रोशन रैंदी शमां परवाना जल जांदा ए।
लड़की—मिलने दी थां दस जा, जेड़ा सानूं लाया ए उस रोग दा नां दस जा।
लड़का—मिलने दी थां काई ना, जेड़ा तुहानूं रोग होया उस रोग दा नां कोई ना।
लड़की—पए बाण वटेंदे हो, ऐने तुसी नई सोणे जिडा मान करेंदे हो।
लड़का—पए बाण वटेंदे हो, जे असी नई सोणे क्यों मुड़-मुड़ वेंदे हो ?

यदि मौका आ जाए तो एक-दूसरे पर मीठे-मीठे कटाक्ष भी किए जाते है —

लड़की—तुसी भोले-भाले हो, कुज ते शरम करो धियां-पुतरां वाले हो।
लड़का—बागे विच पज नाखां, मां दें लाडलिए तैनूं लोकां विच की आखां।

लड़का—बाग विच फुल कोई न, गोरियां गलां दे उते कालीं जुल्फां दा मुल कोई न।
लड़की—बागे विच आया करो, जद असी सौं जाइये तुसी मक्खियां उडाया करो।
लड़का—बागे विच पज लड़ियां, असी पिछा नइओं छडणा भावें लग जाण हथकड़ियां।

कहरवा ताल

×				^				×				×			
						सा	रे	प	प	म	ग	म	–	ग	सा
						ग	ड्डी	च	ल	दी	ए	ला	ऽ	कां	ऽ
रग	–	–	–	–	–	सा	रे	प	प	म	ग	म	–	ग	सा
त,	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ग	ड्डी	च	ल	दी	ए	ली	ऽ	कां	ऽ
रग	–	–	–	रे	रे	रे	ग	सा	रे	सा	नि	धृ	–	ध	नि
तऽ	ऽ	ऽ	ऽ	अ	गे	मा	ही	नि	त	मि	ल	दा	ऽ	हु	ण
सा	रे	रे	रे	सारे	गरे	सा	नि़	सा	–	–	–	सा	रे	रे	ग
मि	ल	दा	त	रीऽ	ऽऽ	कां	ऽ	ते	ऽ	ऽ	ऽ	अ	गे	मा	ही
		धृ	नि	सा	रे	रे	रे	सारे	गरे	सा	नि़	सा	–	–	–
नित	मिलदा	हु	ण	मि	ल	दा	त	रीऽ	ऽऽ	कां	ऽ	ते	ऽ	ऽ	ऽ

मारवा , सिन्दूरा, भैरवी, खमाज इत्यादि रागो मे गाया जाता है । इसमे स्थाई ओर अन्तरा दो भाग होते है । टप्पा क्षुद्र प्रकृति की गायकी है। इसमे श्रृगार रस की प्रधानता होती है और पजाबी भाषा के शब्द ही इसमे अधिकतर पाये जाते है इसकी तानें दानेदार, बहुत तैयार लय मे गायी जाती है। टप्पा की प्रस्तुती अधिकतर द्रुत लय मे होती है।

ठुमरी –

ठुमरी, गायकी मे शब्द तो कम प्रयुक्त होते है किन्तु स्वर विस्तार की प्रक्रिया बहुत महत्व रखती है । ख्याल की तरह ठुमरी भी दो भागो मे बाँटी जा सकती है। विलम्बित ठुमरी (2) द्रुत ठुमरी । विलम्बित ठुमरी ख्याल के अनुरूप है और विलम्बित लय मे , जतताल और दीपचदी ताल मे प्राय गायी जाती है । इसके दो भाग होते है स्थायी और अन्तरा । स्थायी मे बोल, स्वरो के विभिन्न सयोग, शब्दो मे निहित भावनाओ तथा काव्यात्मक विचारो के अनेक शब्द चित्रो को प्रदर्शित करते है । शब्द चित्रो को प्रदर्शित करने के लिए छोटी–छोटी तानो तथा मुर्कियो आदि का सहारा लेकर ध्वनि के उतार–चढ़ाव से कभी पुकार , चीख, कभी कष्ट या खेद, कभी प्यार या चापलूसी , कभी फुस-फुसाहट या आह , कभी छेड – छाड या झुझलाहत प्रगट करते है। अन्तरे के विस्तार मे आडी–कुआडी , बोल–बाँट , एक आवर्तन की चालो आदि को जहाँ उचित हो सकता है स्थान दिया जाता है। अन्तरे की समाप्ति के तुरन्त बाद ही गायन और ताल वादन की लय दुगनी हो जाती है और स्थायी बोलों को द्रुत लय मे स्वर के विभिन्न उतार चढाव के साथ गाया जाता है ; और फिर अन्तरा कुछ तानो के साथ गाया जाता है । तबला वादक त्रिताल प्रारम्भ करके कहरवा पर आ जाता है। बीच–बीच मे विभिन्न प्रकार की लग्गी-लडी लगाने से उसकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती है । गायक भी लग्गी-लडी के साथ विभिन्न प्रकार के सुन्दर बोल बनाते हैं । ठुमरी केवल श्रृगार और करूण रस पर ही आधारित है। ठुमरी के भावनात्मक विषयो मे छेड–छाड या तकरार का बाहुल्य होता

राग खमाज–तीनताल

स्थाई– गरज गरज बरसत घन
नाही देखो आली।
बिन गोपाल बरखा ऋतु
आवत अब नाही ॥

अन्तरा—आली बालम बिदेस
बिरहन को अति कलेस।
उन बिन जिया निकसो जात
हौं सों निठुर श्याम आज आवत अब नाही ॥

स्थाई

प ध प – | ध नि सां – | रें नि ध प | ध – ग म
ग र ज ऽ | ग र ज ऽ | ब र स ऽ | त ऽ घ न
× | २ | ० | ३

प – ध – | म – – – | ग – – | ना – सा –
ना ऽ ऽ ऽ | ही ऽ ऽ | दे ऽ खो ऽ | आ ऽ ली ऽ
× | २ | ० | ३

सा सा – सा | ग – म – | ग म पध निम | नि सां – –
बि न ऽ गो | पा ऽ ल ऽ | ब र खाऽ ऽऽ | ऋ तु ऽ ऽ
× | २ | ० | ३

सां
प – नि – | सां सां नि सां | प नि सां रें | नि ध प –
आ ऽ व ऽ | ऽ त अ ब | ना ऽ ऽ ऽ | हीं ऽ ऽ ऽ
× | २ | ० | ३

अन्तरा

म – – नि | ध – नि – | नि सां – नि | सां – – सा
आ ऽ ऽ ली | ऽ ऽ बा ऽ | ल ऽ बि | दे ऽ ऽ स
× | २ | ० | ३

प प – नि | नि – सां – | नि सां – (सां) | नि ध प –
बि र ऽ ह | न ऽ को ऽ | अ ति ऽ क | ले ऽ स ऽ
× | २ | ० | ३

ग म – प | ध – न सां | नि ध प – | म ग न –
उ न ऽ बि | न ऽ जि | नि क सो ऽ | जा ऽ त ऽ
× | २ | ० | ३

सा – सा – | ग – म म | प – प – | नि – नि –
हौं ऽ सों ऽ | नि ऽ ठु र | श्या ऽ म ऽ | आ ऽ ज ऽ
× | २ | ० | ३

प – – नि | सां सां नि सां | नि – (सां) – | नि ध प ध
आ ऽ ऽ व | ऽ त अ ब | ना ऽ ऽ ऽ | हीं ऽ ऽ ऽ

राग खमाज—तीनताल

स्थाई—नैन बान मारत सजनी कैसी
लटक चलत चाल मद जोबन माती
अलि गुमान डारत कैसी।

अन्तरा—चंद्र बदन मृग नैनी मृदु बैनी
शोभा दरसत सजनी परसत रङ्गीली छबीली रङ्गीली
आज ललन पिया बार-बार नार-नार नई नोक
मुस्कान मधुर सुघर बान प्रान मारत सजनी कैसी॥

स्थाई

ग
सा सा ग | — ग ग — | म ग म प | प प — म
नैं ऽ न बा | ऽ न मा ऽ | र त स ज | नी कैं ऽ सी
× २ ० ३

म ग रे म | ग रे सा — | सा ग ग म | प ध (प) —
ल ट क च | ल त चा ऽ | ल म द जो | ब न मा ऽ
× २ ० ३

ग — ध प | सं नि ध प | ग म प ध | (म) — ग —
ती ऽ अ ल | गु मा ऽ न | डा ऽ र त | कैं ऽ सी ऽ
× २ ० ३

अन्तरा

म — नि ध | नि नि सां नि | सां — सां — | प प नि —
चं ऽ द्र ब | द न मृ ग | नैं ऽ नी ऽ | मृ दु बैं ऽ
× २ ० ३

प ध
सा — नि — | ध प म म | ग ग नि नि | ध प म म
शो ऽ भो ऽ | आ ऽ द र | स त स ज | नी ऽ प र
× २ ० ३

ग ग म ग | रे म ग रे | म ग रे सा | — सा सा सा
स त रं गी | ली छ बी ली | र सी ली आ | ऽ ज ल ल
× २ ० ३

ग म प — | ग — म प | — ध नि — | ध प — प
न पि या ऽ | बा ऽ र बा | ऽ र ना ऽ | र ना ऽ र
× २ ० ३

ग ग म म | प नि नि सा | नि नि प प | नि नि नि नि
न ई नो ऽ | क मु स का | ऽ न म धु | र सु घ र
× २ ० ३

सां — सां सां | सां सां ध नि | ध प म प | म ग — ग

राग खमाज—तीनताल

स्थाई—बरजोरी न करो मोसे कान्ह मोरा छांड़ दे अँचरवा ।
मैं तो नाहिं बोलूँगी तेहारे सङ्ग नहीं बोलूँ नंद के लँगरवा ।।

अन्तरा - सुन्दर श्याम मानत नाहीं नरम कलाई छांड़त नाहीं ।
निपट निडर लॅगर ढीट करत रार मोसे बीच डगरवा ।।

स्थाई

| – – सा सा
| ब र
२

ग ग म प | ऩि ध नि | सां –सां प प | ग – म (८)
जो री न क | रो मों ऽ से | का न्ह मो रा | छां ऽ ड़ दे
० ३ × २

– म ग ग | सा – नि नि | नि रे सा ऩि | ध प म प
ऽ अँ च र | वा ऽ मैं तो | ना हीं बो लूँ | गी ते हा रे
० ३ × २

म ग रे सा | रे म रे ग | रे म ग रे | सा – सा सा
सं ग ना हीं | बो लूँ नं द | के लं ग र | वा ऽ ब र
० ३ × २

अन्तरा

| – – म ग | म प – प
| सुँ द | र श्या ऽ म
× २

प नि नि सां | – सां प प | नि नि नि सां | सा नि सा ऩि
मा न त ना | ऽ हीं न र | म क ला ई | छां ड़ त ना
० ३ × २

ध प म ग | म म प प | नि नि नि सां | – सां प ध
ऽ हीं नि प | ट नि ड र | लं ग र ढी | ऽ ट क र
० ३ × २

प ऩि ध प | म प म – | ग म ग रे | सा – सा सा
त रा ऽ र | मो सो बी ऽ | च ड ग र | वा ऽ ब र

. ...संगीतोपयोगी तालों में कहरवा ताल का स्थान सर्वप्रथम है। इस ताल में आठ मात्राएँ भी मानते हैं। इसमें चार-चार मात्राओं के दो विभाग होते हैं और पहली मात्रा पर ताली तथा पाँचवी मात्रा पर खाली होती है। यह ताल भक्ति-संगीत के अतिरिक्त, गजल, गीत, ठुमरी, ... -संगीत आदि के लिए भी उपयोगी है।

• कहरवा का ठेका

×　　　　　　　　०
धा　गे　न　ति । न　क　धि　न ॥

• कहरवा के प्रकार

१ धा　तीं　धा　तीं । ता　तीं　धा　ती ॥
२ धि　ता　धि　ता । ति　ता　धि　ता ॥
३ धि　ऽ　त　के । ऽ　के　ना　गे ॥
४. धी　कडधि　नक　धिन् । ऽ　ता　धि　न ॥
५. धाति　ऽक्धी　नक　धिन । ताति　ऽक्ती　नक　तिन ॥
६ धिना　धागे　नति　नक । किना　तागे　नधि　नक ॥
७. धा　गेगे　नक　धिन् । ऽऽ　कडान्　धिन　गिन ॥
८ धा　तिट　धिन　ना । कडांऽ　तिट　धिन　ना ॥
९. धिन　कधि　नक　धिन । ऽऽ　कडाऽ　ऽऽ　कडाऽ ॥
१०. धा　ति　ना　किड । ता　ति　ना　धिन ॥
११. धी　ऽऽड़　धि　ता । ऽ　ता　धि　ता ॥
१२. धिधि　नधि　ऽधि　नक । किकि　नति　ऽति　नक ॥
१३. धि　तिट　धि　ना । कत्　तिट　धि　ना ॥
१४. धाना　ऽग्धी　नाना　किन । ताना　ऽक्धी　नाना　धिन ॥
१५. तऽक्किट　तकधि　नक　धिन । तऽक्किट　तकति　नक　तिन ॥

इस तरह इसके अनेक प्रकार बजाए जाते हैं। कहरवा के पश्चात् लोकप्रियता की दूसरी सीढ़ी पर दादरा आता है। यह छह मात्राओं का ताल है। इसमें तीन-तीन मात्राओं के दो खंड होते हैं। पहली मात्रा पर ताली तथा चौथी मात्रा पर खाली होती है। यह ताल बहुत ही लचकदार है, इसलिए इसकी लय पर श्रोता तन्मय हो झूमने लगते हैं तथा आनन्द-विभोर हो उठते हैं।

• दादरा का ठेका

×　　　　　　०
धा　धि　ना । धा　ति　ना ॥

• गजल (८ मात्राएँ)

×　　　　　　　　०
धाक　धिन　नन　गिन । धाक्　तिन　नन　किन ॥

• लावनी (८ मात्राएँ)

×　　　२　　　　　०　　　३
धिधि　नाधि । नाति　नागेतिरकिट । तिति　नाधि । नाति　नागेतिरकिट ॥

उपर्युक्त तीनों तालों का प्रयोग तथा विस्तार कहरवा ताल के समान ही होता है।

• अद्धा ताल (१६ मात्राएँ)

• दादरा के प्रकार

१ धा ऽ तिट । क्ताऽ धिन गिन ॥
२ धागे धिन् धा । धागे तिन् ता ॥
३. धाग तिट धागे । त्रक धिना गिन ॥
४ धड गधि नक । तड कधि नग ॥
५. धाती धाधा तीना । ताता धाधा तीना ॥
६ धावड धाधा तीना । ताकड धाधा तीना ॥
७ धाक् तिन किन । ताक् धिन गिन ॥
८. धागे धागे धागे । धागे तिट कत ॥
९ धा तिट तिट । वडान् धि ना ॥
१०. धागे नधा तिन । तागे नधा तिन ॥
११ धाति टना घिन । ताति टना घिन ॥
१२ धी नक धिन् । ती नक धिन् ॥
१३. धिनधिड नकतक धिडाऽन । तिनकिड़ नकतक धिडाऽन ॥
१४. धाऽनधा तिटधिन तिनागिन । ताऽनता तिटधिन तिनागिन ॥
१५. धात्रकधि किटधागे तिनाकिडनग ; तात्रकति किटधागे तिनाकिडनग ॥

दादरा के पश्चात् रूपक ताल का नम्बर आता है। इसमे सात मात्राएँ तथा ३-२-२ मात्राओ के तीन विभाग होते है। शास्त्रीय रूपानुसार इसके हर खड की पहली मात्रा पर ताली लगनी चाहिए, किन्तु पहली मात्रा पर सम के स्थान पर खाली दिखाने का चलन है। यह चचल प्रकृति का चित्ताकर्षक ताल है, जो लालित्यमय होने के कारण सर्वसाधारण को प्रिय लगता है।

* । पश्तो नामक एक अन्य ताल भी इसी ताल के अनुरूप है, जिसका प्रयोग गजल आदि में अधिकतर होता है।

• रूपक का ठेका

०			२		३	
ती	ती	ना ।	धी	ना ।	धी	ना ॥

• रूपक के प्रकार

१. ती ती ना । धागे त्रक । धी ना ॥
२. ति तिना तिट । धीधी नाना । धीधी नाना ॥
३. तीना ऽता तिरकिट । धीना ऽधा । धीना ऽधा ॥
४. तीऽ न्नता तिट । धीऽ न्नधा । तिट धिना ॥
५. तीक्ड तिन्ना तिरकिट । धात्रड धीना । धीवड़ धीना ॥

दीपचन्दी (चाँचर) ताल मे चौदह मात्राएं तथा ३-४, ३-४ मात्राओ। के चार विभाग होते है। इसमे पहली, चौथी और ग्यारहवी मात्राओ पर ताली तथा आठवी मात्रा पर खाली लगती है।

• दीपचन्दी का ठेका

× २ ० ३
धा धि ऽ। धा धा ति ऽ। ता ति ऽ। धा धा धि ऽ

• दीपचन्दी के प्रकार

१. धा धी ना। धा धा ती ना। ता ती ना। धा धा धी ना॥
२. धा तिर किट। धा धा तिर किट। ता तिर किट॥ धा धा तिर किट॥
३. धि न क। धि न गि न। धि न क। ति ऽ क्डा ऽ।
४. धा ति ट। धा तिर किट तक। ता ति ट। धा तिर किट तक॥
५ धि दिन किन। धि धि दिन किन। ति तिन किन। धि धि दिन किन।

झप ताल मे दस मात्राएँ तथा २-३, २-३ मात्राओ के चार खड होते है। इसमे पहली, तीसरी तथा आठवी मात्राओ पर ताली तथा छठी मात्रा पर खाली होती है।

• झप ताल का ठेका

× २ ० ३
धी ना। धी धी ना। ती ना। धी धी ना॥

• झप ताल के प्रकार

१. धि नाना। धि धि नाना। ति नाना। धि धि नाना॥
२ धिधि नाना। धिधि नाधि धिना। तिति नाना। धिधि नाधि धिना॥
३. घिना निट। घिना ऽधा निट। किना निट। घिना ऽधा निट॥
४. धाधा तिरकिट। धातिर किटधा तिरकिट। ताना तिरकिट। धातिर किटधा तिरकिट॥
५. धिनक तगिन। धिनक धिनक तगिन। तिनक तकिन। धिनक धिनक तगिन॥

उपर्युक्त तालों के अतिरिक्त निम्नांकित तालों का प्रयोग भी भक्ति-संगीत मे बड़ी खूबी के साथ होता है। इन तालो के केवल ठेके ही दिए जा रहे है।

• झूमाली (८ मात्राएँ)

× ०
धा गे न ति। न क धक धिन॥

है। यह छेड-छाड या तकरार उनके विशिष्ट शब्दो या वाक्य खण्डो के गाने मे पूर्ण रूप से प्रकट हो जाती है । वे तीव्र , तीव्रतर और तीव्रतम लय मे गायी जाती है। रति भाव , वेदना और उत्सुकता भाव को व्यक्त करने के लिये विलम्बित लय और विलम्बित ताल जैसे जत ताल आदि[1] की आवश्यकता होती है। आनन्द और चचलता जैसे भावो को व्यक्त करने के लिये द्रुत लय और तीन-ताल आदि का प्रयोग किया जाता है । विशिष्ट रूप से जिन रागो मे ठुमरी गायी जाती है वे राग है – भैरवी, तिलक बिहारी, तिलक-कामोद, काफी, देस, पीलू, खमाज, जोगिया, कालिगणा , तिलग, झिझौटी आदि। विलम्बित ठुमरी के लिये जत-ताल , दीपचदी-ताल, चाचर, सितारखानी, अद्धा और पजाबी आदि ताले है। द्रुत ठुमरी के लिये दादरा, सितारखानी, तीन-ताल और कहरवा-ताल ही प्रयुक्त होती है ।[2]

<u>तराना</u>–

यह ख्याल के प्रकार की एक गायकी है । इसमे गीत के बोल ऐसे होते है जिनका कोई अर्थ नही होता । तराना अधिकतर मध्य और द्रुत लय मे ही गाया जाता है इसमे लयकारी का चमत्कार दृष्टिगोचर होता है। कुछ तराने विलम्बित लय मे भी गाये जाते है और ख्यालनुमा कहलाते है यह राग , ताल वद्ध स्वर रचना है । तराने मे राग और लयकारी का महत्व अधिक होता है । यह प्रचलित किसी भी राग मे गाये जा सकते है । तराने मे प्रयुक्त ताले द्रुत एक-ताल एवं झपताल है । तराना गाते समय समगम, नाना प्रकार की लय मे लेने से , अपना अलग ही सौन्दर्य बिखेरती है । धीरे-धीरे लय बढाते हुये गायक जब अत्यन्त द्रुत लय पर पहुँच जाता है तो वह अपने मुख से ही सितार के झाले के समान विविध स्वर सगतियाँ लेकर एक ऐसे आनन्द रस में मग्न कर देता है कि श्रोताओ मे एक

---

1. इस शोध प्रबन्ध के तालो के चार्ट न0 1 पर उल्लिखित पृष्ठ सं 57-62
2. इस शोध प्रबन्ध के पृष्ठ स0 158-160 पर उल्लिखित।

तराना : अहीर भैरव

तदानी तदानी दानी तार्दानी तननन नतन तार्दानी त अतनन ।
ओदेतन तनन दीम् तन तनन त दानि तना तना तना तना
धा धा किड़ नग धा धा धा किड़ नग धा धा धा किड़
नग धा तिन्ना अनतन ॥

• स्थायी   तीनताल

०				३				×				२			
म	ग	रे	ग	रे	सा	ध़	नि	ग रे	-		ग	-	म	प	ग
त	दा	नि	त	दा	नि	दा	नि	ना	ऽ	ऽ	र्दी	ऽ	नि	त	न
म	प	म	ग	प	ग	-	(म)	(रे)	-	ग	(म)	रे	रे	नि	सा
त	न	न	न	न	ना	ऽ	ऽ	र्दी	ऽ	नि	त	अ	त	त	न

• अन्तरा

०				३				×				२			
								ग	म	प	ध	-	नि	ध	नि
								ओ	दे	त	न	ऽ	त	न	न
म	ध	नि	सां	-	रें	सां	सां	नि	नि	सां	नि	ध	प	-	ध
दीम्	ऽ	न	न	ऽ	न	न	न	न	दा	ऽ	नि	त	ना	ऽ	न
म	-	प	ग	-	(म)	रे	-	गं	गं	रें	सां	रे	-	सां	सां
ना	ऽ	न	ना	ऽ	त	ना	ऽ	धा	धा	किड़	नग	धा	ऽ	धा	धा
नि	-	नि	-	म	ध	प	म	प	ग	-	(म)	रे	रे	नि	सा
किड़	नग	धा	ऽ	धा	धा	किड़	नग	धा	ति	ऽ	न्ना	अ	न	त	न

नयी चेतना का सचार हो जाता है । श्रोतागण अपनी व अपने आस पास की सुधबुध खो बैठते है। तराने मे कुछ ऐसी विद्वतापूर्ण और कलात्मक विशेषताये विद्यमान है, इसकी बदिश मे कुछ ऐसा आकर्षण और हृदय सम्मोहन है तथा ऐसी शोखी व चुलबुले पन से हृदय मे कुछ ऐसी गुदगुदी और उमग सी पेदा होती है जिसका केवल अनुभव ही किया जा सकता है । तराने की स्थायी मे ता ना दा रे , तदारे, ओदानी, दीम , तनोम आदि शब्दो का प्रयोग किया जाता है। तानो का प्रयोग भी स्थायी और अन्तरा मे किया जाता है। तराने मे राग, ताल और लय का ही आनन्द है, शब्दो की ओर कोई ध्यान नही दिया जाता। तराने के गायन से अदभुत रस की अभिव्यक्ति होती है ।

छत्तीस गढ़ के लोकगीतो मे तराना शब्द के उच्चारण प्रचलित है। डडा गीत और सुआ गीत छत्तीसगढ के बहुत लोकप्रिय गीत है। सुआगीत को स्त्रियाँ ओर डडा गीत को प्रायः पुरूष गाते है । इन गीतो मे गीत के शब्द गाने से पूर्व धुन मे तानारी, नानारी, नानारी, ऊँ ऊँ या हूँ हूँ इस प्रकार के निरर्थक शब्द गाने से पूर्व सस्वर व सलय गाये जाते है । जब धुनो के माध्यम से माधुर्यपूर्ण वातावरण बन जाता है इसके पश्चात गीत के बोलो को गाना प्रारम्भ किया जाता है। उक्त गीतो को दीपावली व होली के मौसम मे गोड जाति के लोग गाते है। गीत से पहले ता, ना, री इन शब्दो के उच्चारण से अलाप करने की शास्त्रीय परिपाटी को तराना की छन्दोबद्ध रचना को, इन लोक गीतो का आधार माना जाता है ।

<u>तिरवट</u> –

यह तराने की ही तरह गाया जाता है किन्तु तराने से तिरवट की गायकी कुछ कठिन है। तिरवट मे मृदग के बोल अधिक होते है।[1] इसे सभी रागों मे गाया जा सकता है । वर्तमान समय मे तिरवट गायकी मे भी राग , लय और ताल ही आनन्दित करता है तथा चमत्कारिक अदभुद रस की अभिव्यक्ति करता है । तिरवट की स्थायी मे तराने के बोल और अन्तरे

---

1. इसका उदाहरण शोध प्रबन्ध के पृष्ठ पर 164 पर दृष्टव्य है।

त्रिवट : राग ललित

धादिता धाताना धातिर किटतक तातिरकिटतक, धी धाधी
धाग तूना धिड़नग तिरकिट तकता ।
धिरकिट धिरकिट धिड़ान धिड़नग धादिता दिता,
घेघेतिरकिट नकिधरकिटतक तकिधड़ा धा धादिता,
कत्तटि कत्तिट वड़ा, वड़ा धातीना ॥

तीनताल

● स्थायी

०	३	×	२
र॒ मं - ग	र॒ सा नि़ रे॒	म मम मन मम	मं मंमं मम गग
धा दि ऽ ता	ऽ धा ती ना	धा तिर किट तक	ता तिर किट तक
ग - मं ध॒	- मं - ध	सां सा निनि रे॒रे॒	निनि धध मंमं म
धी ऽ धा धी	ऽ धा ऽ ग	तू ना धिड़ नग	तिर किट तक ता

● अन्तरा

०	३	×	२
गग गग गग मंमं	मंमं -ध॒ ध॒ध॒ ध॒ध॒	सां सां - सां	- सां - सां
धिर किट धिर किट	धिड़ा ऽन घिड़ नग	धा दि ऽ ता	ऽ दि ऽ ता
नि रें॒ गगं रें॒रें॒	निनि रें॒रें॒ सांसां सांसां	नि- रेंरें - नि	- ध॒ मं म
ध घे तिर किट	नक धिर किट तक	तक धिड़ा ऽ धा	ऽ धा दि ता
मं - ध॒ ध॒	सां - सां सां	ध॒ - - ध॒	- मं म ग
क ऽ त्ति ट	क ऽ त्ति ट	वड़ा ऽ ऽ वड़ा	ऽ धा ती ना

मे तराने के बोल की जगह तबला या पखावज के परन, टुकडे इत्यादि के बोल होते हैं जिसके द्वारा गायक और वादक के बीच कलात्मक भिडन्त होती है तथा जिसमे लय–ताल के दॉव पेंच और उखाड–पछाड की तानो का प्रदर्शन होता है ।

होरी–धमार –[1]

होरी नाम के गीत को धमार ताल मे गाते है तो उसे धमार कहा जाता है । धमार गायन मे प्राय. व्रज की होली का वर्णन होता है । धमार मे दुगुन, चौगुन, बोलतान, गमक इत्यादि का प्रयोग होता है। धमार के गायक, स्वर, ताल और राग के अच्छे मर्मज्ञ होते हैं। धमार मे प्राय. ताने नही ली जाती।

कजली –[2]

कजली गीतो मे वर्षा ऋतु का वर्णन , विरह वर्णन, राधा कृष्ण की लीलाओ का वर्णन अधिकतर मिलता है यह श्रृगार रस प्रधान लय ताल से युक्त गायन होता है ।

लावनी –[3]

चग बजा कर कई आदमी मिलकर लावनी गाते है। इसमे श्रृगार और भक्ति रस के गीत होते हैं और कहरवा ताल का प्रयोग होता है।

भजन –[4]

जिस प्रकार उर्दू भाषा मे भाषा के शब्दो से गजले तैयार होती है उसी प्रकार हिन्दी शब्दावली से भजन और गीतो की रचना होती है । ईश्वर स्तुति या भगवान की लीला का वर्णन भजनो मे किया जाता है। भजन को किसी एक राग मे बॉधकर भी गाते है और ऐसे भी भजन है जो किसी विशेष राग मे न होकर मिश्रित राग स्वरो द्वारा तैयार होते है । भजन अधिकतर कहरवा, दादरा, धुमाली, रूपक एव तीन ताल मे तालो के विभिन्न प्रकारो और छन्द लय गति मे चमत्कारित परिवर्तनो के साथ गाये जाते हैं।

---

1 इस शोध प्रबन्ध के पृष्ठ स0 166. . पर उल्लिखित है ।

2 इस शोध प्रबन्ध के पृष्ठ स0 210 पर उल्लिखित है।

3. इस शोध प्रबन्ध के पृष्ठ स0 167 पर उल्लिखित है

4 इस शोध प्रबन्ध के पृष्ठ स0 168 पर उल्लिखित है।

धमार—राग मालकोश

सखि ! इक धूम मची ब्रजभूम ।
होरी खेले मिल भुक-भूम ॥
श्रीब्रजचन्द्र राधा नाचे ।
नूपुर बजत छननन-छूम ॥

ताल : धमार

स्थायी •

×					२		०			३			
										म		नि	
										ग	म	ध	नि
										स	खि	इ	क
			नि		ध		म			सा		नि	
सां	-	सां	ध	नि	म	ध	ग	म	सा	नि	सा	ध	नि
धू	ऽ	म	म	ची	ब्र	ज	भू	ऽ	म	हो	ऽ	री	ऽ
	म		नि		ध		म						
गा	ग	म	ध	नि	म	ध	ग	म	सा				
खे	ऽ	ले	मि	ल	भु	क	भू	ऽ	म				

अन्तरा •

×					२		०			३			
												नि	
										ध	म	ध	नि
										श्री	ऽ	ब्र	ज
गा			मं				मं			गा		नि	
नि	सां	सां	ग	-	मं	-	ग	मं	सां	नि	सां	ध	नि
चं	ऽ	द्र	रा	ऽ	धा	ऽ	ना	ऽ	चे	नू	ऽ	पु	र
			नि		ध		म						
गां	गं	सां	ध	नि	म	ध	ग	म	सा				
ब	ज	त	छ	न	न	न	छू	ऽ	म				

लावनी

सखी, कैसी करूँ मैं हाय ! न कछु बस मेरो। बिन देखे साँवरो, चन्द्र दृगन मे अँधेरो।।
सखी, ऐसो सुन्दर नाहिं, मैं सब जग हेरो। वाकी जो लिखै तसवीर, सो कौन चितेरो।।
सखी, कठिन छैल को विरह आन मोहे घेरो। सगरी निसि तारे गिनतहिं होत सवेरो।।
सखी, जो तू मिलावै आज वो रूप उजेरो। जो लों जीवोंगी, गुन न भूलोंगी तेरो।।

कहरवा ताल

×				°				×				˘			
														नि	नि
														स	खी
नि	-	नि	नि	नि	-	नि	-	सां	-	सां	सां	सां	सां	सां	सां
कैं	ऽ	सी	क	रूँ	ऽ	मैं	ऽ	हा	ऽ	य	न	क	छु	ब	स
नि	-	ध	-	प	प	प	म	प	नि	ध	प	-	प	धु	प
मे	ऽ	रो	ऽ	ऽ	ऽ,	बि	न	दे	ऽ	खे	सां	ऽ	व	रो	ऽ
ग	गु	रे	सा	रे	गु	म	गु	रे	-	सा	-	-	-		
च	ऽ	न्द्र	दृ	ग	न	मे	अं	धे	ऽ	रो	ऽ	ऽ	ऽ		
														सा	सा
														स	खी
रे	ग	ग	-	म	-	ग	म	म	प	ध	प	प	ध	नि	सां
ऐ	ऽ	सो	ऽ	सुं	ऽ	द	र	ना	ऽ	हिं	मैं	स	ब	ज	ग
नि	ध	प	-	-	-										
हे	ऽ	रो	ऽ	ऽ	ऽ										

(शेष पंक्तियाँ इसी प्रकार गाई जाएँगी।)

दो स्वर-रचनाएँ |

१. पद

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई !
जाके सिर मोर-मुकट, मेरो पति सोई ।
तात-मात-भ्रात-बन्धु, अपनो न कोई ।।
छाँडि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई ।
संतन ढिग बैठि-बैठि, लोक-लाज खोई ।।
चुनरी के किये टूक, ओढ लीन्ही लोई ।
मोती मूँगे उतार, वनमाला पोई ।।
अँसुवन जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई ।
अब तो बेल फैल गई, आणँद-फल होई ।।
दूध की मथनियाँ बडे प्रेम से बिलोई ।
माखन जब काढि लियो, छाछ पिये कोई ।।
भगत देखि राजी हुई, जगत देखि रोई ।
दासी 'मीराँ' लाल गिरधर, तारो अब मोही ।।

[ ] मीराँबाई

• स्थायी

मधुवन्ती राग / दादरा ताल

×		०		×		०		
प	मं	ग । मं	प	प । ग	मं	ग । रे	गा	मा
मे	ऽ	रे । तो	गि	र । ध	र	गो । पा	ऽ	ल
मं	ग	मं । प	मं	प । सा	नि	ध । प	मं	प
दू	ऽ	स । रो	ऽ	न । को	ऽ	ई । ऽ	ऽ	ऽ

• अंतरा

×								
प	मं	ग मं	प	प । नि	सां	सा । सा	सा	सा
जा	ऽ	के । ऽ	सि	र । मो	ऽ	र । मु	क	ट
सां	गं	रें । सा	सा	सां । नि	सां	निध । प	मं	प
मे	ऽ	रो । ऽ	प	ति । सो	ऽ	ईऽ । ऽ	ऽ	ऽ

(शेष अंतरे इसी प्रकार गाए जाएँगे ।)

गीत –

[illegible]
[illegible]
सके उन्हे गीत कहते है । इसमे भाव की प्रधानता रहती है । गीतो मे श्रृगार और करूण रस अधिक पाया जाता है । गीतो मे किसी प्रकार का स्वर विस्तार या तानो का प्रयोग नही होता ।

दादरा –

दादरा ताल एक प्रकार की ताल का नाम है किन्तु एक विशेष गायकी को भी दादरा कहते है। इसकी चलन गजल से कुछ मिलती जुलती है। मध्य तथा द्रुत लय मे दादरा अत्यन्त रोचक होता है इसमे प्राय श्रृगार रस के गीत होते है ।

चैती –

होली के बाद जब चैत का महीना आता हे तब चैती का गायन प्रारम्भ होता है इसके गीतो मे भगवान राम चन्द्र की लीलाओ का ताल बद्ध भक्ति रस से ओत प्रोत वर्णन मिलता है।

गजल –

अधिकतर उर्दू या फारसी भाषा मे गजले गायी जाती है । इसके गीतो मे प्राय. आशिक – माशूक का वर्णन अधिकर पाया जाता है इसलिये यह श्रृगार रस प्रधान गायकी है । गजल अधिकतर रूपक, पश्तो, दीपचदी, दादरा, कहरवा आदि तालो मे गायी जाती है । वे ही गायक गजल गाने मे सफल होते है । जिन्हे उर्दू, हिन्दी का अच्छा ज्ञान होता है और जिनका शब्दोच्चारण ठीक होता है । तभी वह पूर्ण रूप से रसाभिव्यक्ति करने मे सफल होते हैं ।

---

1 इस शोध प्रबन्ध के पृष्ठ स0 170 पर प्रस्तुत है।

गीत- ताल कहरवा

बजारे है हम बजारे ।

नाचे गाये हम झूमे गाये ।

घूम–घूम कर हम नाचे गाये।।

रहते नही एक जगह पे हम।

घुमते फिरते रहते है हम ।

आओ–आओ मिल कर गाओ ।।

स्थाई

×				2				×				2			
स	रे	रे	ग	रे	–	स	स	म	–	स	–	स	–	–	–
बं	जा	ऽ	रे	हैं	ऽ	ह	म	बं	ऽ	जा	ऽ	रे	ऽ	ऽ	ऽ
स	रे	–	प	प	–	प	प	म	–	प	–	म	–	ग	–
ना	चें	ऽ	गा	यें	ऽ	ह	म	झू	ऽ	मे	ऽ	गा	ऽ	ये	ऽ
ग	–	ग	–	ग	ग	ग	ग	ग	म	म	प	म	–	ग	–
घूम	ऽ	घूम	ऽ	क	र	ह	म	ना	ऽ	चे	ऽ	गा	ऽ	ये	ऽ

अंतरा

×				2				×				2			
म	प	–	सं	सं	–	सं	सं	नी	सं	–	नी	ध	–	–	–
रह	ते	ऽ	न	हीं	ऽ	ए	क	ज	गह	ऽ	पे	हम	ऽ	ऽ	ऽ
ध	ध	ध	–	ध	ध	ध	–	नी	सं	–	नी	ध	–	–	–
घू	म	ते	ऽ	फि	र	ते	ऽ	रह	ते	ऽ	हैं	हम	ऽ	ऽ	ऽ
प	ध	प	म	–	–	–	–	प	ध	प	म	–	–	–	–
आ	ओ	आ	ओ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	मिल	कर	गा	ओ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

<u>कव्वाली</u> –

मुस्लिम समाज की विशेष गायकी कव्वाली है इसमे अधिकतर फारसी व उर्दू भाषा का प्रयोग होता है। स्थाई अन्तरा के बीच–बीच मे शेर भी होते है । इसके गाने वाले कव्वाल कहलाते है । किसी विशेष अवसर पर रात–रात भर कव्वालियाँ होती हैं । कव्वाली के साथ ढोलक बजती हुयी प्राय. देखी जाती है । साथ–साथ हाथो से तालियाँ भी बजायी जाती हैं।इनमे रूपक, पश्तो तथा कव्वाली तालो का प्रयोग उद्भुत रस की उत्पत्ति करने मे सफल होता है ।

<u>तबले और पखावज वादन मे लय, ताल और रस</u> –

सगीत मे लय , ताल और रस का सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिये तबला वादन मे कलाकार, गायक, वादक और नर्तक के साथ सगति करते समय विभिन्न विधाओ के अनुसार ताल की लयो , लयकारियो और विभिन्न बोलो के सन्निवेश के द्वारा लय वैचित्र और छन्दात्मक परिवर्तन के माध्यम से अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करता है और साथ श्रोताओ को विभिन्न रसो से अभिभूत करता है । नाट्य कालीन ध्रुवाओ मे मृदग और पुष्कर जैसे वाद्यो का प्रसग के अनुकूल लयो मे वादन और सगति रसाभिव्यक्ति का सबल माध्यम माना गया है । रत्नाकर कालीन प्रबन्ध गायकी मे तालो की लय और जातियो का प्रयोग प्रबन्ध विशेष के अनुसार किया गया और रस की अभिव्यक्ति का उल्लेख भी किया गया है । ध्रुवपद धमार अग की गायकी मे पखावज और तबला वादन मे लयकारी का नियमबद्ध प्रयोग गायकी की प्रकृति के अनुसार होता है जिससे तदनुरूप रसाभिव्यक्ति सभव होती है। ख्याल गायकी के साथ सगत करते समय तबला वादक गायकी के अनुरूप लय, ताल का प्रयोग करते हुये मुलायम बोलों से युक्त छोटी–छोटी तिहाई बजाकर सम से मिलते हुये श्रृगार रस की अभिव्यक्ति मे अपनी अहम भूमिका अदा करते हैं इसी प्रकार ठुमरी मे ताल को विलम्बित लय मे बजाते हुए अन्तरे के विस्तार में आड़ी कुआडी , बोल-बाँट आदि के द्वारा प्रस्तुतिकरण को प्रभावपूर्ण बनाया जाता है । अन्तरे की समाप्ति के बाद गायन और

ताल वादन की लय दुगनी हो जाती है तबला वादक त्रिताल प्रारम्भ करके कहरवा पर आ जाते है और बीच–बीच मे लग्गी लडी का प्रयोग श्रृगार रस की चरम अभिव्यक्ति करते हैं । लय द्रुत, अतिद्रुत, और अति–अति द्रुत हो जाती है जिससे छेड–छाड तकरार आदि भावो की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से होती है । रति भाव, वेदना और उत्सुकता के भाव व्यक्त करने के [illegible] भावो को व्यक्त करने के लिये द्रुत लय वाले तालो का प्रयोग किया जाता है। तराना अधिकतर द्रुत लय मे गाया जाता है जब गायक तराने मे अपनी कला बाजियाँ दिखाता है तो एक कुशल तबला वादक उसकी हरकतों को तबले पर बोलो के माध्यम से निकालकर अपनी कला कुशलता का परिचय देता है । इसी तरह गायक तथा तबला वादक दोनो ताल सागर की लहरो मे बहते रहते है उनके इस प्रस्तुतीकरण से श्रोतागण अद्‌भुत रस का आनन्द (अनुभव) करते हैं । अधिकतर तराने तीन-ताल मे ही गाये जाते है । तीन-ताल के ठेके के प्रकार का उदाहरण दृष्टव्य है ।[1] ठेके के प्रकारो के बीच–बीच मे सुन्दर रेलो का प्रयोग और रेलो के मध्य तिहाई युक्त टुकडो का प्रयोग अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति मे अभूतपूर्व वृद्धि करता है । गायक तराने के बोलो को विभिन्न प्रकार से उलट–पलट कर कहते है । इससे उस समय तबला वादक को मुँह तोड जवाब देकर अपनी कला का प्रदर्शन करना पडता है । तराने मे प्रयुक्त होने वाले बोल जो उलट–पलट कर गायक प्राय. गाते है और उनके साथ लडन्त – भिडन्त की सगति तबला वादक किन बोलो के द्वारा करते है इसका उदाहरण उल्लिखित है[2] इसी प्रकार तबले और पखावज वादन मे तराना ओर तिरवट की संगति के लिये तीन-ताल के कुछ प्रकारो तथा तिस्त्र चतुस्त्र जाति की तिहाईयो का उदाहरण उल्लिखित है जिनका प्रयोग मध्य लय तथा द्रुत लय मे किया जाता है ।[3]

---

1 इस शोध प्रबन्ध के पृष्ठ स0 173-176 पर उल्लिखित है।

2 इस शोध प्रबन्ध के पृष्ठ स0 176 पर उल्लिखित है।

3. इस शोध प्रबन्ध के पृष्ठ स0 177-179 पर उल्लिखित है।

● ठेका द्रुत तीनताल

×				२				०				३			
ना	धि	धि	ना	ना	धि	धि	ना	ना	ति	ति	ना	ना	धि	धि	ना

● प्रकार

धि धि ना ना । धि धि ना ना । ति ति ना ना । धि धि ना ना
धि धि ना धि । धि ना धि ना । ति ति ना धि । धि ना धि ना
धि ना धि ना । धि धि ना ना । ति ना ति ना । धि धि ना ना
धि धि धि ना । धि धि धि ना । ति ति ति ना । धि धि धि ना
धि ना धि धि । धि ना धि धि । ति ना ति ति । धि ना धि धि
त्रक धि धि ना । त्रक धि धि ना । त्रक ति ति ना । त्रक धि धि ना
त्रक धि ना त्रक । धि ना धि ना । त्रक ति ना त्रक । धि ना धि ना
त्रक धि त्रक धि । त्रक धि धि ना । त्रक ति त्रक ति । त्रक धि धि ना

इस तरह और भी प्रकार बन सकते है। चूँकि निरन्तर ठेके के प्रकार ही बजाते रहना ठीक नहीं, अतः बीच-बीच मे कुछ सुन्दर-सुन्दर रेले भी बजाते रहना चाहिए। कुछ रेले नीचे दिए जा रहे हैं :—

● एक आवृत्ति के रेले

× २ ० ३
धाऽ तिर किट धाऽ । तिर किट दिन गिन । ताऽ तिर किट धाऽ । तिर किट धिन गिन
धाऽ तिर किट दिन । गिन धाऽ तिर किट । ताऽ तिर किट दिन । गिन धाऽ तिर किट
दिन गिन धाऽ तिर । किट धाऽ तिर किट । तिन किन ताऽ तिर । किट धाऽ तिर किट
धाऽ तिर किट धाऽ । धिड़ नग तिर किट । ताऽ तिर किट धाऽ । धिड़ नग तिर किट
धिड़ नग धाऽ तिर । किट धाऽ तिर किट । किड़ नग ताऽ तिर । किट धाऽ तिर किट
धाऽ तिर किट धाऽ । तीऽ ढाऽ तिर किट । ताऽ तिर किट धाऽ । तीऽ ढाऽ तिर किट
धाऽ तिर किट धाऽ । गिऽ नऽ तीऽ नाऽ । ताऽ तिर किट धाऽ । गिऽ नऽ तीऽ नाऽ
धीऽ नाऽ धाऽ तिर । किट धाऽ गिऽ नऽ । तीऽ नाऽ ताऽ तिर । किट धाऽ गिऽ नऽ
धीऽ नाऽ ऽऽ धाऽ । तिऽ टऽ धिऽ नऽ । तीऽ नाऽ ऽऽ धाऽ । तिऽ टऽ घिऽ नऽ
धिड़ नग तिट तिट । धिड़ नग तीऽ नाऽ । किड़ नग तिट तिट । धिड़ नग तीऽ नाऽ
धिर धिर धिड़ नग । तीऽ नाऽ किड़ नग । तिर तिर किड़ नग । तीऽ नाऽ किड़ नग
धाऽ धिड़ नग धाऽ । धिड़ नग धिड़ नग । ताऽ किड़ नग धाऽ । धिड़ नग धिड़ नग
धीक धिन गिन धीक । धिन गिन धिन गिन । तीक तिन किन धीक । धिन गिन धिन गिन

• दो आवृत्ति के रेले

×　　　　२　　　　०　　　　३

धाऽ तिर घिड़ नग । धाऽ तिर घिड़ नग । धाऽ तिर घिड़ नग । तीऽ नाऽ किड़ नग
ताऽ तिर किड़ नग । ताऽ तिर किड़ नग । धाऽ तिर घिड़ नग । तीऽ नाऽ किड़ नग
धाऽ तिर घिड़ नग । घिर घिर घिड़ नग । घिर घिर घिड़ नग । तीऽ नाऽ किड़ नग
ताऽ तिर किड़ नग । तिर तिर किड़ नग । घिर घिर किड़ नग । तीऽ नाऽ किड़ नग
धाऽ ऽऽ गऽ घिर । घिर किट धाऽ ऽऽ । धाऽ गेऽ तीऽ नाऽ । क्ड़ऽ धाऽ तिर किट
ताऽ ऽऽ गऽ घिर । घिर किट धाऽ ऽऽ । धाऽ गेऽ तीऽ नाऽ । क्ड़ऽ धाऽ तिर किट
धाऽ तिर घिड़ नग । तिग नग धाऽ तिर । घिड़ नग तिग नग । धाऽ तिर घिड़ नग
ताऽ तिर किड़ नग । तिग नग धाऽ तिर । घिड़ नग तिग नग । धाऽ तिर घिड़ नग
धाऽ गेऽ तीऽ नाऽ । किट तक ताऽ तिर । किट तक तिर किट । तक ताऽ तिर किट
ताऽ गेऽ तीऽ नाऽ । किट तक ताऽ तिर । किट तक तिर किट । तक ताऽ तिर किट
घिर घिर घिड़ नग । घिर घिर कत् ऽऽ । घिर घिर घिड़ नग । तूऽ नाऽ किड़ नग
तिर तिर किड़ नग । तिर तिर कत् ऽऽ । घिर घिर घिड़ नग । तूऽ नाऽ किड़ नग
घिर घिर कत् ऽऽ । घिर घिर कत् ऽऽ । घिर घिर किट तक । ताऽ तिर किट तक
तिर तिर कत् ऽऽ । तिर तिर कत् ऽऽ । घिर घिर किट तक । ताऽ तिर किट तक
धाऽ ऽऽ घिड़ नग् । नग् ऽऽ घिड़ नग् । घिर घिर घिड़ नग । तीऽ नाऽ किड़ नग
ताऽ ऽऽ किड़ नग् । नग् ऽऽ किड़ नग् । घिर घिर घिड़ नग । तीऽ नाऽ किड़ नग
धाऽ तिर किट धाऽ । तिर किट धाऽ धाऽ । तिर किट धाऽ तिर । किट धाऽ तिर किट
ताऽ तिर किट ताऽ । तिर किट ताऽ ताऽ । तिर किट धाऽ तिर । किट धाऽ तिर किट
धाऽ तिर किट तक । तेत् तिर किट तक । दीऽ तिर किट तक । नाऽ तिर किट तक
ताऽ तिर किट तक । तेत् तिर किट तक । दीऽ तिर किट तक । नाऽ तिर किट तक

उपर्युक्त ठेके के प्रकार तथा रेला के बीच कभी-कभी अच्छे-अच्छे तीये-युक्त टुकड़े भी बजाते रहना चाहिए। इससे श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। आगे तीनताल के कुछ टुकड़े दिए जा रहे हैं, जिनका प्रयोग द्रुत लय में किया जा सकता है।

● टुकड़े (द्रुत लय)

	×				२				
(१)	धाऽ	तिट	तिट	घेघे	तिट	घेघे	दीऽ	दीऽ	
	०				३				×
	क्धा	ऽन	धाऽ	क्धा	ऽन	धाऽ	क्धा	ऽन	धा

(२) घेदि ऽन्न किटतक ताऽतिर । किटतक तिरकिट तकताऽ तिरकिट । धाऽ तिरकिट तकताऽ तिरकिट । धाऽ तिरकिट तकताऽ तिरकिट । धा (सम)

(३) कता ऽधि नाऽ धिरधिर । कत् तिरकिट तकधिर धिरकिट । धाऽ तिरकिट तकधिर धिरकिट । धाऽ तिरकिट तकधिर धिरकिट । धा (सम)

(४) धाती ऽधा तित् धाती । धाऽतिर किटतक ताऽतिर किटतक । तिरकिट तकताऽ तिरकिट धाती । धाऽ धाती धाऽ धाती । धा (सम)

(५) धिरधिर किटतक ताऽतिर किटतक । ताऽतिर किटतक ताऽतिर किटतक । तऽ कड़ाऽन् धाऽ तऽ । कड़ाऽन् धाऽ तऽ कड़ाऽन् । धा (सम)

(६) किटधाऽ धाऽकिट धाऽकता ऽन्नधाऽ । तीऽढाऽ घुमकिट कतिटक ताऽ,तिरकिट । धेंऽत्धें ऽत्धेंऽ त्ताऽ,तिरकिट तेऽत्ते । ऽत्तेऽ त्ताऽ,तिरकिट धेंऽत्धें ऽत्धेंऽ । ढा (सम)

(७) धाऽक्धा ऽन्नधाऽ गऽद्दीऽ धिड़नग । तकिटधा ऽनधाऽ दीऽघेघे दीऽ,किड़नग । तिरकिटतकधिर किटतक,धाती धाऽ,किड़नग तिरकिटतकधिर । किटतक,धाती धाऽ,किड़नग तिरकिटतकधिर किटतकधाती । धा (सम)

(८) क्धिऽन्न ऽधानद धागेतिट तागेतिट । क्धेंऽढ किटधाऽ केत्रिकधि किटधाती । नाकतधा तीनाकतं धाऽधाती नाकतधा । तीनाकत धाऽधाती नाकतधा तीनाकत । धा (सम)

(९) धिऽतिरकिटतक् ताकट,धाऽ धिऽतिरकिटतक् तकिट,धाऽ । तकिट,धाऽ तकिट,धाऽ धिऽतिरकिटतक् तकिट,धाऽ । ऽऽ,धिऽतिर किटतक,तकिट धाऽ ऽऽ,धिऽतिर । किटतक,ताकट धाऽ ऽऽ,धिऽतिर किटतक,तकिट । धा (सम)

(१०) धिऽन्न धगिन धाऽऽ धगिन। धानृक धगिन धागेदि नाकिन। तान्धि डाऽन् धाऽऽ तक्धि। डाऽन् धाऽऽ तक्धि डाऽन्। धा (सम)

कभी-कभी गायक तराने के बोलो को विभिन्न प्रकार से उलट-पलटकर गाते हैं, जिसमे लय-वैचित्र्य बढ़ जाता है। उस समय तबला-वादक को गायक की हर बात का मुँहतोड़ जवाब देकर अपनी प्रतिष्ठा रखनी पड़ती है। नीचे तरानो मे प्रयुक्त होने वाले वे बोल दिए जा रहे है, जिन्हे गायक, उलट-पलट करता है। साथ-ही-साथ तबले के भी बोल कोष्ठक के अन्दर दिए जा रहे हैं, जो संगति के लिए है।

● लड़न्त-भिड़न्त के बोल

तदारे,न दारे,दानी (तीधानी,नी धातीधाती); दीऽम्तन देरेनाऽ (धिऽनूना धिननाऽ); नाऽदिर दिरदिर तुंऽदिर दिरदिर (नाऽतिटतिटतिट तुंऽतिटतिटतिट); दिरदिर तोम् दिरदिर तोम् (तिरकिट धीऽ तिरकिट धींऽ); देरेना,रे रेना,देरे (धिनाना,धि नाना,धिना); धोनोऽम्तननन (कधिऽन् ननानन); तननिन ननिननि (धातिटधा तिटधाती), तेनेनाना तेनेनाना (धानीनाना नानीनाना); द्रिनोमुद्रि नोमुतन (कधिऽक धिऽनिन), ओदानी तदानी दानी (धिनाना धिनाना धिना); द्रेद्रेनाद्रे द्रेनाद्रेद्रे (कक्ना,क कन,कन), दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर (धिरधिर धिर-धिर धिरधिर धिरधिर या धिटधिट धिटधिट धिटधिट धिटधिट), दीऽम्त दीऽम्त देरे (धिऽतधि ऽतधिना); दिरदिरदानीतदाऽनी (तिरकिट धानीकधाऽनी); तदीमुतदीम् (तधींऽतधीऽ); दाऽर दाऽर दानी (ताऽत ताऽत तानी); द्रितोऽम्त द्रितोऽम्त (कतिऽन्न कतिऽन्न); तकधिलांग्

मृदंग . तिट कत्ता ऽन धा | तेट कत गदि गन |

तबला : तिट घटा ऽन धा | घट घट घट घट

(३) मृदंग : धाऽकिट तकधुम किटतक धे | धा धा दि ता | ध. धेरधर

तबला : धाऽकिट तकधिर किटतक धे | धा धि धि धा | " "

मृदंग : किटतक धरधर | किटतक तिरकिट तकताऽ तक |

तबला : " " | " " " " |

(४) मृदंग : धाधा गेधा दिना कत् | धाऽ ऽधा ऽऽ धा | धाऽधा ऽदिऽ ताऽधा ऽनाऽ

तबला धाधा गेधा गेधा तक् | " " | धाऽधी ऽनाऽ धाऽनी ऽनाऽ

मृदंग : दिऽना ऽधाऽ धाऽदि ऽताऽ |

तबला . धाऽधी ऽनाऽ धाऽती ऽनाऽ |

(५) मृदंग : धत् धुमकिट तकतक धुमकिट | तकतक धाऽतिर किटतक दिगन | धा

तबला . कत् धिरधिर किटतक धिरधिर | किटतक धाऽतिर किटतक तकिट | धा

मृदंग : धाऽतिर किटतक दिगन | धा धाऽतिर किटतक दिगन

तबला : धाऽतिर किटतक तकिट | धा धाऽतिर किटतक तकिट

(६) मृदंग . धाकि टधि किट धा | ऽकि टधि किट धा | ताकि टति किट ता

तबला : धाधी धीधी धीधी धा | ऽधी धीधी धीधी धा | धाती तीती तीती ता

मृदंग : किड़धा गेधी किट धा |

तबला : ताधी धीधी धीधी धा | ('धीधी' को दोनों उँगलियों से निकाला जाएगा।)

(७) मृदंग . धाऽकिट तकधुम किटतक तकधुम | किटतक तकधुम किटतक धुमकिट | धा

तबला धाऽधीऽ धाऽतिर किटतक धाऽतिर | किटतक धाऽतिर किटतक तिरकिट | धा

मृदंग . ऽऽतक धुमकिट धा | तकधुम किटधाऽ ऽतक धुमकिट

तबला . ऽऽधाऽ तिरकिट धा | धातिऽर किटधाऽ ऽऽधाऽ तिरकिट

(८) मृदंग : धा दि ता धा | दि ता धे टे | धा ऽ ऽ ऽ

तबला : धा धी धा धा | धी धा धी धा | धा ऽ ऽ ऽ

मृदंग : ऽ ऽ ऽ तिरकिट |

ऽ ऽ तिरकिट |

मृदंग : धाऽकिट तकधे ऽधे ऽधे | ऽधे ऽधे ऽऽकिट तकधे. धे धिरधिर *

तबला : धाऽतिर किटधाऽ ऽधा ऽधा | ऽधा ऽधा ऽऽतिर किटधाऽ ,, ,,

मृदंग : किटतकधाऽतिर किटतकधिरधिर किटतकतकिट धाधिरधिर

तबला : ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,

मृदंग : किटतकतकिट धाधिरधिर किटतकतकिट

तबला : ,, ,, ,, ,, ,, ,,

(१०) मृदंग : धा धे टे धा | ती धा कड़ा धुमकिट | तकधुम किटतक धुमकिट

तबला : धा धी धी धा | धा धी कड़ां तिरकिट | तकतिर किटतक तिरकिट

मृदंग : तकधुम | किटतक धुमकिट तकधुम किटतक |

तबला : तकतिर | किटतक तिरकिट तकतिर किटतक |

(११) मृदंग : कत धिकि टधे धाऽतिर | किटतक धाऽतिर किटतक तिरकिट

तबला : धाधा धिंधिं धिंधिं धाऽतिर | ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,

मृदंग : धिरधिरकत् ऽऽधिरधिर कत् धिरधिरकत् | ऽऽधिरधिर कत्

तबला : ऽऽधिरधिर कत्धिरधिर कत् ऽऽधिरधिर | कत्धिरधिर कत्

मृदंग : धिरधिरकत् ऽऽधिरधिर

तबला : ऽऽधिरधिर कत्धिरधिर

(१२) मृदंग : तकि टधि किट धेट | धा धा दिं ता | धाऽ कड़ध गधि किट

तबला : धिन गधि नग धिन | धा धि धि धा | धाऽ कड़धी नग धिन्

मृदंग : तऽ ऽकताऽ तिरकिट तक्

तबला : ,, ,, ,, ,,

(मृदंग और तबला दोनों में समान बजेंगे)

तीया चतुरंग (तिस्र-चतुस्र मेल)

(१) धाऽन धाऽन धाकिड़ धाऽन । धाऽन धाऽकिड़ धाऽन धाऽन । धाकिड़ धाधा धिनधा धाऽ । ऽधा ऽऽ धाऽ कड़ांधा ।। कधा ऽकड़ां ऽधा कन् । धा कड़ांधा कधा ऽकड़ां । ऽधा कन् धा कड़ांधा । कधा ऽकड़ां ऽधा कन् ।।

सगीत वादन मे लय ताल और रस का सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिये तबले और पखावज की कुछ रचनाओं के उदाहरण उल्लिखित है।[1] जिनके द्वारा लय , ताल और रस का सम्बन्ध अत्यन्त स्वाभाविक रूप से प्रगट होता है । इसमे राम जन्म काल से सम्बन्धित परन के बोल, राम की बाल लीला से सम्बन्धित परन , धुर्नभग परन , वाजि परन, लक प्रवेश परन, लक विजय और राज्याभिषक परन के माध्यम से चार ताल मे निबद्ध परने जिनकी रचना स्व0 श्री पागल दास ने की है इन परनो के बोल और लय , कथानक , अवसर के अनुसार प्रस्तुत की गयी है । जिनका तबले और पखावज पर वादन करके तथा इन ताल और लय बद्ध परनो का प्रस्तुतीकरण नृत्य के माध्यम से करने पर लय , ताल और रस की अभिव्यक्ति और उनका सम्बन्ध स्वत. ही स्पष्ट होता है।[2] भक्ति भावना से ओत-प्रोत चार ताल मे निबद्ध विलम्बित लय मे गणेश परन का उदाहरण उल्लिखित है जो तबले , पखावज पर बजाकर नृत्य के द्वारा भाव भगिमाओं और पद सचालन के द्वारा प्रस्तुत होता है।[3] चौसठ धा की कमाली चक्करदार परन चार ताल में निबद्ध है जो कि अदभुद रस का श्रेष्ठ उदाहरण है।[4] इसी प्रकार नृत्य के द्वारा कृष्णलास्य, कवित्त छन्द, यतियो का प्रदर्शन (मृदगा, पिपीलिका, स्रोतोगता) रास परन, होली परन और वीर रस परन, आदि रचनाओ के माध्यम से लय, ताल और रस का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है उक्त दृष्टान्त अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति करने मे पूर्णतः सफल है।[5] मृदगायति, पिलीलिका यति और गोपुच्छायति के उदाहरण के माध्यम से लय वैचित्र्य प्रदर्शन के द्वारा अदभुत रस की अभिव्यक्ति की जा रही है।[6] वीर रस से ओत प्रोत एक परन जो चौगुन की लयकारी मे तीन ताल मे निबद्ध है, प्रस्तुत है।[7]

• जन्मकाल-परन (नवीं मात्रा से प्रारम्भ)

आमतकिटता ऽऽताऽदिगदिग थेइअता थेइताऽ धानकधिकिटधागे तेटधागे तिरकिटतकता वजतमृ दगडफ हुड़ुकउ पगमन् जीऽरम धुरधुनि धिरकिटधिम् धिरकिटधिम् धादिमप धदिमप दामतन ननतन गाऽनता ऽनबंऽ धाऽनता ऽनगति कंऽरवोऽ णशभृ गाऽरना ऽगनर वधूऽकि ऽन्नरीऽ कुटिलभृ कुटिकरि चटकम टकलच कचलत थइथेइ ततथेइ तथेइता प्रगटेऽ राऽमकृ पाऽलति बुधदुन् दुभीऽव जाऽवत (आमतकिटता आमतकिटता आमतकिटता ऽऽदिगदिग आ ऽनकिट धा ३ बार।)

अब यह दूसरा परन भगवान् की बाल-लीला का है। श्री अवधराज के मणिमय अजिराजिर प्रागण में अवधकुमार क्रीडामग्न होकर माता-पिता को वात्सल्य-सुख प्रदान कर रहे है। दशरथजी का संकेत हुआ, माताजी ने लाल को उठाकर हृदय से लगाने के लिए चल पड़ी; किन्तु जैसे ही हाथो को बढ़ाती है कि भगवान् ठुमुक-ठुमुककर भागने लगते हैं। कौशल्या माँ के बुलाने पर आने की कौन कहे, वरन् भागकर एक स्तम्भ की ओट लेलेते है। एक ओर से माताजी पकड़ना चाहती है, तो दूसरी ओर छिप जाते है और जब दूसरी ओर पकड़ने को जाती है, तो पुनः इधर छिप जाते है। अन्ततोगत्वा माताजी उन्हे गोद में उठाकर पुचकारती हुई श्री चक्रवर्ती जी की गोद मे बिठा देती है, अर्थात्—'कौशल्या जब बोलन जाई। ठुमुक ठुमुक प्रभु चले पराई।' अस्तु, इन्ही भावो से परिपूर्ण यह आगे का परन प्रस्तुत है :—

• बाललीला-परन (नवीं मात्रा से प्रारम्भ)

धिरकिटधिरकिट २ धिरकिटतेऽटेऽ ताऽऽधुम किटतकगदिगन धाऽतेटे ता नानातटे कतगदिगनधाऽ ठुमुकठुमुकगति तेटकतगदिगन धा धाकिटतकधा धुमकिटतकधा तकधाऽतकधाऽ कतागदिगन धिकिटतगनतागे तेटधगनधाऽन धाऽधगनधाऽ तेटकतगदिगन धिकिटतगनतागे तेटधगनधाऽन धाऽऽधगनधाऽ तेटकतगदिगन धिकिटतगनतागे तेटधगनधाऽन धाऽऽधगनधाऽ तेटकतगदिगन धा।

कुछ काल पश्चात् राक्षसो से पीड़ित होकर श्री विश्वामित्र जी अयोध्या मे आकर श्रीराम-लक्ष्मण को माग लते है। मार्ग मे ताडका का वध कराकर तथा अपना यज्ञ सम्पूर्ण कराकर जनकराज की सभा मे पहुँच जाते है। वहाँ पर श्री रामचन्द्र जी मानियो का मान-मर्दन करने के लिए त्रिपुरारि के प्रचण्ड पिनाक को खण्ड-खण्ड कर देते है। उस समय धनुष टूटने पर जो भाव विद्यमान था, वही भाव इस परन मे निहित है।

धनुर्भङ्ग-परन (पाँचवीं मात्रा से प्रारम्भ) •

गेगेगेगे गेगेगेगे कगेऽकगेऽगेऽ कगेऽकगेऽगेऽ घिरगिरकिटतक आगिर-किटधाकि नक्दान् तगदान् ऽधा किट धाऽऽक मठकल मलेकों ऽनभजि कर्नऽद्धि कनदिऽ गगर्जाचेऽ धाऽरत थरथर थरथर थरथरा ऽतथर नीऽअति आरत कम्पऽऽ नधाऽन धाऽऽप हरिकोऽ दण्डकि योऽयुग खण्डसु यशमं [illegible] भुवनेर होग्रति घोरशो ऽथोऽ राऽमचा ऽपम्ऽ क्योऽऽ सुरकिऽ [illegible] [illegible] माऽनव झरझर झरझर झरतसु मनमन मगनम गनतेऽ

धनुष् टूटने पर जब श्री चक्रवर्ती जी जनकपुर में आते हैं, तो चारों भाई चार घोड़ों पर सवार होकर बारात की शोभा बढ़ाते हैं, यथा—

> तुरँग नचावहिं कुँवर वर, अँकनि मृदंग निसान।
> नागर नट चितवहिं चकित, डिगहिं न ताल-बधान॥

इसी भाव का यह परन प्रस्तुत है—

बाजि-परन (सम से प्रारम्भ) •

धाकिटधा गेनधागे दिगनधा दिनाक्रधा ऽधागेगे धागेनधा गेगेधागे नधागेगे धादिता कतकधा तेटधागे दिनाकत नेटकत कतेटत गेनकत कतेटत गेनकत घेघेनेटे कतकतेटे ऽऽनेट कतकतेटे नकिटना ऽनधाकि टधाऽन धागेऽधा दिन्ताक्रधा क्रधादिता धागेऽधा धाऽकिट ताऽकिट धागेदिना गदिगन-धाऽगेऽ तेटघड़ा ऽनधागे तेटकतगदिगन धाऽकत धातेटकत गदिगनधाऽगेऽ तेटघड़ा ऽनधागे तेटकतगदिगन धाऽकत धातेटकत गदिगनधागे तेटघड़ा ऽनधागे तेटकतगदिगन धाऽकत धा।

लंकापार अगाधागम विजय प्राप्त करके जब श्रीअयोध्या पधारे, तो अयोध्यावासियों के सुख का ठिकाना न रहा। सूर्यवंश का विशाल सिंहासन, जो सूना पड़ा था, आज उसका भी भाग्य जग गया, यथा—

> 'प्रभु विलोकि मुनि-मन अनुरागा। तुरत दिव्य सिंहासन माँगा।
> रवि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन सिर नाई।'

अस्तु, अब इसी भाव को इस परन द्वारा सुनिए—

• राज्याभिषेक-परन

अवधपु रीऽगदि गनधाऽ गदिगन राऽजत सिऽहाऽ सनरघु भूऽपगु जगाऽगे नीऽगँग गनिरघ नीऽऽऽ चमकति. चन्द्रप भाऽगीऽ ज्योतिनि काऽगीऽ खाऽगीऽ ऽऽकन् दर्ऽद ऽदम नीऽऽऽ छत्रमु कुटगिर सोऽहेऽ श्रुतिकुन् डलमन मोऽहेऽ दृगजोऽ हेऽऽऽ सकलदे ऽवगन अरुगऽ गाऽगर डिमिकिडि मिकिडिम डमरुडि मिकिडिम धुमकिटतकधुम किटतकधुमकिट तकधुमकिटतक गदिगनधा नाऽरदा ऽदिगुन गाऽवत बीऽनव जाऽवत गुनिगन् धऽर्वरि भाऽखन निरतत किन्नर श्यामाऽगधा दिगदिगथेइ दिगदिगदिगता दिगदिगदिगता तादिगदिगता दिगदिगता तिगधादिगदिग थेइ ऽऽचऽ चगीऽक चरणक मलचाऽ पतकपि केहरि प्रमुदित जनगन धाकिटधा किटधेट गुफनभ योऽटग निरखत सियाऽरा· ऽमकीऽ झाँकी ऽझाँ की ऽझाँ की धा सियाऽरा ऽमकीऽ झाँकी ऽझाँ की ऽझाँ की धा सियाऽरा ऽमकीऽ झाँकी ऽझाँ की ऽझाँ की 'धा'।

श्री हनुमान् जी के लंक-प्रवेश की ओर ले जा रहे हैं। श्रीरामप्रिया मैथिली का पता लगाने के लिए बज्रांगबली किस गति से लंका की ओर प्रस्थान करते हैं, यह आगे के परन में देखिए—

• लंकप्रवेश-परन

अरुणाव रणकिल कतकिट धाऽकिट धसकध रनिकुऽ धरकस कमगध धाकिटधा ऽनधागे तेटघडा ऽनकत कडकड्कडकड् कडाऽन घडाऽन धड़ाऽन तड़कित ड़किधड़ किधड़न धेटधेट धाऽकधा ऽऽतेट तेटतट तेटतेट कधागधा किटधाऽ धेटधेट धेटधेट पवनत नयगति पवनग गनमन मगनश ऽकतजि बंकाउ छंकाल कदेऽ शंकथ ऽत्र्यकर शोऽभित धगनत गनमाऽ रुतसुत कोऽधित धेधे धेरकेट तगनता ऽनदेत नटलाऽ मलंऽक फुंऽकग वनसुत घेताऽन धेटधुम किटतक ('गदिगन धाऽकत गदिगन धाऽकत गदिगन धा' ३ वार)

इस प्रकार श्री हनुमान् लंका में कृत्य करके श्री राघव को प्रेरणा देते हैं। रणधीर श्री राम अनुज तथा वानरी सेना के साथ लंका पर धावा बोल देते हैं। घनघोर युद्ध छिड़ जाता है। देव-समाज युद्ध की कला पर मुग्ध होकर गगन से पुष्पांजलि अर्पित करता है। अब उन्हीं युद्ध-मिश्रित भावों को परन द्वारा सुनिए—

• लंकविजय-परन

धेतधाकिट तकधुमकिटतक धाकिटधा धेटधेट धेटकधा ऽनधाऽ राऽमच ऽन्द्रगढ़ लंकच ढ़ेऽगँग लखनख ड़ेऽकपि अंऽगदा ऽदिहनु मऽनव ढेऽदल दोऽउल रतउर भतजूऽ भतदिगदिग धाऽनधा ऽनमाऽ रतकाऽ टनऽऽ किटकिटा ऽतकिल कतकिट किटकिट धमधम धमकिध मकिधध काऽरत गड़गड़गड़गड़ टूऽटिगि रतरथ मरुतबा ऽजिचिऽ घरतपी ऽलधेट धाऽकधा ऽटकिड़नक ऽकड़ाता ऽकड़ाता धा धेरकेटधेरकेट धेरकेटधेरकेट ध ध धेरकेट चलतप. वनथह राऽतध राऽकुऽ रमकल मलेऽको ऽलभजि चलेऽधा किटधत धा धाकिटतकधुम किटतकगदिगन किडनकतिरकिट तकताऽतिरकिट धातिरकिट तकताऽतिरकिट धा तडतडतडतड़ धड़धडधड़धड धड़ाऽम धड़ाऽम दिगदिग-दिगदिग तगतगतगतग तड़ाऽम तड़ाऽम विबुधब रसिपुष् पोऽजलि झरझर-झरझर राऽवन दर्पद मनराऽ धवजेऽ धा धाधा धाधाधा धाधाधाधा धा

गणेश-परण

ताल : चारताल

× ० २ ०
धगतिट किटतग तिटकिट धगतिट धगिऽन्न धिटतगि ऽन्नधिट

३ ४ × ०
किटतक जयगण पतिविऽ घ्नराऽज नगतिट तगतिट किटधग तिटकिट

२ ० ३ ४
तगतिट तगिऽन्न ततनत तड़ऽन्न तिटकिट तकजय लऽम्बतु ऽड़ेऽ गाऽतुर

× ० २ ०
तिरधिर किटतक धितधित धड़ऽन्न जयतिग णाऽधिप भवाऽ त्मज

३ ४ × ०
तागड़तकतिर किटतकदीगड़ दिन्त जयद्दक दन्तग जाऽनन धिन्त

२ ० ३
धाकिटतकधुम किटतकगदिगन धुंग जयहेऽ रम्बम्र ऽम्बसुख दाऽयक

४ × ० २
जयतिवि नाऽयक ताधाकिटतक देऽतमृ दंगमह ताल यहचौऽ ताल

० ३ ४ ×
जयपशु पाऽलका टहुभव जाल धगिनत गिनप्रभु ननमऽ स्तकतव

० २ ० ३
चरणश रणजय चाऽरुक ऽर्णधित तडऽन्नध ग्नन्नधित तगिनधा किटधागे

४ × ० २
नानानाना किटतकदीगड़ धा ऽधित तगिनधा किटधागे नानानाना

० ३ ४ ×
किटतकदीगड़ धा ऽधित तगिनधा किटधागे नानानाना किटतकदीगड़ धा।

चौंसठ 'धा' की परण

कमाली चक्रदार

ताल : चारताल

×
धिटधिट तक,धितऽ ऽऽताऽ ऽऽधिऽ ताऽधिग तिटधिग दिऽऽऽ ऽऽताऽ

३
ऽऽदिऽ ताऽऽति टकतक ऽऽऽता ऽताकिटतक तिनऽऽना ऽनधिग

तिटधिग तिटतग तिटकता तिटधिधि टनगिन तगदिग नागेतिरकिट

४
तकताऽनता किटतकदींगड़ धा ।धाधा ऽऽनग दिगनागे तिरकिटतकता

२
ऽनताकिटतक दींगड़धाधा ध.धाऽऽ तगदिग नागेतिरकिट तकताऽनता

४
किटतकदींगड़ धाधाधाधा ऽऽतग दिगनागे तिरकिटतकता ऽनताकिटतक

२
दींगड़धाधा धाधाऽऽ ऽ (४)

नोट—इन बोलों को चार बार बजाना चाहिए, तभी कमाली चक्रदार चौंसठ 'धा' की परण पूर्ण होगी। पहले चक्र मे सोलह 'धा' आए है, सम पहले 'धा' पर आया है, दूसरे चक्र मे दूसरे मुखड़े के दूसरे 'धा' पर अर्थात् बाईसवें 'धा' पर सम आएगा, तीसरे चक्र मे तीसरे मुखड़े के तीसरे 'धा' पर अर्थात् तेंतालीसवें 'धा' पर सम आएगा और चौथे चक्र मे चौथे मुखड़े के चौथे 'धा' पर (अन्तिम 'धा' पर) अर्थात् चौंसठवें 'धा' पर सम आएगा। यह चक्रदार बोल ताल मे वही ले सकता है, जिसका लय-ताल पर अच्छा अधिकार हो। यह गुणीजनों के समक्ष सुनाने योग्य परण है।

•••

× २
छुमछुम छन नन नाऽचत । गिरधर गोपी सग लेले ।

० ३
हुाऽथक नकपिच काऽरीऽ भाऽगत । इत उत राधा प्यारी ।

× २
घरनहिं पाऽवत कृष्णमु राऽरीऽ । ताऽथेई थेईतत आऽथेई थेईतत ।

० ३
आमतत थेईतत थेईऽऽ आमतत । थेईतत थेईतत आमतत थेईतत ।

तिस्र जाति में

× २
१. धाऽन धिकिट । धिकिट धिकिट । धिटान टातट ।

३ ० ४
धिकिट धान । (कतक धातेट । कतेट धिकिट ।

० ×
तगन धाऽन ॥ धा ३) ।

× २ ० ३
२. घडान घडान । कतेट तगन । कतेट तगन । धिकिट

० ४ ०
तगन । तागेते टकेट । गगते टकेट । घगन धिकिट ॥

× २ ० ३
धिकिट धाऽन । कतधि धितेट । घेघेते टेकत । घेघेदि

० ४ ० ×
गदिन (ग्रीगीऽ धिकिट । घिन्त डाऽन । गदिन ताऽन ॥ धा ३) ।

× २ ० ३
३. धागेने टेधागे । दिन्ता गेतेट । कृधाके टेगदि । गनना

० ४ ०
गेनेट । तेटने टेतेट । तेटना गेतेट । धाऽकि टधाऽ ॥

× २ ० ३
दिन्ता ऽतिट । कऽत (कतिट । तगन धाऽधा । धा ३) ।

× २ ०

× २ ०
१. जमुनाके तटपर । बऽसीब जाऽवन धेऽनुच । राऽजन

३ ×
गोऽपीन । चाऽवत ग्वालबा ऽलसग ।। नचतक न्हैयानऽऽ ।

२ ० ३
थेईताता थेईताता थेईताता । थेईताता थेईताता । थेईताता

×
थेईताता थेईताता । थेई

× २ ०
२ नवलन वेऽलीऽ । नाऽचत हिलमिल लचकन । चलतचा

३ ×
ऽनधुम । किटतक तकिटधु क्रिटदिग ।। दिगताऽ दिगदिग ।

२ ० ३
त्रामतत थेईतत थेईऽऽ । त्रामतत थेईतत । थेईऽऽ त्रामतत

×
थेईतत ।। थेई

× २ ०
३. घुंघरझ नकझन । श्यामक ऽऽया नृत्यमु । दिनमन

३ × २
नृत्यमु । दिलगलि नचतन चंऽऽ शखच ऽक्रधर । गदाऽप

० ३
ऽद्मधर करमुर । लीऽधर अधरमु । धाऽधर गिरधर गिरधर ।

× २ ०
वदनत ले भृकुटिक माऽनक मनदल । लोऽचन झनझझ ।

३ × २
ननधाती धाधाती धाधाती । धा आ । ऽधाती धाधाती

० ३
धाधाती । धा आ । ऽधाती धाधाती धाधाती ।

धागेतेट । धादिन् ताधा । गदिगन कातिर । किटधि

न्टधागे ॥ तिटकत गदिगन । धा किट । धा दिन् ।

ता धा । गदि गता । (तिरकिटतकना गदिगनधागदि ।

गनधागदिगन ॥ धा ३) ।

पिपीलिका

धागे दिग । ता कृधा । केट धागे । नति टना ।

धाकिटतकधुम किटतकग'दगन । किटतकतिरकिट तकतातिरकिट ।

ऽधा कृधाकेट ॥ धाकृधा केटधा । कृधाकेट धाऽ ।

धाकृधा केटधा । कृधाकेट धाकृधा । केटधा ऽधा ।

कृधाकेट धाकृधा । केटधा कृधाकेट ॥

स्रोतागता

१. धाकिटतकधुम किटतकगदिगन । धाघेरघेर घेरघेरघेरघेर ।

धाकिटधा ऽनधागे । दिगनागे तिरकिटतकता । (कतघिन ऽता ।

धाघिन् ऽता । धाघिन् ऽता ॥ धा ३) ।

२. घेरकेटघे. घेरकेटघे । घेटतेट घेटतेट । कृधाकेट कृधाकेट ।

धाकिटधा किटधिड़ । धिड़धिड़ धिड़धिड़ । दिगतेट गदिगन ।

सिंहावलोकन

× २
१ धाकिटधा कृधाकेट । धेटधाकि टधाकिट । धाधाकिट

३ ०
धाकिटनकधा । केटदिकिट तकधाकेटे । तिरकिटतकता

४ ०
ऽधागदिगन । धाती धातिरकिट । तकनाऽधा गदिगनधा ॥

× २ ०
तीधा तिरकिटतकता । ऽधागदिगन धाती । धा ३ ।

नोट : सिंह कुछ दूर चलकर पुनः पीछे की ओर देखता है, सिंहावलोकन परनों में भी यही भाव रहता है। अन्य वर्णक भी यही भाव दिखा सकता है।

× २ ०
२ धागेनेट गदिगन । तागेनेट गदिगन । कृधाकेट गदिगन ।

३ ० ४ ०
नागेनेट गदिगन । कनेटधा ऽनधा । ऽधा धाधा । धा ऽधा ॥

× २ ०
धाधा धा । ऽधा धाधा । धा ३ ।

८

वीररस का परन

× २
गेड़गेड़थुन्न ऽगेड़गेड़ थुन्न गेड़गेड़थुन् । गेगेनक दिगनदि

०
गनगेगे नकदिग । नागेगेदि गेगेनागे कड़कड़कड़कड़ घड़घड़घड़घड़ ।

३ ×
थोऽगथु किटथोंऽ थोथो थोथो ॥ गेड़गेड़दिन ऽना ऽधा

२ ०
ऽदिन् । ऽता धागेड़गेड़ दिन्ऽ ताऽ । धाऽ दिन्ऽ ताधा

३
गेड़गेड़दिन् । ऽता ऽधा ऽदिन ऽना ॥

मिश्र जाति में

×　　　　　　　　２　　　　　　०
१. तिरकिटतक　ताऽन । धाऽक　ताऽन । धा　आ ।

३　　　　　०　　　　४　　　　०
ताऽन　धाऽक । ताऽन　धा । आ　ताऽन । धाऽक　ताऽन ॥

×　　　　　　２　　　　०　　　３
२ कतिट　ताऽन । ता　ताऽन । ता　ऽक्ड़ । धाऽन　धाऽन ।

०　　　　　४　　　　　०
धाऽक्ड़　धाऽन । धाऽन　धाऽक्ड़ । धाऽन　धाऽन ॥

×　　　　　　　　　　　２　　　　　०
३ धाकिटतक　धुमकिटतक । धाऽक्ड़　धाऽन । धा　आ ।

३　　　　　　　　०　　　　　४
धुमकिटतक　धाऽक्ड़ । धाऽन　धा । आ　धुमकिटतक ।

०
धाऽक्ड़　धाऽन ॥

शिव स्तोत्र पर ताल-परन

×　　　　　２　　　　　　０
पढ़न्त : जयकै　लाशी । अविनाऽ　शीऽसुख । राशी　सदाऽर ।

३　　　　　०　　　　　४
हेऽगंऽ　गाऽतट । काशी　धाऽनभ । ऽगवृप　भसग ।

०　　　　　×　　　　２　　　　०
शीऽशग　ऽगशिव ॥ शंकर　धाश । करधा　शंकर ॥ धा ३ ।

×　　　　　２　　　　　०
बजन्त : धागे　दिन्ना । गदिना　धाकत । दिन्ता　कनाग ।

३　　　　　०　　　　　४
दिन्ता　तातिट । दिन्ना　दिगनता । ऽगदिग　गदिन्ता ।

०　　　　　×　　　　२　　　　०
धेत्तधा　ऽनकत ॥ दिगड़　धादि । गड़धा　दिगड़ । धा ३ ।

× २ ०
१ धाऽग दिन्तागे। कऽत गदिगन। किटतकता तिरकिटतकता।

३ ० ४
ताऽना नानानाना। (कतिट किटतकदिगड़। धाऽधा

० ×
किटतकदिगड। धाऽधा किटतकदिगड़॥. धा ३)।

× २ ०
२ धाकिट धागेदिन। तकिट ताधा। तकधुमकिट

३ ०
तकतकधुमकिट। धुमकिटतक धुमकिटता। (धाऽऽ दिन्ताऽ।

४ ० ×
कतिट धाऽकत्। धाऽऽ दिन्ता॥ धा ३)।

× २ ०
३ धगन धागेतेट। तगन तागेतेट। कृधग धागेतेट।

३ ० ४
दिगन नागेतेट। दिगन दिगनदि। गनदि गनतग।

० ×
तिरकिटतक तातिरकिटतक॥ तिरकिटतक तातिरकिटतक।

२ ० ३
कऽत किटतकदिगड। धाऽक तिटधा। धा किटतकदिगड।

० ४ ०
धाऽक तिटधाऽ। धा किटतकदिगड धाऽक तिटधाऽ॥

३ ० ४
४. धाकिट। धागेदिन् नकिट। धिन्ना घेघेऽ। नानानाना

०
(तिरकिटता। ताधागदिगन धा ३)।

धमार ताल और मध्य लय मे निबद्ध एक परन शिव स्रोत पर आधारित है। इसका उदाहरण उल्लिखित है।

इसी प्रकार तबले पर केवल "धाधिधिधा" तीन ताल के ठेके का वादन विभिन्न लयो मे अत्यन्त आनन्द दायी तथा शान्त रस की निष्पत्ति करने वाला सिद्ध होता है । पेशकारे के बोल जो कि मध्यलय मे डगमगाती हुयी चलन, अत्यन्त आनन्द दायक चचल प्रकृति और श्रृगार रस को प्रकट करने वाली होती है । उदाहरण के लिये

धीक्र धिना ऽधा धिता । धाती धाती धाधा धिता।
x 2

तीक्र तिता ऽता तिता | धाती धाती धाधा धिता। धा×
0 3

विषम लय मे चचल प्रकृति के बोल योजना से युक्त कायदे का उदाहरण प्रस्तुत है जोकि तीन ताल मे निबद्ध है .-

धिऽन्न धागेन धा – ऽधागेन | धातेटे धेतक दीगदी नागीना।
x 2

तिऽन्न ताकेन ता – ऽ ताकेन | धातेटे धेतक दीगदी नागी ना
0 3

। धा ×

द्रुत लय मे मुलायम बोलो से युक्त चचल प्रकृति के वर्ण योजना से युक्त टुकड़े का उदाहरण झपताल मे निबद्ध है ।

धे तिरकिट तक तागेते टे । कता –, धेना – कता –|धेनाधा,
x 2 0

तूऽनाऽ । धेनातूना धातूनाधा तूनाधातू । धी ×
3

विभिन्न प्रकार की परन की बदिशों मे जोकि द्रुत लय मे ही प्राय निबद्ध होती है वर्ण योजना के अनुसार वीर रस की अभिव्यक्ति करती हैं । दुप्पली तिपल्ली, चौपल्ली गतें आदि विभिन्न लयकारियो से युक्त रचनाये अद्भुद रस की अभिव्यक्ति करती हैं। सम, विषम, अतीत , अनागत सम दिखाने के लियें सगत करते समय बजायी गयी तिहाइयॉं वादन मे चमत्कार और अदभुत रस की उत्पत्ति करती है । साधारण चक्करदार, फरमाइसी चक्करदार नौहक्का चक्करदार, कमाली चक्करदार टुकडे और तिहाइयॉं वादन मे चमत्कार रोचकता और नवीनता लाते हुए अदभुत रस की अभिव्यक्ति करते है। अति द्रुत में बजते हुये रेले, रौ और उनके लयकारी युक्त प्रस्तार और तिहाइयॉं भी इसी रस की उत्पत्ति मे सहायक होते है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय सगीत मे लय और ताल

अष्टम् अध्याय

लोक सगीत मे लय ताल और रस –

'लोक सगीत' शब्द सस्कृत की 'लोक' धातु मे घञ् प्रत्यय लगने से बनता है । जिसका अर्थ है – देखना, प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना , विश्व का एक–एक भाग, मानव जाति, क्षेत्र, इलाका, जिला, प्रान्त, सामान्य जीवन आदि। लोक गीत शब्द अग्रेजी के फोक्स साग शब्द का अनुवाद है । ऐसा कोइ भी गीत जिसका उद्‌गम लोक मे हो और जो परम्परागत रूप से बाद के लोगो को मिला हो उसे लोक गीत कहते हैं ।

भरत मुनि के अनुसार "लोक अनेक देशो मे विभक्त है उनके वेश, भाषा और आचार भिन्न हैं । उसकी विशेषताये अनन्त है अत अपने ग्रन्थ मे मैने जो नही कहा उसे बुद्धिमानो को लोक से ग्रहण कर लेना चाहिये।" जिससे लोक का महत्त्व स्वय सिद्ध हो जाता है ।

लोक सगीत सामान्य जनता की थाती है । जनता ही प्रयोक्ता है, जनता ही श्रोता है । अत. लोक सगीत के स्थान पर जन सगीत कहा जाय तो उपयुक्त होगा । लोक सगीत का चरम लक्ष्य है – स्वर, लय एव अभिनय के माध्यम से भावाभिव्यक्ति । लोक संगीत का विकास क्षेत्र मुख्यत. ग्राम्य जनसमूह रहा । लोक सगीत मे अपने–अपने प्रदेश की भाषा, बोली , परंपरा भौगोलिक परिस्थिति रीति – रिवाज आदि के लिये पूरा स्थान रहता है किन्तु साथ ही उसका प्रसार क्षेत्र उस प्रदेश तक ही सीमित रहता है । एक ही प्रदेश के लोक गीतो मे अनेक भाषाओ का मिश्रण होता है जैसे उत्तर प्रदेश मे बृज भाषा, अवधी, बुन्देली, भोजपुर आदि भाषाये ।

भावोद्वेग के समय जो स्वर निःसृति होते है वे ही लोक सगीत की धुनो का आधार बनते है । इन स्वरावलियो मे आश्चर्यजनक बात यह दिखाई पडती है कि वे भावानुकूल और प्रसगानुकूल होती है। साथ ही उनकी लय और तालें भी प्रसंगानुकूल होती है साथ ही उनमें दु.ख और करूणापूर्ण प्रसंगों

की स्वरावली कोमल स्वरयुक्त , करूणा से ओत प्रोत तथा विलम्बित लय मे होती है ।

तालो की दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि भिन्न – भिन्न भावो के अनुकूल लय गति का विविध विनियोग लोक सगीत मे सहज रूप से हुआ है । यही लय और ताल मय रस की अभिव्यक्ति लोक गीतो की आत्मा है। बैलगाडी मे, ऊँट पर, तथा किसी भी वाहन पर चलते समय अथवा कुँए से पानी भरते समय , चक्की पीसते समय जो धुने उदभाषित हुई वे पहियो की गति , ऊँट के कदम आदि गतियो के आधार पर, विभिन्न लयो और छन्दो का निर्माण हुआ और उनका क्रमिक विकास का प्रतिफल दादरा , कहरवा, रूपक, दीपचदी खेमटा, धुमाली, धमार आदि ताले है ।

लोक सगीत के विषय अत्यन्त व्यापक है लोक–जीवन, लोक-संगीत मे पूर्ण रूप से प्रतिविम्बित हुआ है । जीवन का कोई पहलू , कोई प्रसग, कोई भावना और कोई प्रवृत्ति उससे छूटने नही पाती । काम करने के अवसर के गीत, कूटने पीसने, पानी भरने, चक्की पीसने, खेतो मे रोपाई, निराई, फसल बोने और काटने, षोडश संस्कारो के गीत, वर्षा, बसन्त आदि ऋतुओ के गीत , पर्वो एव त्योहारो के गीत, धर्म, नीति , वैराग्य और आध्यात्म आदि के गीत ,पारिवारिक सम्बन्धो मे स्नेह, ईर्ष्या, व्यग्य, परिहास आदि व्यजक गीत, आख्यान गीत जिनमे प्रेमगत व वीरगाथा गीत प्रमुख है । किसी छोटे से छोटे प्रसग को लेकर लोक मानस कब लोक गीत के रूप मे प्रस्फुटित हो उठेगा और एक नये लोक–गीत की रचना हो जायेगी ? यह कहना कठिन है।

दया, ममता, समवेदना, सहयोग आदि लोक गीतो की देन है। करूण रस की अभिव्यक्ति , बेटी की विदाई के गीत मे बडे ही मार्मिक ढग से व्यक्त होता है और करूण होते हुये भी आनन्द दायक होते है। त्योहार विवाह, और धार्मिक उत्सवो पर गाये जाने वाले गीत, वर्षा ऋतु मे गाई जाने वाली कजली मे श्रृगार के विप्रलम्भ पक्ष की अभिव्यक्ति अत्यन्त आनन्द दायी होती है ।

लोक सगीत मे रस

भारतीय काव्यशास्त्र मे वर्णित नव रसो का दर्शन हमे लोकगीतो मे होता है । रस का आधार भाव होते है जो दो प्रकार के होते है – सचारी भाव जो रस की पुष्टि के लिये तनिक समय के लिये आते है और दूसरे है "स्थायी भाव", जो रस के साथ निरन्तर रहते है। इन स्थायी भावो को विभाव जगाकर और उद्दीप्त करके रस की अवस्था तक पहुँचाते है। "सहृदय व्यक्तियो के हृदय मे स्थित रस आदि स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और सचारी के द्वारा अभिव्यक्त होकर रस के स्वरूप को प्राप्त करते है।[1]

भयानक रस ·

स्थायी भाव – भय । आलम्बन – व्याघ्र आदि हिसक जीव, शून्य स्थान, शत्रु आदि । उद्दीपन – निस्सहाय होना, भयानक स्थल, रूप आदि। अनुभाव –स्वेद, वैवर्ण्य, भागना, कापना आदि । सचारी –चिन्ता, आदि स्त्री प्रसव पीडा के कारण व्याकुल होकर, भयानक रूप उपस्थित करना और दात तथा पजे आदि दिखा– दिखाकर, अपना आक्रोश प्रकट करना ।

"अइसे जो हरि जी का पउतिउँ, दाँतन कटतिउँ, बक्वारन करतिऊ।

काँट – कटीली कय छडिया , भइ राज्य मरवउतिउँ ।।

बारात की भयकरता तथा असीमता को देखकर, कन्या के बाबा, पिता, चाचा आदि घबराकर, कापने लगते है। भय के कारण वह कर्तव्य विमूढ हो जाते है

अहि बरात गोहँडवय, अलरिया के बलते,

भागे हँय बेटी के बाबा , दलय–दल काँपय, अरि थर–थर काँपयँ ।।

रावण सीता को हरण करके आकाश मार्ग से लका को ले जाता है । सीता रावण का भयंकर रूप देखकर भयभीत हो जाती है और भय से काँपती , रोती, चिल्लाती हुई अपनी भूल पर पछताती है :–

रवना हरे जात बैदेही, रथ पर लेत चढाइ ना।

करत विलाप चली बैदेही, नगर–नगर उडियाई ना ।।

1– आचार्य चन्द्र शुक्ल – रस मीमासा पृष्ठ 414

लका दहन के पश्चात् मदोदरी अत्यधिक भयभीत होकर , रावण को समझाना चाहती है। उसके समक्ष हनुमान का भयानक रूप हटता ही नही है –

गइले नगर जरि सतमारी, देदो जनक दुलारी ना ।

होत अशुभ जब से सिय लाये, देखो जनयन उधारी ना।।

अइहय राम सेन हहकारी, कहउँ पुकारी ना।

होइहय पल माँ स्वर्ण लक यह, महल उजारी ना।।

पति अपनी माता के कहने से अपनी स्त्री के सतीत्व की परीक्षा "किरिया" प्रथा द्वारा लेना चाहता है :–

बरिगय अगिया, अउममरी कर हिया रे।

बहिनि ठाढी किरिया देयँ हो राम ।।

सखी बनजारे को जगाती है और उसे स्त्री का पत्र देती है। पत्र को पढकर, बनजारा या परदेसी, पति भाव विभौर हो उठता है और पत्र को हृदय से लगा लेता है।

वियोगिनी नवोढा के प्रति पक्षी भी सहानुभूति प्रकट करते है। चकवा–चकई दोनो एक दूसरे के साथ सुख का अनुभव कर रहे है। रात्रि मे अपने वियोग मे दु.खी भी होते है, परन्तु पुन. प्रात. काल मिल जाने की आशा से अधिक उदिग्न नही है । नवोढा का पति कब आकर उसे सुखी करेगा? इसकी उन्हें बडी [illegible] है ।

पत्नी को, पति के वियोग मे हिडोलना आदि झूलना अच्छा नही लगता है। उसकी सखियाँ, उसे बहुत समझाती है, परन्तु वह वियोग की व्यथा के कारण अपने को असमर्थ बताती है ।

बहू पति बिरह मे व्याकुल होकर, सास से पति का पता पूँछती है तथा पति के पास जाने की उत्कट अभिलाषा प्रकट करते हुए पति प्रेम एव असह्य विरह–वेदना प्रकट करती है ।

जउनी बनिज सासू तोरे पूत गे हँय, सो बनु देहु बताया ।

पति वियोग मे उर्मिला का नारी हृदय रो उठता है। वह अत्यधिक व्याकुल होकर कहती है, कि भोजन आदि अच्छा नही लगता है। उनके पति लक्ष्मण, राम तथा

सीता के साथ, बन को चले जाते है। उर्मिला को इसका दु.ख अधिक है, कि एक सीता है जो अपने पति को एक क्षण छोडने मे व्याकुल हो उठी और एक मै हूँ, जो अपने पति के वियोग मे जीवित हूँ .–

"अपने महल उर्मिला रोवयँ, केहि रुचि बनय भोजनवाँ ना।

तुम मउ सीता तीनउ जने, सग माँ, हमका छोडेउ भवनवाँ ना ।

<u>वीर रस</u> –

श्रृगार रस का स्थायी भाव "रति" होता है। रति का अर्थ कामना है। कामना या इच्छा जब पूर्ण या सफल हो जाती है, तो वह उत्साह में परिणित हो जाती है और उसके द्वारा वीर रस की निष्पत्ति होती है, परन्तु जब वही कामना असफल होकर कुण्ठा का रूप धारण कर लेती है, तो शोक मे बदलकर करूण रस की निष्पत्ति करने लगती है । लोकगीतो मे श्रृगार के साथ – साथ, वीर रस भी प्राप्त होता है। देवी के भक्त अत्याचारियो के अत्याचारो के कारण अत्यधिक दु:खी हो जाते है। देवी अपने भक्तो का कष्ट देखकर प्रबल उत्साह के साथ उनके कष्ट को हरण करना चाहती है। वे घर–घर मे जाकर, जागरण का दीप जलवाकर होम आदि करना चाहती है। साथ ही, अपने भक्तो को यह भी आश्वासन देती है, कि अत्याचारी का मै अवश्य नाश कर डालूँगी :–

घर–घर दियना जलइहँउँ, मइ होमु करइहँउ ।

केवटा। गरमी का गरम नवइहँउँ, दु:ख्यिइ जुड़बइहँउ ।

राम लक्ष्मण दोनो सीता की खोज मे भटक रहे थे, मार्ग मे उन्हे हनुमान जी मिल जाते है। हनुमान जी उनके भटकने का कारण जानकर, अत्यधिक उत्साह के साथ सीता को खोज लाने का प्रण करते है .–

अरजि, गरजि उतरे हुनमाना, राम का बहु समुझाई ना।

मन का धीर धरउ दूनउ तपसी, सीता का हेरि लयउबय ना।।

यहाँ राम का कष्ट आलबन विभाव है और गर्जना आदि अनुभाव है। हनुमान को पकड़ने के लिये मेघनाद बडे ही वेग एव उत्साह के साथ हाथ मे ब्रह्म फॉस लपेटे चलता है :–

भजेउ मेघनाथ बलवन्ता, हॉथ लिहे नाग का फन्दा।

बन्दर पकरि मेघउ अरे सॉवरिया ।।

राजा जनक शिव धनुष को उठाने तक मे असमर्थ भूपतियो की भीड को देखकर, अत्यधिक दु:खी हो उठते है और अपने प्रण का स्मरण करके अत्यधिक विह्वल होकर, भूमि को वीरो से रिक्त कहते है, जिसके सुनकर लक्ष्मण बडे भाई राम की आज्ञा लेकर उन्हे ललकार उठते है :-

अरे रामा सुनत उर्मिला नाथ, जनक ललकारी रे हारी।

बोले अबहि राम रूख पहि, तीनउँ लोक उलटि कई डाई।

अरे रामा क्षुद्र धनुष ना मीज, मेरू तोरि डारि रे हारी।।

यहॉ पर जनक की वाणी उद्दीपन का कार्य करती है । शिव धनुष आलंबन है और लक्ष्मण जी की ललकार अनुभाव है ।

रौद्र रस -

"क्रोध" नामक स्थाई भाव जब विभावादि से पुष्ट हो जाता है, तो रौद्र रस की निष्पत्ति होती है । "उत्साह" मे जब बाधा उत्पन्न हो जाती है या वीर रस की पुष्टता मे जब विध्न पड जाता है, तब वही क्रोध का रूप धारण कर लेता है और रौद्र रस उत्पन्न कर देता है । आलम्बन - शत्रु तथा उसके दल, उद्दीपन - शत्रु द्वारा किये गये अनिष्ट कर्म, कठोर वाक्य आदि, अनुभाव दॉत पीसना, ओठ चबाना, ऑखे लाल करना आदि तथा सचारी - मद, उग्रता, अमर्ष तथा गर्व आदि है। स्त्री से उसकी ननदी बैर भाव रखती है। प्रसव पीडा के कारण, स्त्री अत्यधिक तिलमिला उठती है। वह अपने पति को त्याग देने की बात कहकर, समस्त कष्ट का आरोप उसी पर करती है। ननंदी उसकी बात सुनकर, क्रोध से भर जाती है और उस पर बरस पडती है:-

भितरे से निकरी ननँदिया, झडपि झडपि बोली,

भउजी करिहउ सोरहौ सिगार, तउ भइयइ चितु लइहउ ।।

स्त्री, अपनी सास, ननँदी आदि कौ वस्तुये हटाने के कारण नीम की छडी से

मारने लगती है, तो वह अपना अपराध चुपचाप स्वीकार कर लेती है।

कन्या का भाई अपने बहनोई की जिद्द देखकर, तोते का पिजडा भीतर से लाकर आँगन मे पटक देता है और क्रोध के साथ अपने भाव व्यक्त करता है:-

भीतर का पिजरा बाहेर दइ पटकेनि, लइजाव सुगना हमार।।

बहनोई द्वारा बारात मे जाने हेतु, नाना प्रकार की शर्ते लगा देने पर, साला अत्यधिक क्रोध से भरकर उबल पड़ता है .-

एतरा बचन जब सुनयँ कउन लाला, जरि बरि भये अँगार।
हमरे दुआरे जनि आयेउ बहनोइया, ना हमरी साजेउ बरात ।।

रावण सीता जी को रथ मे बैठाकर, लका की ओर ले जाता है, तो मार्ग मे उससे जटायु युद्ध करने पर उतारू हो जाता है और सीता को उससे छुडाने का आमरण प्रयास करता है .-

चोचन मारि महायुद्ध दीन्हो, रथ ते देत गिराइ ना।
अगिनि बान जब छोडेउ निशाचार, पख, चोच जरि जाइना।।

परशुराम जी शिव चाप के दोनो खन्डो को देखकर, अत्यधिक क्रोधित हो जाते है और वह राजा जनक से शिव चाप को तोडने वाले का परिचय जानने हेतु व्यग्र हो उठते है .-

अरी ! अरी! परशुराम ललकारी, धनुष के हि तोरी रे हारी।
जेतरे राजा, अउमहराजा, अलग जाहु सब छोडि समाजा,
अरी! आरी।। परसु हमार सकल मद हारी रे हारी।।

यहाँ धनुष तोडने वाला, आलम्बन, धनुष के दोनो खण्ड उद्दीपन, परशुराम आश्रय तथा ललकारना, परशु दिखाना, जनक पर झपटना चिल्लाना आदि अनुभाव है । जिनके आधार पर रौद्र रस पुष्ट हुआ।

इस प्रकार अवधी लोक गीतो मे श्रृगार, करूण के पश्चात् रौद्र रस ही अधिक पाया जाता है ।

<u>हास्य रस</u> .–

विकृत आकार, वाणी, वेष आदि देखने या सुनने से हास्य रस उत्पन्न होता है। इसका स्थायी भाव हास है। आलबन – किसी व्याक्ति का विभिन्न कर्म, वैश–भूषाा, या आकृति आदि, उद्दीपन– हास्यजनक चेष्टाये, अनुभव – ओष्ठ, नासिका, कपोल आदि का स्फुरण, व्यग आदि वाक्य तथा सचारी – आलस्य निद्रा आदि है । स्त्री अपने पति के चेष्टाओ पर व्यग करती है ।

<u>भक्ति रस</u> –

शाडिल्य सूत्र मे कहा है "सा परानुरकि· ईश्वरे" कि ईश्वर मे परम अनुरक्ति ही भक्ति है । भारत की भूमि अध्यात्मिकता और धार्मिक भावनाओ से अच्छादित होने के कारण तथा रामायण और भागवत की कथाओ से यहाँ का चप्पा–चप्पा भक्ति रस से प्लावित रहा है । व्यापकता और उत्कटता की दृष्टि से भक्ति रस शान्त रस से बढा–चढा है । भक्ति और शान्त दोनो भिन्न तथा अपने मे पूर्ण रस है । इस प्रकार जहाँ ईश्वर विषयक प्रेम की भावो विभावो द्वारा परिपुष्टि होती है वहाँ भक्ति रस होता है। भक्ति रस मे परमेश्वर राम, कृष्ण अवतार आदि का वर्णन तथा ईश्वर के अदभुत कार्य भक्तो का सत्सग , औत्सुक , हर्ष, गर्व, निर्वेद, रोमाच, गदगद वचन और ईश्वर के प्रति प्रेम का भाव भक्ति रस की विषय वस्तु हुआ करता है ।

सगीत मे भक्ति रस से ओत प्रोत हजारो भजन, पद, गान परम्परा, कीर्तन परम्परा , वैष्णव सगीत परम्परा, रास, महारास आदि अतुलनीय भण्डार भरा पडा है । निर्गुण सगुण दोनो प्रकार की भक्ति परम्परा के दर्शन होते हैं। और इनके बहुत सुन्दर उदाहरण लय और ताल मे निबद्ध होकर प्रमाण रूप मे उपलब्ध है ।

लोक गीतो मे भक्ति रस का अतुलनीय भण्डार देवी गीत , गणेश गीत, राम सीता के विवाह से जुडे हुये गीत , कोहबर गीत, त्योहारो से जुडे

हुए गीत मे भक्ति रस, लय और तालो का सुन्दर समन्वय हुआ है । भारतीय सगीत भक्ति रस की रचनाओ मे जितना धनी है उतना शायद ही विश्व का कोई देश होगा । क्योकि यहाँ के साहित्य की परम्परा की एक मूल विचार धारा ही भक्ति साहित्य के रूप में प्रस्फुटित हुई है। दार्शनिक और आध्यात्मिक तुष्टि मे सहायक होने के कारण साहित्य और सगीत ने मिलकर भक्ति रस की रचनाओ की अवरिल धारा प्रवाहित की है ।

वात्सल्य रस .

इस रस को हिन्दी काव्य मे मान्यता दिलाने का श्रेय सूरदास को है । जिन्होने इस रस को पूर्ण परिपक्वावस्था तक पहुँचा दिया और वात्सल्य भाव एक अलग स्थायी भाव माना जाने लगा । प्राचीन आचार्यो ने भी रूद्रट,[1] भोज [2] और आचार्य विश्वनाथ [3] ने वात्सल्य भाव को अलग रस माना । वात्सल्य माता मे अधिक रहता है विशेषकर माता मे जिसके मन मे गर्भस्थ शिशु के साथ ही वात्सल्य प्रारम्भ होता है । वात्सल्य मे सौन्दर्य भावना , कोमलता, आशा , श्रृगार , भावना, आत्माभिमान आदि अनेक भाव रहते है। जिनके सम्मिश्रण से यह अत्यन्त प्रबल मनोभाव बन जाता है। सतान का खेलना, कूदना, कौतुहलपूर्ण चेष्टा, सन्तान के अनिष्ट की आशका, हर्ष, गर्व, चचलता, उत्सुकता, श्रम, ताली, चुटकी बजाना , हँसना, रोमाचित होना, मुख चूमना, आलिंगन करना आदि वात्सल्य रस के भाव है जिनका चित्रण सूरदास ने अपनी रचनाओ मे कृष्ण जी के नख-सिख चित्रण मे किया और उनकी बाल सुलभ चेष्टाओ का बडी ही बारीकी और मार्मिकता से चित्रण किया है। उनके पदो को लय, ताल बद्ध करके सगीत में बडी ही कुशलता से गाया जाता है जो कि श्रोत्राओ को आत्म विभोर कर देता है । इसी तरह तुलसी दास जी ने राम चन्द्र जी के बाल रूप का वर्णन बडी ही सजीवता से किया है "ठुमक चलतराम चन्द्र वाजत पैयजनियाँ " बडा ही लोक प्रिय पद है।

---

1 स्नेक प्रकृति प्रेयात - काव्यालंकार

2. "श्रृगार वीर करूणादभुत रौद्र हास्य वीभत्स वत्सलभयानक शान्तनाम्न"।

3 स्फुट चमत्कारितया वत्सल चरस विदु:- साहित्य दर्पण।

उपर्युक्त वर्ण्य विषयो मे से कुछ के उदाहरण लय, ताल और रस का सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिये प्रस्तुत करना अत्यन्त आवश्यक है ।

बाल जन्म के शुभ अवसर पर स्त्रिया हर्षोल्लास के साथ ढोलक लेकर सोहर गाने लगती है। "ऐहो बाजन लागे आनन्द बधैया, उठन लागे सोहर हो" के बोलो के साथ स्वर और ताल मे गुथी हुई धुन प्रसगानुकूल ही होती है। इस सोहर की स्वर रचना भी आनन्द, हर्ष, उल्लास, बधाई की उत्तेजना, माँ के महत्वपूर्ण कोमल भावनाओ आदि को ही दरसाती है। स्वर सौन्दर्य की अद्‌भुत अभिव्यजना ही निम्नलिखित सोहर लोक गीत मे प्राप्त होती है। जो कि कहरवा ताल मे निबद्ध है ।

सोहर

मोरे आगन राजा चदन के बिरवा रे ।
ओहि चढ़ि बोले हो कागा से बचन सुहावन हो।
ऐहो की तोहे माय पठायो, कै संग बीरन वा हो ।।

सोहर (कहरवा)

स्थाई

– सा सा सा	नी सा रेग म	गरे रे ग रे	सा सा रेग म
ऽ मो रे आं	गा न रा जा	ऽऽ चं दन के	बि र वाऽ रे
x	0	x	0

अन्तरा

गरे रेरे रे गरे	सा – रेग म	गरे रे रे गरे	सा सा रेग म
ऽऽ ओहि चढ़ि	बो ऽ लेऽ हो	ऽऽ कागा से	ब च न सु
गरे रे ग रे	नीध धनी सा	– ध नी ध	प – धनी सा
ऽऽ हा व न	हो ऽऽ एऽ हो	ऽ की तो हे	मा ऽ यऽ प
– ध नी ध	प – धनी सा	नीध ध नी ध	प – – –
ऽ ठा यो कै	स – गऽ बी	ऽऽ र न वा	हो ऽ ऽ ऽ
x	0	x	0

प्रस्तुत लोक गीत का प्रारम्भ (ग्रह स्वर) षडज तथा प्रत्येक पक्ति का अन्तिम स्वर यानी न्यास स्वर क्रमश· मध्यम, षड्ज तथा पंचम है। शुभ कार्य मे मगलगीत मे त्रिदेव ब्रह्मा (षड्ज) विष्णु (पचम) तथा महेश (माध्यम) जो स्वय सृष्टि कत्ता, पालनकर्त्ता तथा दु.ख भजक सहारकर्ता है, की कल्पना की गई है। सोहर धुन की स्वर रचना मे दोनो गधार (शुद्ध तथा कोमल) , दोनो निषाद का प्रयोग किया है । रे ग म ग , रे ग् रे स के बाद पुन रे ग म का प्रयोग स्वर सौन्दर्य की सृष्टि से विलक्षण है। इसी प्रकार सा, नि़, ध़, नि़, स के तुरत बाद ध़ नि़ ध प़ ध़ नी सा का प्रयोग माधुर्य तथा प्रसाद गुण को ही व्यजित करता है। उल्लास की उत्तेजना तथा बाल जन्म की ममत्वपूर्ण कोमल भावनाओ को दरसाने के लिए ही सभवत. शुद्ध ग, तथा कोमल ग् और शुद्ध नि तथा कोमल नी की योजना की गई है । ऋषभ तथा धैवत का इन स्वरो के साथ प्रयोग श्रृगार रस को अथवा वात्सल्य भाव की ही प्रतिष्ठा करते है। सामान्य लोक गीतो की भाति लोक गीत के पूर्वाग के स्वर ही उत्तराग मे प्रतिलक्षित होते है । यही कारण हे कि जटिल स्वरों का प्रयोग भी सरल , सहज तथा सुगमहो गया है जिसे वृद्धाए आज भी सुगमता से गाती है। षडज-पचम तथा षडज मध्यम की सुयोजना ही इस गीत की महानता है।

जनेऊ गीत उदाहरण प्रस्तुत है जो कि कहरवा ताल मे निबद्ध है मध्य लय से समन्वित होकर शान्त रस की उत्पत्ति करता है। अब जनेऊ सस्कार गीत के स्वर सविधान की समीक्षा करे -

जनेऊ सस्कार यज्ञोपवीत के नाम से जाना जाता है । इस सस्कार के समय बटुक विधिवत जनेऊ धारण कर विद्याध्ययन के लिए काशी जाता है । स्त्रिया इस अवसर पर सामूहिक रूप से गीत गाती है।

<u>मगलगीत</u>

"आवो सब सखि मगल गायें, आयी जनेऊ की बेला।

काशी चारौ वेद पढ़न की, बरूआ चला अकेला।।

सुन्दर बेदी आगन सोहत, लहलहात है केला।

यज्ञ धूम रहो पूर भवन मै, महकत है जूही बेला।।"

इस लोक गीत अथवा लोक धुन को स्त्रियाँ गाती है अतएव सर्वप्रथम कठ परिधि के अनुसार ही इस धुन को गाया गया है । सस्कार के प्रसगानुकूल ही गीत के भावो को धुन मे बाधा गया है जो निम्नलिखित स्वर लिपि से स्पष्ट है .-

जनेऊ गीत (कहरवा)

स्थाई -

- रे नी सा	रेम म प प	- ध म प	ग़ - रे स
ऽ आ वो स	खी ऽ स ब	ऽ म ग ल	ग ऽ ये ऽ
- म़ रे ग़	रे सा रे ऩी	सा - सा -	सारे ग रेग म
ऽ आ यी ज	ने ऽ ऊ की	बे ऽ ला ऽ	हीऽ ऽ ऽऽ ऽ
- ग़ रे ग़	रे सा रे नी	सा - सा -	
ऽ आ यी ज	ने ऽ ऊ की	बे ऽ ला ऽ	
x	0	x	0

अन्तरा .

- ध ध धप	पध नी ध प	- ध प म	ग म म म
ऽ सु द र	बेऽ ऽ दी ऽ	ऽ आ ग न	सो ऽ ह त
- ग़ रे ग़	रे सा रे नी	सा - सा -	सारे ग रेग म
ऽ ल ह ल	हा ऽ त है	के ऽ ला ऽ	होऽ ऽ ऽऽ ऽ
- ग़ रे ग़	रे सा रे नी	सा - सा -	
ऽ ल ह ल	हा ऽ त है	के ऽ ला ऽ	आवो सखी।।
x			

वस्तुतः लोक गीतो को अमरत्व प्रदान करने मे धुनो अथवा स्वर रचना की महत्वपूर्ण भूमिका है । "आवो सखि मगल गावे, आइ जनेऊ की बेला" इस गीत को इस प्रकार धुन मे गाया है जैसे धुन स्वय मगल कामना लेकर अवतरित हो गया हो । मगल कामना के लिये सखिया भावोद्रक मे उत्साह के साथ गाने के लिये आतुर है अतएव स्वर रचना – रे ऩि स । रे म प प । – ध म प । ग् – रे स, भाव की अभिव्यक्ति मे सक्षम है। रे म प ध, म प, ग् रे स से जहाँ एक ओर उत्साह तथा भाव की तीव्रता का बोध होता है वहाँ दूसरी ओर पचम से कोमल गंधार का प्रयोग कोमल भावनाओ को व्यक्त करता है, [illegible] मधुर लगता है । सखियो से जैसे स्वर आग्रह कर रहे हो। द्वितीय पक्ति मे जनेऊ की बेला मे, बेला को बढाकर लयात्मकता के लिये निरर्थक शब्द सरे ग रेग् म

हाँ ऽ ऽऽ ऽ

जोडने से मध्यम पर न्यास तथा अलकारिक स रे ग, रे ग ग के योजना स्वर सौन्दर्य को ही प्रतिलक्षित करती है ।

गीत का प्रारम्भ "रे" से किया गया तो अतरे का प्रारम्भ "ध" से करना ही उचित था क्योकि "प" को षड्ज माने तो "ध" ऋषभ ही होगा। "बेदी" शब्द पर जोर देने के लिए ही प ध नि् ध प ।–

बेऽ ऽ दीऽ। ऽ

इस प्रकार "बेदी" शब्द को स्वरो के मेल से बढाया गया है। इस प्रकार आगन तथा सोहत (ग ग म म) यथार्थ मे शब्द और स्वरो मे एकता उत्पन्न कर देते है । अन्ततः यह कहना समीचीन होगा कि गीत के भाव के अनुकूल ही स्वर रचना हुइ है । रचना की द्वितीय तथा तृतीय पक्ति मे स्थाई तथा अतरे मे स्वर साम्यता है। जिससे सामूहिक गायन मे सरलता एव सुगमता होगी ।

जनेऊ के पश्चात् सस्कार गीतो मे विवाह के गीतो का बडा महत्व है । विवाह गीतो के अन्तर्गत ही वर ढूढने से लेकर द्वारचार, कलेवा, गारी

आदि के गीत आते है जिनकी धुने आज भी घर–घर मे वृद्धा महिलाये तथा अन्य महिलाये गाती है । माता, पिता के लिये वर ढूढना एक समस्या है – इसे ही लोक गीत मे कितनी मार्मिक तथा सवेदनशील धुन मे कहा गया है, जो कि कहरवा ताल, मध्य-लय मे निबद्ध है और शान्त रस की निष्पत्ति करता है ।

<u>विवाह गीत</u>

माया, सुधर बर ढूढो रे माया,
माइ लैगी कन्यादान, लाडो नै केस सुखाये ।
मामा सुघर वर ढूढन जैहै,
जैहै देस बिदेसु, लाडो नै केस सुखाये ।।

<u>विवाह गीत (कहरवा)</u>

<u>स्थाइ</u> –

			सा –
			मा ऽ
रे ग म ग	रे म ग् रे	सा रे सा नी	सा रे रे –
मा ऽ ऽ सु	घ र ब र	ढू ऽ डो रे	मा ऽ मा ऽ
– – ध –	नी ध प म	– ग प मग	रे म ग् रे
ऽ ऽ मा ऽ	इ ऽ ऽ ऽ	ऽ लैं ऽ गी	क ऽ न्या ऽ
सा – – –	सा सा सा नी	सा रे सा नी	सा रे रे –
दा ऽ ऽ ऽ	न ला ड़ो नै	के ऽ स सु	खा ऽ ये ऽ
– – सा –	मा –		
ऽ ऽ मा ऽ	ऽ ऽ		
×	०	×	०

"माया सुघर बर ढूढो रे माया" इस पक्ति मे कितनी सरलता है, कितनी आकाक्षा है, तथा कितनी नम्रता है, शब्द , भाव के अनुकूल कितने सरल स्वरो मे इसे धुन मे रखा गया है, सा – । रे ग म ग ।

मा ऽ । मा ऽ ऽ सु ।

रे म ग़ु रे । स र स नि । सा रे रे – माया के सबोधन मे विश्राम का होना

घ र ब र । ढू डो रे । मा ऽ या ऽ

अनिवार्य था तथा तदनुक्रम विश्राम की व्यवस्था दिखाइ पडती है। सुघर बर ढूढो एक बार मे ही कहा जाता है, उसी के अनुकूल स्वर रचना भी हुई है। रे म ग़ु रे सा रे सा नि के द्वारा आकाक्षा तथा नम्रता कितने सरल ढग से व्यक्त किया गया है। स्वर रचना का ग्रह स्वर ,षड्ज है तथा प्रथम पक्ति का न्यास स्वर "रे" है। पचम भाव को रखने के लिए दूसरी पक्ति का प्रारम्भ धैवत से हुआ है । भातखडे जी के राग वर्गीकरण की दृष्टि से रे , ध शुद्ध से श्रृगार रस का सृजन होता है । करूणा की सृष्टि के लिए धैवत के साथ कोमल निषाद तथा कोमल गधार का प्रयोग किया गया है। केवल धनि़ ध प म यदि कहें तो "म" पर न्यास से कारूणिक भावना की ही उपज होती है। मद्र सप्तक के शुद्ध नि तथा शुद्ध ग जो षड्ज – मध्यम है सभा मे ढूढने की तीव्रता का ही आभास होता है। लोक गीत के एक–एक स्वर मे भाव निहित होता है। इसीलिये स्वर की परिभाषा मे विद्वानो का कथन "स्व राजयते" इति स्वर:। यदि स्थाई का प्रारम्भ षड्ज से हुआ है तो अन्तरे का प्रारभ पचम से होना अनिवार्य था, अन्तरा मे तार षड्ज तक इसी विवाह गीत मे मिलता है। प ध नि़ सा नि़ ध सा नि़ ध प, ध प म , प, भावपूर्ण इस स्वर रचना के एक–एक स्वर अनमोल है । कोमल भावना के साथ तीव्रता, शुभ कार्य के सम्पन्न होने की सभावना पचम के न्यास से स्पष्ट है । पचम को कोमल गधार से जोड़ने के लिये म ध प ग़ु – रे ग़ु रे स की योजना सराहनीय है ।

उपरोक्त विवेचन से यह कहना कठिन है कि स्वर पीयूष में भाव मग्न है अथवा भाव सरिता मे स्वर ।

विवाह गीत की अन्य धुनो मे विभिन्नता प्राप्त होती है। कही तो रे म प ध, वध, नि ध प, म – इस प्रकार से राग देश का आभास होता है। इन विवाह गीतो मे "म" पर न्यास अति सुन्दर लगता है। दो विवाह गीत ऐसे भी प्राप्त है जिनमे षड्ज – पचम के साथ कोमल धैवत तथा कोमल गधार, शुद्ध रिषभ का प्रयोग है। सभवतः इन गीतो मे आसावरी थाट का रूप आ गया है। इन सभी गीतो के स्वर तथा भाव मे अनुपम ताल मेल है। अधिकाश विवाह गीत की स्वर रचना चाचर अथवा दीपचदी मे हुइ है। कुछ विवाह गीत "कहरवा" मे मिलते है। अन्य तालो मे स्वरो का छान्दिक रूप नही मिलता है। सस्कृत महाकाव्यो मे ऋतुवर्णन आवश्यक समझा जाता था। ऋतुगीत की स्वतत्र परपरा उद्गम लोकगीत ही प्रतीत होता है। लोकगीतो मे ऋतुवर्णन मे वर्षा बसत तथा शरद को ही प्रधानता दी गई है।

वर्षा ऋतु के लोकगीतो मे प्राय. दो प्रकार के गीतो का ही उल्लेख है (1) कजली (2) सावन। किन्तु मेरा अपना मत है कि चौमासा का सम्बन्ध भी वर्षा ऋतु से है। अत' इस ऋतु की तीन प्रमुख लोक धुने लोक गीतो मे प्रचलित हैं ।

बसत ऋतु के अन्तर्गत दो प्रकार की लोकधुनो का स्वरूप प्राप्त होता है– (1) फाग या फगुआ (2) चैइता।

कजरारे बादलो को देखकर लोकगायक का हृदय भी स्वर तथा भाव तरगो की रिमझिम मे रसमग्न हो गया और "कजली" के रूप मे मुखरित हो उठा। डॉ0 ग्रियर्सन ने कजली की उत्पत्ति, मध्यभारत के राजा दादूराम की मृत्यु के पश्चात् वहॉ की स्त्रियो के अपने दुःख को प्रकट करने के लिये जिस गीत के तर्ज का आविष्कार किया, उससे माना है।

कुछ विद्वानो के अनुसार "कजली" नायिका के विरह वेदना के गीत है तथा कुछ विद्वानो के अुनसार कजली देवी है और मॉ विन्ध्वासिनी के रूप में विद्यमान है। इन तथ्यो से निष्कर्ष यही निकला कि कजली गीत शैली मे विप्रलम्भ श्रृंगार का ही प्राधान्य है । यह सत्य है कि काले बादलो (सावन) की ऋतु मे यह मिर्जापुर, बनारस तथा उसके समीप के अवध नगर अथवा

ग्रामो मे गाया जाता है । वस्तुत भोजपुरी कजली तथा अवधी कजली का ही रूप सामान्यतः प्राप्त होता है । अवधी कजली की लोकधुनो मे निहित स्वर योजना की समीक्षा भाव तथा रस के रूप मे निम्नलिखित है यह धुन मध्य लय और कहरवा ताल मे निबद्ध है ।

कजली :

हरे रामा गगा के ऊँच करार भरौ जल कैसे रे हारी।
एक तौ राति अधेरी रामा, दूजै बिजुली चमकै रामा,
हरे रामा तीजे लेजुरिया छोटि भरौ जल कैसे रे हारी।

ताल कहरवा (आठ मात्रा दुगन मे चार मात्रा मे)

स्थाई –

सा सा सा रे	म म म म	म प मग ग	रे – ग रे
ह रे रा मा	ग गा ऽ कै	ऊँ ऽ चऽ क	रा ऽ र भ
सा – सा सा	सा रे रे ग	रे – सनि –	सा – – –
रौ ऽ ज ल	क इ से ऽ	रे ऽ हाऽ ऽ	री ऽ ऽ ऽ
X	0	X	0

अन्तरा –

सा सा रा रे	म – म म	ग – ग ग	रे ग रे –
ए क तौ ऽ	रा ऽ ति अँ	धे ऽ री ऽ	रा ऽ मा ऽ
सा रे रे म	ग ग ग ग	रे ग रे सा	नि – सा –
दू ऽ जै ऽ	बि जु री ऽ	च म कै ऽ	रा ऽ मा ऽ
सा सा सा रे	म-म म म	म प मग	रे – ग रे
ह रे रा मा	तीऽ जे ऽ ले	जु ऽ रियाऽ	छो ऽ टि भ
सा – सा सा	सा रे रे ग	रे – सनि –	सा – – –
रौ ऽ ज ल	कै ऽ से ऽ	रे ऽ हाऽ ऽ	री ऽ ऽ ऽ
X	0	X	0

उपरोक्त लोक धुन की व्याख्या के पूर्व कजली गायन के समय के चित्र को समझना आवश्यक हैं। कारण इन धुनो की चित्रोपगता ही गायन के

रूप मे स्वरित हो उठी है। सावन के महीने मे नारियो के हृदय मे काली घटा तथा रिमझिम की झडी देखकर, हर्ष, उल्लास, तथा उमगें हिलोरे लेने लगती है। उन्मत्त नारिया कदम्ब की डार पर झूला डाल कर झूलती है – पेगे मारती है और हवा के झकोरो के साथ झूले की लयात्मकता मे गीत (कजरी) गाने लगती है । इन गीतो के स्वर तथा लय भी झूले के हिलोरे के साथ मिल जाते है। झूले की चार कडियो मे ही कजली लोकगीत तथा स्वर भी चार विभागो मे विभक्त हो, लयात्मक ताल की सृष्टि करने लगते है। गीत और स्वर के स्वराघात स्थल भी हिलोरे के लयात्मकता मे लीन हो जाते है। यही है कजली गायन शैली और उसकी स्वर योजना की विशिष्टता ।

सक्षेप मे कजली गायन शैली की स्वरात्मकता जो लयात्मकता की कडी मे बँधा हुआ है, उस पर भी विचार कर ले ।

"कजली" की धुने (स्वर योजना) अधिकतर 6 मात्राओ (6 स्वरो) या 8 मात्राओ (8 स्वरो) में प्राप्त होती है । प्रस्तुत धुन 8 मात्रा के कहरवा ताल मे निबद्ध है ।

झूले की तरह कजली गायन के स्वर भी पहले ऊपर (आरोह) चढते है और फिर अवरोहात्मक रूप लेकर षड्ज से मिल जाते है। यह शैली प्राय. सभी कजलियो मे प्राप्त होती है जैसे –

सा सा सा रे	म म म म	म प मग ग	रे – ग रे
सा – सा सा	सा रे रे ग	रे – सनि नि	सा – – –

कजली के स्वरो के निरीक्षण से स्पष्ट है कि मध्यम का प्रयोग वदित्व के रूप मे तथा षडज का प्रयोग सवादित्व के रूप मे किया गया है। स्वर रचना मे ग्रह स्वर षडज का प्रयोग सवादित्व के रूप मे किया गया है। स्वर रचना मे ग्रह स्वर, षडज एव न्यास स्वर भी षड्ज ही रखा गया है। स रे म ग रे ग रे स जिस स्वरो से विह्वलता तथा विप्रलभ श्रृगार की योजना ही हुई है। रे ग म प, म ग इन स्वरो से गौड मल्हार के स्वरो का आभास मात्र होता है। अतएव सपूर्ण स्वर 'रचना कजली के अन्तर्भाव को ही व्यक्त करती है ।

अवधी कजरी – न02

अवधी कजरी के भी कई प्रकार मिलते है। इनमे से एक प्रश्नोत्तर कजरी भी है। इसमें प्रथम दो पक्तियो मे एक सखि प्रश्न करती है और दूसरी सखियॉ (अथवा ननदी) उसका उत्तर देती है। ऐसी प्रश्नोत्तर प्रणाली बनारस तथा मिर्जापुर के कजरी दंगल मे बहुतायत से मिलते हैं। दो कजरी गायको की प्रतियोगिता मे यह प्रश्नोत्तर प्रणाली बडी ही रोचक तथा सुहावनी लगती है। प्रस्तुत अवधी लोक गीत मे इसी शैली का निर्वाह किया गया है।

लोकगीत –

कौन रग मुगवा, कबन रग मोतिया?
कवन हो रगना ननदी तोर बिरना ।?

लाल रग मुगवा, सब्ज रग मोतिया
सावर हो रगना, ननदी तोर बिरना।।

इसी प्रकार,

कहा सोहे मुगवा, कहा रे सोहे मोतिया।
कहा रे सोहै न, ननदी तोर बिरना।।?

सीस सोहै मुगवा, बेसर सौहै गोतिया
सेजरिया सोहै न, ननदी तोर बिरना।।

(कहरवा दुत लय– 4 मात्रा)

स्वर लिपि –

स सा सनि सा	सा सारे नि् ध	प ध ध प	म ग रे स
कौ न रऽ ग	मू गऽ वा क	व न र ग	मो ति या क
×	×	×	×
स रे रेगु रेस	सरे गम म मग	रे – रे रेग्	रे स स स
वन होऽ र ग	नाऽ ऽऽ न नऽ	दो ऽ तो रेऽ	वि र ना क
×	×	×	×

स रे रेगु रे स	सरे गम म. मग	रे – रे रेगु	रे स स –
वन होऽ र ग	नाऽ ऽऽ न नऽ	दी ऽ तो रेऽ	वि र नाऽ
×	×	×	×

गीत कै प्रथम दो पक्तियो मे प्रश्न के लिये जिन स्वरो का प्रयोग किया गया है, उत्तर देने की प्रणाली भी उसी धुन (स्वर याजना) मे प्राप्त होती है। अतः उत्तर की पक्तियाँ या कडिया भी उपरोक्त स्वर– लिपि के अनुसार गाई जावेगी । उपरोक्त धुन की प्रथम विशेषता यह है कि अधिकाश कजरी गीत पूर्वाग से प्रारम्भ होते है। पर इस कजरी की धुन का ग्रह स्वर तार षडज तथा न्यास स्वर मध्य षडज है। धुन मे गु (कोमल) तथा नी (कोमल) के साथ शुद्ध गधार तथा निषाद का भी प्रयोग दिखाई पडती है। शास्त्रीय सगीत के दृष्टिकोण से इसे काफी ठाट के अन्तर्गत ही रखा जा सकता है। गीत के माध्यम से तीन प्रश्न पूछे गये है – (1) कवन रग मुगवा (2) कवन रग मोतिया तथा (3) कवन हो रगना, ननदी तोर बिरना। प्रश्नकर्त्ता ने तीनो प्रश्नो को जिन स्वरावलियो से सजीवता तथा रगीनियो से सजाया है – वह भी अवलोकनीय है। पहले प्रश्न की उत्तेजना, तीव्रता, चपलता तथा उग्र कौतूहल हेतु तार षड़ज से सस सा नि सा। सा सरे नि की स्वर योजना सार्थक प्रतीत होती है। दूसरे प्रश्न को नी के कौन रं ग मु गऽ वा बाद प्रारम्भ ही करना है अतएव ध प ध ध प म ग रे की स्वर योजना भी समीचीन है। प्रश्न की तीव्रता के लिये ही क व न रं ग मोतिया धैवत पर जोर दिया गया है । प्रश्न की सरलता के लिये अवरोहात्मक सरल रूप का प्रयोग किया गया है। जो प्रश्न के अनुसार सरलतम स्वर में निबद्ध है । अन्तिम प्रश्न मे स सरे रे ग रेस सरे गम म मग । रे – रग । रे स स मे गायक ने चातुर्य के साथ कवन हो रग न स्वरो के द्रुत प्रयोग के साथ न न दी तोरे वि र ना मे गु (कोमल) का प्रयोग किया है। तीसरी पक्ति मे स्वरों तथा शब्दो की पुनरावृत्ति से प्रश्नो पर बल दिया गया है । संभवत. यह भी सकेत है कि दो प्रश्नो के बाद तीसरे प्रश्न की

उत्तर क्या होगा ?। वस्तुत स्वरो के प्रयोग मे अद्भुत स्वर सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। अन्त मे पुन (मग रे – रेम्। रे स स (म ग़ रे के साथ स्वाभाविक कोमल गधार का प्रयोग वस्तुत. नैसर्गिक स्वर योजना का ही आभास होगा। प्रश्न का अन्त न्यास स्वर, षडज पर ही हुआ है जो समीचीन है । इस कजली मे भी मध्यम तथा षडज पर जोर दिया गया है जो माधुर्य भावनाओ को प्रदर्शित करते हैं।

जिन स्वरों सन्निवेशो मे प्रश्न किये गये है उन्ही स्वरो मे, उसी अन्दाज मे उत्तर भी दिया जाता है और इस उत्तर प्रणाली का अनुगमन भी प्रस्तुत कजरी मे हुआ है। भाव, छद तथा स्वराघात के दृष्टिकोण से इस कजरी गीत की बन्दिश भी सगीतज्ञो के लिये निधि है स्वर ही भाव है और भाव ही स्वर है अतएव भाव, स्वर, लय, ताल समस्त दृष्टिकोण से यह लोक गायिकाओ की अनुपम भेट है।

सावन

पावस पर्व की पुनीत बेला मे सपूर्ण अवध मे "सावन" का सहर्ष स्वागत होता है। सावन के सह–वन सभी ग्रामीण अचलो मे वर्षा की फुहार के साथ हृदय की उल्लास उद्गार का प्रतीक बन जाता है। वर्षा– ऋतु के लोकगीतों मे कजरी की भाति ही सावन लोक गीतो का भी महत्व है।

शास्त्रीय सगीत मे भी काफी ठाट के अन्तर्गत सावन राग का वर्णन मिलता है। यह भी ऋतु प्रधान राग है । सभव है कि लोकगीतो के "सावन" गीत का ही परिमार्जित रूप सावन राग हो। कुछ भी हो इतना तो सत्य है कि सावन धुन तथा सावन राग लोक संगीत तथा शास्त्रीय संगीत दोनो मे प्राप्त होता है । शास्त्रीय सगीत में "पीलू सावन" भी एक मिश्र राग है जो बहुत कुछ इससे मिलता जुलता है। सक्षेप मे यहाँ सावन लोकगीत की स्वरयोजना की समीक्षा करना सुसगत होगा ।

यद्यपि लोक सगीत शास्त्रीय सगीत से भिन्न है। फिर भी सगीत तो दोनो शैलियो की आत्मा है । अतएव सावन लोकधुन की स्वर योजना की समीक्षा शास्त्रीयता के आधार पर करना ही सुसगत होगा।

प्रस्तुत है लोकगीत तथा धुन (स्वरलिपि) .– जो कहरवा ताल, मध्य लय मे निबद्ध है और श्रृगार रस की अभिव्यक्ति करती है .–

प्रथम मास आसाढ़, हे सखी,
साज चलत चलधार हो ।
उमड घुमड मेहा बरसन लागे,
भीज गये अरे केसवा हो।

सावन है सखी शब्द सुहावन,
चहुदिस बरसत मेहा हो ।
दादुर की धुन चहु दिस छायी,
मोर पिया परदेसवा हो ।।

भादो है सखी रैन भयावन,
दुजै अघेरिया रात हो।
दामिन दमक दमक डरपावै,
निदन सहू मै कलेसवा हो ।।

क्वार है सखी आस मिलन की,
नदिया निर्मल नीर हो।
मै बैठी नित पथ निहारउ,
श्याम रहे परदेसवा हो ।।

<u>चौमासा</u> (<u>कहरवा</u>)

×			
– रे रे सा	रे – सा सा	म रे रे सा	रे – सा सा
ऽ प्र थ म	मा ऽ स अ	ऽ सा ऽ ढ़	है ऽ ऽ स खी
– म म ग	म प प प	– मप ध प	म ग – –
ऽ सा जि च	ल त ज ल	ऽ धाऽ ऽ र	हो ऽ ऽ ऽ

– रे रे म	म पम म गरे	– रे रे ग	सा – नी –
ऽ उम ड़ घु	म ड मे हा	ऽ बर स न	ला ऽ गे ऽ
स स रे स	म ग प प	म पम म गरे	रे – स स
भी ऽ ज ग	ये ऽ अ रे	के ऽऽ शवाऽ	हो ऽ ऽ ऽ
x	x	x	x

गीत की शेष पक्तिया भी उपरोक्त स्वरो मे ही गायी जायेगी। मध्यम को स्वर मानकर यह गीत गाना चाहिए।

प्रस्तुत चौमासा लोकगीत मे प्रथम चार पक्तियो मे आषाढ मास के आगमन का, जल की धार बहने, उमड घुमड कर बरसने तथा नायिका के केश के भीगने के भावो को व्यक्त किया गया है । प्रथम मास तथा सखि के सबोधन की अभिव्यक्ति के लिये कितने सरल रूप में केवल दो स्वरो का प्रयोग किया गया है । जैसे – रे रे स, रे – स –, रे – स स । साथ ही केवल आषाढ तथा वर्षा ऋतु के लिये ही स, म, रे, र, स जैसे स्वरो का प्रयोग किया गया है। "साजि चलत जलधार हो" के लिये म म , ग , म प प – म प ध प, म ग स्वर समूह मे कितने सरल रूप मे मल्हार सूचक स्वरो का प्रयोग किया गया है । बादल के उमडने, घुमडने के लिये स्वरो के आरोह स्वरूप तथा बरसने के लिये अवरोह का स्वर मद्र (नि) तक पहुँच गया है। सभवत. भाव की तीव्रता तथा नायिका की व्यथा को व्यक्त करने के लिये ही रे म , म, म, प, म ग रे, म स नि का प्रयोग किया गया है। इन स्वरो से देश राग का भी आभास होता है जो वस्तुत. करूण रस के लिये उपुयक्त है। साधारण रूप यदि "भीग गये अरे के शवा हो " कहा जावे तो भीग गये के साथ "अरे केशवा" जोर से कहा जावेगा। पुन. प्रियतम के न आने से निराश मे "हो" धीरे से ही कहा जावेगा ।

स स रे स	म ग प प	म पम म गरे	रे – स स
भी ऽ ज ग	ये ऽ अ रे	के ऽऽ श वाऽ	हो ऽ ऽ ऽ

इन स्वरो मे भीज के बाद स्वरो का चढाव तथा 'कैसवा' को बढाकर कितने सटीक ढग से कहा गया है और फिर रे – स स मैं विश्राम दिखा हो ऽ ऽ ऽ गया है।

कहने का तात्पर्य यह कि प्रत्येक शब्द और स्वर भाव के अनुकूल जैसे सजा कर रख दिये गये हो । गीत की शेष पक्तिया भाव मे साहचर्य रखती है। अतएव रचनाकार ने शेष पक्तियाँ इन्ही स्वरो मे गाया है। प्रस्तुत स्वर लिपि मे केवल षडज से धैवत तक के स्वरो का ही प्रयोग किया गया है और वह भी सीधा सादा और सरल प्रयोग। कितनी सुघड , सरस और भावमयी रचना है।

इसी गीत का ग्रह स्वर ऋषभ तथा न्यास स्वर षडज है। सपूर्ण गीत का अश या प्राण स्वर माध्यम है। मध्यम तथा पचम का प्रयोग श्रृगार रस की ही सृष्टि करता है, ऋषभ गधार तथा धैवत के प्रयोग से ही श्रृगार रस मे तीव्रता तथा विरह वेदना का सचरण हुआ। अतएव स्वर रचना प्रेषित पत्रिका नायिका की व्यथा को व्यक्त करने मे सक्षम है तथा विप्रलभ श्रृगार रस के उपयुक्त है। रे, ध के प्रयोग से श्री भातखडे जी के अनुसार यह रचना 12 बजे दिन से 12 बजे रात के बीच मे गेये हैं। अतएव चौमासा की स्वर रचना प्रत्येक दृष्टिकोण से भाव के उपयुक्त है।

कजली लोकगीतो मे हरे रामा तथा री हारी को प्रारम्भ तथा अन्त मे टेक के रूप मे पुनरूक्ति से, गीत के स्वर प्रवाह मे कजली की उमंग तथा उल्लास ही व्यजित है।

स स स रे तथा अन्त मे रे – स नि । सा – – –
ह रे रा मा रे ऽ हा ऽ री ऽ ऽ ऽ

से कजली की नायिका मे विरह व्यथा के साथ सावन की उमग, तरंग ही का आभास मिलता है। इसी प्रकार से हरे सावन वा की पुनरूक्ति है।

ध	स	ग	–	रेस	रे	स	–
ह	रे	सा	ऽ	वऽ	ना	वा	ऽ

यह पक्ति के अन्त मे टेक की भाति बार–बार लगाने की शैली है।

चौमासा मे हरे अथवा अरे साँवरिया टेक के रूप मे पक्ति के अन्त मे प्रयुक्त हुआ है। इस टेक के साथ स्वरो की आवृत्ति होती है उदाहरण स्वरूप

– – रा रे | सरे ग स रे | या – – – | ये स्वरो के रूप होगे।
ऽ ऽ अ रे | साऽ ऽ व रि | या ऽ ऽ ऽ |
फगुवा मे – – – ग | रे ग – | स रे नि | सा – निस रे |
ऽ ऽ ऽ छ | य ला ऽ | ब ऽ न | वा ऽ रोऽ – |

इस प्रकार घ्यलाबनावारी शब्दो की टेक स्वरित है।
अवधी लोक भजनो मे भी "लछिमन" (नि स रे स) की प्रत्येक पक्ति के बाद पुररूक्ति है ।
ल छि म न

इस प्रकार अनेक गीतो मे साथक शब्दो की पुनरावृत्ति "टेक" की भाति की जाती है । जैसे गारी गीतो मे "हा सीता राम से बनी एव " राम जी होजी" सोहर गीत मे "हो मोरी बहिनी" "हो मोरी सखिया", "हो मोरे ललना" आदि गीत की कड़ी के दूसरे चरण के प्रारम्भ मे जोडने की शैली (Technic) अवधी गीतो मे स्वर व्यवस्था को सूत्रबद्ध करने के लिए किये जाते हैं । इनके सगीतात्मक प्रयोग से प्रथम पक्ति के स्वर तथा शब्द दूसरे पक्ति के स्वर तथा शब्द से नैसर्गिक रूप मे मिल जाते है। गायक को गाने मे सहारा मिल जाता है। सक्षेप मे, इन जोड अथवा टेक के शब्दो तथा स्वरावृत्ति का वर्णन किया गया है। एक और बात विचारणीय है कि अधिकाश अवधी लोकगीत समूह गान हैं जिसमे स्त्रिया और पुरूष वर्ग मिलकर गाते है। अतएव टेक के स्वर और शब्द साधारणतया सभी को तुरन्त याद हो जाते है तथा उसी लयात्मकता मे अप्रयास ही वे आगे की गीत की कडियो को ग्राह्य कर गाने लगते है। कड़ी की धुन की ग्राह्यता में भी इन टेक की धुन का सराहनीय महत्व है। टेक की धुनो से वातावरण की सृष्टि होती है । उमगो मे तीव्रता आ जाती है ।

टेक की धुनो की तरह स्वरावलियों मे भी आवृत्ति की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है । स्वरो की पुनरावृत्ति दो अथवा तीन–तीन कडियो मे प्राप्त होती है यह शब्द स्वरो की पुनरावृत्ति भाव, गायक अथवा गायिकाओ की भावना मे स्थायित्व प्रदान करती हैं । किसी भी भाव को शब्दों द्वारा दुहराने से केवल उस भाव पर भी जोर देते है। गीत के ये स्वर तथा

शब्द उसी गीत के प्राण है ।

लोक संगीत मे एक ही स्वर मे दो कडियो के होने से गाने मे सरलता तथा सहजता आ जाती है । एक उदाहरण चौताल, मध्यलय, श्रृगार रस (विप्रलम्भ) की अभिव्यक्ति करता हुआ.–

चौताल –

– रेरे रे ग	म मप प प	प पध प म	मग रेग रे रे
ऽ गुन गु न	बि रऽ ह अ	गिन नऽ ड र	उ प ज त
×	×	×	×

यह कडी दो बार गाई जाती है ।

– रेरे रे ग	म मप प प	प पध प म	मग रेग रे रे
ऽ गुन गु न	बि रऽ ह अ	गि नऽ ड र	उऽ पऽ ज त
×	×	×	×

यह कडी पुनः दो बार गाई जाती है। इस प्रकार एक ही कड़ी को चार बार गाने की प्रथा है। सह-गान के रूप मे स्वरो और शब्दों की पुनरावृत्ति से समा बध जाता है । ऐसा लगता है जैसे वस्तुत. विरह अग्नि हृदय मे प्रज्जलित हो उठी है। लयात्मकता के लिये ढोल, मजीरा, झाझ, चिकारा का सहयोग लिया जाता है । इन सब के सयोग से "चौताला" गाते ही फागुन की बहार की छटा दिखलाई पडती है। पुनरूक्ति से ही पुनराभास होने लगता है । वस्तुतः यह स्वर शक्ति एव स्वर सौदर्य का ही द्योतक है।

फाग राग :

फाग राग का शुभारभ ९.वसंत पचमी के दिन से होता है । फागुन मे जो लोकगीत गायको द्वारा गाया जाता है, उसे ही फाग या होली कह कर पुकारा जाता है । फागुन मे जो लोकगीत गाये तो हैं उनके नाम हैं– फाग होली, धमार, चारताल, डेढ़ताल, धमार तथा झूमर आदि।

प्रस्तुत है फागुन गीत मे श्रृंगार के वियोग पक्ष की अभिव्यक्ति दादरा ताल मध्यलय, के माध्यम से की गयी है । वियोगिनी की व्यथा तो फाग गीतो मे साकार हो उठी है । फागुन आ गया पर प्रिय नही आए। ऐसे निष्ठुर को क्या कहा जाय?–

"आई गये फगुनवा न आये कन्हाई, ऐसे बेददीं से कइसे निभाई।
फागुन मास अबीर उड़त हइ, द्वारे ठाढि हम अँचरा बिछाई।
दइ गये तेल हरपवन सेन्हुर, अँखिया कइ कजरा, जउ महल उठाई।
कातन कों दइ गये चनन चरखवा, लहुरी ननदिया से मनवा लगाई।
चुकि गये तेल हरपवन सेन्हुर, अँसुआ बहइ मोरा बजरा बहाई।
घुनइ लागइ धीरे–धीरे चयन चरखवा, लहुरी नदिया कइ होइगइ बिदाई।
सासू कइ बोलिया करेजवा मा सालइ, सूनी महलिया हमइ डेरवाई।
आइ गइ फगुनवा न आये कन्हाई।"

दादरा ताल

स्वर लिपि

स्थाई –

ग ग ग	ग रे गम	रेग स – स	नि स रे
आ ई ग	ये ऽ फाऽ	गुन वा ऽन	आ ये क
×	०	×	०

ग – रे	– स ऽ	रे म म	म म म
न्हा ऽ ई	ऽ ऽ ऽ	ऐ से बे	दर दी से
×	०	×	०

पध पध प	म ग रे
कै से नि	भा ई
×	०

अन्तरा –

रे म म	प प प	म प प	मग रेग स
फा गु न	मा स अ	वी र उ	ड़त हैऽ ऽ
×	०	×	०
म – म	ग – ग	म ग निस	रे – स
द्वा ऽ रे	ठा ऽ ढि	ह म अच	रा ऽ वि
×	०	×	०
ग रेग रे	– स स		
छा ऽऽ ई	ऽ ऽ ऽ		
×	०		

इस शुद्ध फाग गीत की स्वर योजना मे शुद्ध स्वरो का प्रयोग किया गया है। स्पष्ट है कि लोक गीत के स्वर योजना मे बिलावल ठाट के ही स्वरो का प्रयोग किया गया है । फागुन के आगमन के ही ग ग ग, ग रे गम, रेग स – का प्रयोग किया गया है जिससे फागुन के उल्लास तथा उन्माद का ही परिचय मिलता है। होली के हर्ष तथा मादकता के साथ नायिका की विरह वेदना के लिये ही निषाद तथा गधार का प्रयोग किया गया है जैसे नि स – रे, ग – रे स . . । इन स्वरो से न आये कन्हाई बडे ही भावपूर्ण ढग से तथा सुन्दरता के साथ व्यक्त किया गया। "आई गये फागुनवा" के स्वर से जहाँ एक ओर उमंग, उल्लास द्रवित होता दिखाई पडता है वहाँ दूसरी ओर " न आये कन्हाई में विरह वेदना उभर उठी है। इस वेदना को अभिव्यक्ति के लिये कन्हाई मे स्थरीकरण एव विश्राम का प्रयोग किया गया है। "ऐसे बे दरदी से कैसे निभाई" इस पंक्ति मे रे म म म म प पध पध म गरे इन स्वरो मे देश का आभास होता है। राग देश के स्वर तो करूणा के प्रतीक हैं। नायिका के उलाहरना के शब्दो मे उसकी अन्तरात्मा की वेदना ही झलकती है। इन भावो को स्वरो के ताने बाने मे कितनी सुन्दरता से पिरोह दिया गया है।

"फागुन मास अबीर उड़त हैं" की अभिव्यक्ति के लिये मध्यम तथा पचम पर विशेष बल दिया गया है । रे म म , प प प, म प प, मग रेग स से फागुन के आगमनहर्ष, उल्लास, तथा मादकता की अभिव्यक्ति हुई है। दूसरी

पंक्ति मे द्वारि ठाढि अचरा बिठाई" मे नायिका की विरह व्यक्त, आत्मसमर्पणता तथा नम्रता म – म "ग म के साथ नि स रे – स ग – रे स से भावो को जोडने के साथ-साथ स्थाई की प्रथम पक्ति से ही जोडने की सरल योजना है। मध्यम से वस्तुत. ममत्व तथा आत्मीयता के ही दर्शन होते है। मध्यम के अवरोहात्मक रूप केवल नम्रता का बोधक है। गधार से भाव की गभीरता स्पष्ट है। द्वार ठाढि हम अचरा बिछाई इस सरलतम उक्ति के लिये सरलतम अवरोहात्मक स्वर स्वरूप समीचीन ही है।

अन्त मे फाग की उल्लास, मादकता, उन्माद के लिये स्वाभाविक रूप से दादरा का प्रयोग किया गया है। छद एव गीत के अनुकूल ही दादरा ताल मे गीत को स्वर मे पिरो‚ दिया गया है। लोक गीत की यही विशेषता है।

डेढ ताल –

फाग तथा फगुवा के अन्तर्गत डेढताल का प्रमुख स्थान है। यह अवधी भाषा का सर्वप्रिय लोक गीत है। आयोध्या तथा उसके निकट के ग्रामीण क्षेत्रो मे इसका अत्यधिक प्रचलन है। प्रस्तुत है "डेढताल" का लोक गीत तथा भावाभिव्यक्ति मे प्रयुक्त स्वर लिपि :

फगुआ के खेलन हारे, अरे मोरे गढिगै नयनवा मझारे।
जुगल नृप वारे।
पति दुकूल अक पै राजत, निरखत कोटि काम छबि लाजत,
तिलक रेख अरूनारे ।
कमल–नयन दोउ अति ही लुभावन, छवि निरखत जियरा भा पावन,
उपमा नहिं जात उचारे ।
इत से राम सखा सग निकसे, अबीर गुलाल लगावत मुख से,
हाथ लिगे पिचकारे।
उत से निकसी जनक दुलारी, सग मा, भरि, सखिन कै भारी,
खेलत सब दसरथ द्वारे ।

<u>स्थाई</u> –

चाचर ताल

×	२	०	३
			– – स रे
			ऽ ऽ फ गु
आ ऽ के	ऽ खे ऽ ल न	हा ऽ रे	ऽ ऽ अ रे
– ग रे	ग म म म	ग रे स	रे नि – स
ऽ मो रे	ग ढि गे न	य न वा	म झा ऽ रे
म ग रे	स रे नि –	– – –	स –
जु ग ल	नृ प वा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	रे ऽ

चाचर ताल मे निबद्ध उपर्युक्त कडी के बाद द्वितीय पक्ति (प्रथम अतरा) कहरवा ताल मे निबद्ध है। कहरवा ताल द्रुत लय मे बजाने से प्रत्येक विभाग पर सम होगा।

<u>प्रथम अन्तरा</u> –

×	×	×	×
स म म म	म – म म	ग ग ग –	रे स रे रे
पी ऽ त दु	कू ऽ ल अ	ऽ म पै ऽ	रा ऽ ज त
स म म म	म – म म	ग ग ग –	रे स रे रे
नि र ख त	को ऽ टि का	ऽ म छ वि	ला ऽ ज त
म म म म	ग ग रे स	नि – – –	स – – –
ति ल क रे	ऽ ख अ रू	ना ऽ ऽ ऽ	रे ऽ ऽ ऽ
नि स रे ग			
क म ल न			

द्वितीय पक्ति को कहरवा ताल मे गा कर पुनः तृतीय पक्ति के चाचर ताल मे गाने की प्रथा है। तृतीय पक्ति की स्वर रचना को ताल बद्ध करने के लिये ही नि स रे ग तक तृतीय पंक्ति के शब्द और स्वर कहरवा

ताल मे ही हैं उसके बाद पक्ति (कड़ी) के शेष भाग पुन चाचर लय मे गेय है। यथा –

चाचर ताल

द्वितीय अन्तरा –

×	2	0	3
य न दो	उ अ ति ही	लु भा ऽ	व न छ वि
रे ग स	रे म म ग	– रे ग स	– स स
नि रे ख	त जि य रा	ऽ भा ऽ	पा ऽ व न

शैष पक्तियाँ द्वितीय अन्तरे की भाति ही गाई जावेगी।

उपर्युक्त स्वरलिपि मे प्रमुखतासे 4 स्वरो, स रे ग म का ही प्रयोग है। प्रथम पक्ति मे आरोहात्मक स्वरूप का ही प्रयोग किया गया है। द्वितीय पक्ति को जोड़ने के लिए अरे (स ग) से पुन. प्राकृतिक रूप से ग रे ग म ग रे स, इन स्वरो का प्रयोग कडी को सयुक्त करने के लिये किया गया है। तृतीय पक्ति मे म ग रे, स रे नी . स द्वितीय पक्ति के नी स के साथ मे बडी सुन्दरता के साथ जोडा गया है। इस प्रकार स्थाई की तीनों कडिया सरल, सहल तथा स्वाभाविक रूप से जुडी दिखाई पडती है। स्वर रचना मे इतनी सरलता तथा सामीप्य है कि सामूहिक गायको को गीत को दुहराने मे अथवा सहगान मे लेशमात्र भी कठिनता का अनुभव नही होता है। स्वरो का क्रमिक लगाव ही रचना के स्वरो की विशेषता है। सम्पूर्ण स्वर रचना मै नी स रे ग रे ग रे स स ग ग रे ग म म म ग रे स रे नि स यही स्वर किसी ना किसी रूप मे सम्पूर्ण गीत मे प्रयोग किये गये है। होली के शुभ पर्व पर ग्रामीण जनसमुदाय ढोलक, मजीरा तथा खजरी के साथ होली की धूम के साथ गीत और गीत की स्वर रचना से वातावरण में उमग तथा उल्लास की समा बांध देते है। स्वर– रचना प्रवृत्ति , प्रकृति, अवसर और वातावरण के अनुकूल है। यही इस लोकगीत की प्रमुख विशेषता है।

लोक गायक स्वर योजना के साथ विभिन्न लय तथा तालो मे एक ही गीत को निश्चित स्वरो मे बाधने मे सक्षम हुआ है। चाचर ताल की 3 और 4 मात्रा के विभाग स्वर – सन्निवेश मे किस प्रकार सजा कर रखे गये है, यह देखते ही बनता है। शास्त्रीय तालो से अनभिज्ञ होते हुए भी स्वर रचना पूर्ण रूप से चाचर ताल (14 मात्रा) मे निबद्ध है। चांचर ताल के पश्चात होली की धूम–धाम के अनुकूल गीत के छन्द को द्रुत कहरवा ताल में स्वरमय किया गया है। पुन. कहरवा के बाद दीपचन्दी मे स्वरो को बाधना लोक गायक की कुशलता का ही परिचालक है। — काव्य और सगीत मे अन्योन्य सबध है । लोक कवि सार्थक शब्दो की सहायता से तथा उपयुक्त वातावरण का सहारा लेकर अभीष्ट रूप अथवा रस की सृष्टि करता है, जिस प्रक्रिया को काव्यशास्त्र मे आलबन, उद्दीपन इत्यादि के विधान से स्पष्ट किया गया है किन्तु सगीतज्ञ के लिये न ही अर्थपूर्ण शब्दों का सहारा ही सुलभ रहता है और न वातावरण की सृष्टि का अवसर ही होता है , उसे केवल स्वरो की ध्वनि से, लय ओर ताल के नियोजन से, लयात्मकता से ही वातावरण, रस और वाछित अर्थ की भी अवतारणा करनी होती है। स्वरो तथा ध्वनि की उच्चारण प्रक्रिया, स्वरपात एव स्वरो के कल्पना मात्र से ही सगीतज्ञ कोमलतम भवनाओ के सूक्ष्मतम भेद प्रदिर्शत करता है। और श्रोताओं को रससिक्त करने मे सफल होता है ।

नवम् अध्याय

लय, ताल, रस और मनोविज्ञान .

मनोविज्ञान का अर्थ है मन का विज्ञान अर्थात मन के अन्दर जो प्रेरणा मिलती है उसे मन कहा जाता है । मनुष्य जो भी कार्य करता है उससे पहले उसे आन्तरिक प्रेरणा मिलती है । कोई भी कार्य करने से पूर्व हमारे मस्तिष्क मे विचार आता है कि यह सही है या गलत है । इसके पश्चात ही मन को कार्य करने की प्रेरणा मिलती है । दोनो की आन्तरिक सघर्ष की स्थिति होती है । उसी के अनुसार मनुष्य व्यवहार करता है । हर व्यक्ति की अलग-अलग बुद्धि और अलग-अलग मन होने के कारण वह अलग-अलग सोचने की क्रिया करते है । हर व्यक्ति बराबर नही होता इसीलिए सभी के व्यवहार भिन्न होते है । मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो मन की चेतना और अचेतन क्रियाओ का निरीक्षण करके अपरोक्ष अनुभूति द्वारा मनुष्य की वाह्य क्रियाओ का अध्ययन करता है । जिन शास्त्रो और कलाओ के साथ मनोविज्ञान का सम्बन्ध है उसमे से एक प्रमुख संगीत कला भी है । प्रत्येक मनुष्य के अपने मन मे कुछ न कुछ भाव अवश्य होते है । कुछ मे ये जन्म लेते है और कुछ मे व्यक्त होते है और अपने मन के इन भावो को व्यक्त करने मे मनुष्य क्रियात्मक कला का सहारा लेता है । क्रियात्मक कला तभी सफल होगी जब मनुष्य अपने भावनात्मक पहलू को अच्छे क्रियात्मक ढग से व्यक्त करने मे सफल होगा, जब उसको क्रियात्मक पहलू का पूर्ण ज्ञान होगा । भावनात्मक पहलू को क्रियात्मक रूप मे व्यक्त करने का माध्यम संगीत भी है ।

मनोविज्ञान मे मनुष्य जब भी अभिव्यक्ति के लिए कोई माध्यम ढूढ़ता है तो उसके अनुसार अपने अनुभवो और विचारो को व्यक्त करने के लिए "व्यवहार" शब्द का प्रयोग करता है । इसी प्रकार कला मे भी व्यक्ति अपनी भावनाओ व विचारो को किसी न किसी माध्यम द्वारा प्रकट करता है । कला मे मनोविज्ञान की तरह व्यवहार शब्द का प्रयोग न करके 'अभिव्यक्ति' शब्द का प्रयोग करते है । सौदर्य के तत्वो की प्राप्ति सौन्दर्य शास्त्रो से होती है और सौदर्य हमारे मन की अनुभूति है । सौदर्य से प्रभावित होने वाला हमारा मन ही

होता है । इसी सौदर्य का प्रभाव हमारे मन पर सगीत द्वारा पडता है । सगीत से शान्ति, आनन्द, सुख तथा सतोष की प्रेरणा मिलती है । सगीत का उद्‌गम स्थल मन है । मन सगीत के प्रस्फुटन का का आधार स्तम्भ है । सगीत मे मनोवैज्ञानिक कारक, कल्पना, स्मृति, ध्यान, रूचि और सीखना -- ये मन से सम्बन्धित मानसिक प्रक्रिया है ।

मन का सम्बन्ध सगीत मे लय तत्व से बहुत ही घनिष्ट है । धीमी या बिलम्बित लय दु:ख और निराशा की द्योतक होती है । द्रुत गति, वीरता या प्रेरणा की द्योतक है । बिलम्बित लय मे गहनता व व्यापकता है जो दु:ख व निराशा की द्योतक है । दु ख की बात, व्यक्ति अपनी धीमी आवाज मे कहते है तो खुशी की बात स्वय ही उच्च स्वर मे जल्दी-जल्दी फूट पड़ती है । बिलम्वित लय से द्रुत लय मे प्रेरक शक्ति ज्यादा प्रतीत होती है ।

प्रत्येक कलाकार की कला अपने आपमे एक अद्वितीय नमूना होती है जो कि मन का योगदान ही होता है । एक ही घराने के सीखे हुए शिष्य एक सा नही गाते बजाते । हर एक व्यक्ति के मन की प्रसन्नता, अवसाद अलग-अलग होते है । मन एक आन्तरिक शक्ति है । वह शरीर से भिन्न है किन्तु शरीर इससे प्रभावित होता है । शरीर व मन दोनो ही स्वतत्र तथा अलग शक्तियाँ हैं जिसका एक दूसरे पर प्रभाव होता रहता है ।

सगीत का मनुष्य के भावात्मक पहलू से जो सम्बन्ध है वही सगीत व मन के सम्बन्ध को व्यक्त करता है । मन सवेगो के द्वारा प्रभावित होता है। सवेग—भाव, आवेग, दैनिक क्रियाएँ, जीवन की विशेष घटनाएँ, दैनिक क्रियाकलाप आदि से प्रभावित होता है । इन भावो और आवेगो के द्वारा ही रसों की उत्पत्ति मानव हृदय मे होती है और भावो से ही उत्कृष्टतम कला की अभिव्यक्ति होती है । सगीत में लय, ताल और स्वर के द्वारा संवेग को दर्शाया जाता है तथा श्रोता के मन मे भी उसी प्रकार के सवेग उत्पन्न करने का प्रयास

तथा ध्वनि विशेष के माध्यम से की जाती है । क्रोध मे आवाज भारी व कर्कश हो जाती है और लय व ताल इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए तीव्रतम गति मे प्रदर्शित किये जाते है । प्रसन्नता मे आवाज मध्य लय मे डगमगाती हुई मधुर हो जाती है । सवेग,– लय, ताल और स्वर के द्वारा रस की अभिव्यक्ति का प्रमाण, स्वॉंस की गति के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है । शोक या अवसाद मे स्वॉंस की लय धीमी होती है । आश्चर्य या भय मे कुछ क्षण के लिए स्वॉंस की गति रूक सी जाती है तथा अत्यधिक हर्ष मे स्वॉंस की गति बढ जाती है । सवेग एक ऐसी प्रक्रिया है जो आती है, चली जाती है तथा कुछ समय के लिए व्यक्ति को क्षुब्ध करती है या प्रसन्न करती है। और भाव स्थायी होते है जैसेउसके नाम से ही स्पष्ट है,– स्थायीभाव । सवेग, अनुभव के कार्य की एक प्रणाली और क्रिया की एक विधि है । स्थायीभाव सवेगो के रूप को निश्चित करता है । इस प्रकार स्थायीभाव सवेगो का कारण है और सवेग स्थायीभाव के अनुयायी है । स्थायीभाव संवेगो का अनुगामी है क्योंकि सवेग से ही स्थायीभाव बनता है ।

मनुष्य में नैसर्गिक रूप से संवेगे होते है । ये सरल सवेग कहलाते हैं । जैसे–भय, आश्चर्य, क्रोध, शोक आदि । इसके अतिरिक्त कुछ सवेग क्रमशः विकसित होते है जैसे– ईर्ष्या, प्रेम और घृणा इत्यादि । जैसे जैसे व्यक्ति का सामाजिक परिस्थितियो मे विकास होता है और ये सवेग विभिन्न वस्तुओ की ओर प्रेरित होते है, उदाहरण के लिए किसी से कोई व्यक्ति डरता है और किसी से हर्षितहोता है । जब एक ही वस्तु या व्यक्ति से अनेक सवेग मिलकर एक स्थायी स्नायुविन्यास का रूप धारण कर लेते है तब उस व्यक्ति या वस्तु की ओर उन सवेगो के अनुरूप एक स्थायीभाव बन जाता है ।

सगीत मे भावो की अभिव्यक्ति को कला बताया गया है । दैनिक जीवन मे बहुत से भाव होते है जिन्हे सगीत द्वारा व्यक्त किया जाता है जैसे––भय, आश्चर्य, श्रृगार और करूण आदि । सगीत, लय, ताल, छन्द, रस और उनके प्रकार, विभिन्न शैलियाँ, लोकगीत और संगीत में रस उत्पन्न

करने वाले कारको का अध्ययन करते हुए यह तथ्य सामने आता है कि सगीतज्ञ और श्रोता तथा उनके मन भी सगीत के मुख्य कारक है क्योकि सगीत, सगीतज्ञ द्वारा प्रस्तुत किया जाता है और श्रोता द्वारा उसका रसास्वादन किया जाता है । सगीतज्ञ द्वारा किस प्रकार की मन.स्थिति मे प्रस्तुतिकरण किया जाता है?और श्रोता उसको किस मन स्थिति मे आस्वादन करता है? रसानुभूति होने मे, लय और ताल का रस से सम्बन्ध स्थापित होने मे इन तथ्यो का महत्वपूर्ण योगदान है । इसके प्रमाण मे प्राय. मच पर होने वाले सगीत के कार्यक्रम, और उसका आस्वादन करने वाले श्रोता है । अमुक दिन, अमुक कलाकार द्वारा राग विशेष, लय विशेष और ताल विशेष, शैली मे प्रस्तुतिकरण किया गया और श्रोता विशेष ने कार्यक्रम विशेष को किस प्रकार अनुभूत किया, जबकि वह श्रोता पहले कई बार कलाकार विशेष को सुन चुका था, वह कार्यक्रम से अधिक आनन्दित हुआ, कम रससिक्त हुआ या कार्यक्रम किसी रस विशेष मे प्रस्तुत हुआ और श्रोता को कोई अन्य रस की ही अनुभूति हुई क्योकि उसकी मन:स्थिति का साधारणीकरण कलाकार की मन स्थिति से नही हो सका । यही स्थिति कलाकार के सदर्भ मे भी कही जा सकती है । संगीतज्ञ अपने मनोगत भावो एव कल्पनाओ को स्वर, लय, ताल की सहायता से व्यक्त करता है।प्रत्येक ललित कला के समान सगीत कला के क्षेत्र मे भी कलाकार और समीक्षक को समान महत्व दिया जाता है क्योंकि एक के अभाव मे दूसरा महत्व खो बैठता है । कला की उन्नति मे जब तक कला के पारखी का सहयोग नही होगा तब तक कला परिपूर्ण नही हो सकती । कलाकार अपनी सतत साधना मे रत रहकर जिस माधुर्य व चमत्कार की सिद्धि करता है, उसे वह अपने तक सीमित नही रखता बल्कि अपने उस अलौकिक आनन्द को वितरण करना चाहता है । कलाकार के हृदय से आनन्द की असीम धारा लोगो को अपनी रसात्मकता का बोध कराने के लिए स्वतः ही उमड पडती है । कला के सृजन में जो सुख कलाकार को मिलता है वह साधारण प्रकार का होता है परन्तु रसिको के मुख से अपनी प्रस्तुति के बारे में उद्गार सुनने के बाद कलाकार को स्थायी सुख की प्राप्ति होती है । प्रत्येक

गायक या वादक यही चाहता है कि उसकी कला श्रोताओ को आनन्द की उस भूमि पर ले जाय जहा कलाकार स्वय पहुँच चुका है । अत यह बात स्पष्ट है कि कला का सृजन केवल कलाकार के लिए नही अपितु रसिको के लिए भी है । किसी देश मे कला की सच्ची उन्नति तभी होती है जब अच्छे कलाकारो के साथ-साथ रस लेने वाले अच्छे रसिक श्रोता भी वहाँ पैदा हो जाँय ।

सर्वसामान्य कलाकार की यही अपेक्षा रहती है कि समझदार श्रोताओ के सम्मुख अपनी कला प्रकट करे तभी प्रस्तुतिकरण ज्यादा प्रभावशाली होगा । इसके लिए सच्चा श्रोता ही कला के अलौकिक आनन्द का अधिकारी होता है । रागात्मक तत्व और सहृदय श्रोता किसी प्रकार की कला के रसास्वादन के योग्य तभी बनता है जबकि कला का विशाल भवन भावनाओ की आधारशिला पर आधारित हो । अत. भावनाशून्य श्रोता इस भवन के भीतर किसी प्रकार भी प्रवेश नही कर सकता । श्रोता जितना भावुक व सहृदय होगा उतना ही वह कलाकार रसास्वादन अधिक कर सकेगा । बुद्धि तत्व से कला का शरीर व रागात्मक तत्व से कला की आत्मा के दर्शन होते है । संवेदनशीलता, करूणा, प्रेम, सहानुभूति, त्याग – ये गुण जिस श्रोता मे नही होते उसे रसिक नही कहा जा सकता । कला के सारभौमिक सिद्धान्तो का ज्ञान प्राप्त किये बिना कोई व्यक्ति कला मर्मज्ञ या अच्छा श्रोता नही बन सकता । मन को एकाग्र करने के लिए अध्यात्म तत्व का ज्ञान भी श्रोता के लिए आवश्यक है । चचल चित्त वृत्तियो के निरोध करने के लिए स्थिर मन होना आवश्यक है । कलाकार की कला में कुछ देर तक धैर्य पूर्वक मन एकाग्र करके किया हुआ रसास्वादन, आनन्द प्रदान करता है । अच्छे श्रोता को राग द्वेष की भावना से मुक्त होना चाहिए । पूर्वाग्रह, दूषितता या पक्षपात की भावना से प्राय: कलाकार की कला पर परदा सा पड जाता है और रसास्वादन ठीक से नही हो पाता । शत्रु, मित्र भावना से परे जाकर कला का रस लेना ही सच्चे रसिक का कर्तव्य है । अतः विचारों मे शालीनता, चित्त की एकाग्रता, निष्पक्षता और हृदय मे तन्मयता आदि गुण अन्तःकरण की शुद्धि के बगैर नही आ सकते जो सुरसिकों का एक महत्वपूर्ण लक्षण है । "सभाचातुर्य" का गुण कलाकार के

साथ ही साथ रसिको मे भी आवश्यक है क्योंकि इसी गुण के कारण भी रसानुभूति अधिकतम सीमा तक अनुभव की जा सकती है ।

सगीत मे रसाभिव्यक्ति, वाद्यो के ठीक से स्वर मे मिले होने, स्वर स्थानो की दृष्टि से व रोग मे लगने वाले स्वरो की दृष्टि से, स्वर ठीक लग रहे है या नही, कठ ध्वनि का प्रयोग बहुत ही स्वाभाविकता के साथ करना, जिसमे मधुरता के साथ ओजस्विता की भी गूँज हो, वजन हो और प्रभाव चन्द्रकिरण की तरह सुखद् हो और इतना होते हुए भी आवाज मे व्यक्तित्व का प्रकाश जरूर आना चाहिए। स्वरों का लगाव केवल श्रवण मधुर नही बल्कि भाव मधुर होना चाहिए और इन बातो के साथ-साथ यह ध्यान देना चाहिए कि राग के नियमो का पालन किया गया है या नही । माधुर्य के साथ साधना से परिपुष्ट कठ भी रसाभिव्यक्ति में सक्षम होता है । रसानुभूति के लिये श्रोता की वृत्ति उदार, व्यापक व गुणग्राही होना चाहिए ।

सगीत मे स्वत. ही एक प्रकार की गति का आकर्षण होता है। यह स्वाभाविक गति की कल्पना श्रोता के मन मे भी अनायास पेदा हो सके इसलिए कलाकार का लय व ताल का पूरा अधिकार होना चाहिए । लय का और सगीत का सम्बन्ध मन को आनन्दित करने के लिए होना चाहिए। भावो का निर्माण स्वरो के द्वारा होता है। उनको समझने, सँवारने का काम लय करती है। लय का प्रभाव प्रत्यक्ष है। गति और बोलो के शब्दो का उचित उच्चारण और प्रयोग भी रसाभिव्यक्ति मे सहायक होता है। संगीत-रत्नाकर में गायक और श्रोता, उभय पक्ष की तीन श्रेणियाँ मानी गयी है - भावुक , रजक तथा रसिक ।[1]

काव्य के स्थायी - अन्तरा, स्वरो एव शब्दो के उच्चारण, काकु, लय, गमक आदि के यथाचित प्रयोग से कुशल कलाकार प्रस्तुत रचना के पख लगा कर समस्त श्रोताओ को आनन्द के वृन्दाबन मे ले जाकर खडा कर देते हैं । यही है काव्य, राग, लय, ताल और रस की अभिव्यक्ति की पराकाष्ठा।

---

1 सगीत रत्नाकर 3/ 19-22

रागो को समयानुकूल बजाने से ही उस राग के स्वरूप एव रस की अधिकतम् अभिव्यक्ति की जा सकती है । जिससे श्रोताओ के ऊपर भी इसका अधिकतम प्रभाव पडेगा । किसी भी कलाकार की कला का सफल प्रदर्शन तभी माना जाता है जब उसके संगीत प्रदर्शन के भाव के रस मे श्रोता भी डूब जाये ऐसा प्रभाव उत्पन्न होना बहुत कुछ श्रोताओ की मन स्थिति पर भी निर्भर करता है श्रोताओ की मनःस्थिति के अनुरूप, सगीत मे कलाकार अपने गान विद्या का प्रदर्शन करके, उसका अधिकतम प्रभाव डाल सकता है । गायक की प्रकृति के अनुरूप यदि श्रोता रहते हैं तब उसके गान का अच्छा प्रभाव पडता है । श्रोताओ एव गायक की मनःस्थिति बहुत कुछ वाह्य तथा आन्तरिक वातावरण पर निर्भर करती है ।

चित्त वृत्ति के तीन गुण(1)प्रसाद अर्थात, स्पष्टता, मानसिक तनाव से मुक्ति देने वाला गुण, समस्त कलाओ मे यह गुण अवश्य निहित रहता है । चाहे काव्य हो, चाहे चित्रकला और चाहे सगीत(2)ओज अर्थात तेज प्रभाव अथवा जीवन शक्ति(3)माधुर्य [6] जो कुछ है इन्ही तीनो स्थितियो के अन्तर्गत है। कलाकार के द्वारा प्रस्तुत रचना चाहे वह किसी भी राग, लय, ताल और रस की अभिव्यक्ति कर रही हो, प्रत्येक श्रोता पर एक सा प्रभाव नही डाल सकती । करूण रस से परिपूर्ण राग, लय और ताल का प्रस्तुतिकरण हमेशा दु ख ही होगा, ऐसा नही हो सकता, यह श्रृगार का वियोग पक्ष भी अभिव्यक्त कर सकता है ।

जिस भाव और रस की अभिव्यक्ति कलाकार करना चाहता है अपने प्रस्तुतीकरण मे, यह आवश्यक नही कि श्रोता उसी भाव या रस के रूप मे उसकी रचना को ग्रहण करे, क्योकि ग्राह्यता अत्यन्त निजी विषय है जो कि वातावरण, व्यक्तिगत परिस्थिति आदि पर निर्भर करती है । यही बात कलाकार पर भी लागू होती है कि कलाकार की मनःस्थिति उसकी व्यक्तिगत परिस्थिति, उसके आस-पास का वातावरण आदि कुल मिलाकर कैसी स्थिति है? जिसमें वह अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करता है । प्रत्येक कलाकार के प्रस्तुतिकरण का अन्दाज, शैली भिन्न होती है । राग भैरव, मध्यलय, तीन ताल में निवद्ध है, आवश्यक नही कि श्रोताओं पर बिल्कुल वही प्रभाव डाले जो पूर्व में किसी दूसरे कलाकार के प्रस्तुतिकरण

से पडा है । सयोग श्रृगार रस को व्यक्त करने वाली कोई ठुमरी कलाकार को प्रस्तुत करनी है उसके कार्यक्रम का निर्धारण पन्द्रह दिन पहले हो चुका हो और इसी बीच उसकी पत्नी का देहान्त हो जाता है चूँकि कार्यक्रम पूर्व निर्धारित है ऐसी स्थिति मे यदि वह कलाकार अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करेगा तो लाख कोशिशो के बावजूद श्रृगार के सयोग पक्ष की प्रस्तुति करने मे सफल नही हो सकेगा उसमे श्रृगार रस के वियोग पक्ष की झलक ही आयेगी । यही स्थिति श्रोता विशेष की भी हो सकती है । इसलिए स्वर विशेष केरस कानिर्धारण क्यो न हो गया हो, रागो का समय और प्रकृति के अनुसार रस का निर्धारण भी हो गया हो, लय और लयकारी विशेष, उसी रस को अभिव्यक्त करने वाली क्यो न हो, राग की प्रकृति और लय के अनुसार ताल का चयन भी कर लिया गया हो, किन्तु प्रत्येक कलाकार और प्रत्येक श्रोता के प्रस्तुतिकरण और उस प्रस्तुतिकरण की ग्राह्यता निश्चित रूप से अत्यन्त निजी और अलग-अलग रूपो मे होगी ।

उपसहार

प्रस्तुत शोध प्रबध "भारतीय सगीत मे लय और ताल का रस सिद्धान्त से सम्बन्ध" को मैने डा० गीता बनर्जी के योग्य एव कुशल निर्देशन मे तैयार किया है । इस शोध प्रबध को मैने उपसहार के अतिरिक्त नौ अध्यायो मे बाँटा है । लय, ताल का रस से सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिये मैने लगभग सभी दृष्टिकोणो और उदाहरणो के माध्यम का सहारा लिया है ।

प्रथम अध्याय मे "सगीत" क्या है ? इसका शाब्दिक अर्थ क्या है ? नाट्यशास्त्र में उल्लिखित सगीत के भेद–मार्ग और देशी सगीत का वर्णन किया गया है । मार्ग सगीत के अन्तर्गत कठोर शास्त्रीय नियमो के पालन की बात कही गयी है । जबकि देशी सगीत मे लोकरूचि को महत्व दिया गया है । सगीत के कुछ महत्वपूर्ण तत्वो जैसे ध्वनि नाद, श्रुति, स्वर, राग आदि का विस्तृत परिचय दिया है जो सगीत को गहराई से समझने मे सहायक है ।

द्वितीय अध्याय मे "लय" के विषय मे विस्तृत विवेचना के द्वारा लय की महत्ता का वर्णन किया गया है । लय की इकाई मात्रा है । नाट्यशास्त्र मे लय को सगीत का आधार बताया गया है सगीत-रत्नाकर, सगीत-समय-सार और सगीत-चूडामणि मे लय की परिभाषा, उसके प्रकार और उसकी महत्ता का वर्णन इस शोध प्रबध मे उद्धृत किया गया है । लय के आधार पर ही लयकारी की इमारत खड़ी की जाती है । सगीत मे चमत्कार पूर्ण प्रदर्शन और अद्भुत रस की अभिव्यक्ति लयकारी के माध्यम से ही सम्भव होती है । उसके उदाहरण स्वरूप विभिन्न लयकारियो के नोटेशन तथा विभिन्न लयकारी युक्त रचनायें जैसे:-चौपल्ली, पॉचपल्ली, कुवाड की परन आदि का उल्लेख भी किया गया है ।

तृतीय अध्याय "ताल" से सम्बन्धित है । सगीत मे काल को नापने का पैमाना ताल कहलाता है । वैदिक छन्द परम्परा के साथ ही मात्रा काल का जन्म हुआ और ताल की इकाई 'मात्रा', इसी आधारपर बनायी गयी । ताल को भी दो प्रकार का सगीतरत्नाकर मे उद्धृत किया गया है । नाट्यशास्त्र मे ताल को चतस्त्र और तिस्त्रभेद से दो प्रकार का बताया गया है । सगीतरत्नाकर मे चतस्त्र, तिस्त्र, [illegible] मिस्त्र और सकीर्ण पॉच प्रकार की तालो का उल्लेख है । वर्तमान ताले इन्ही तालो के आधार पर लोक रूचियो को ध्यान मे रखते हुए पुष्पित पल्लवित हुई है । ताल के दस प्राणो का उल्लेख किया गया है जो काफी हद तक वर्तमान ताल क्रिया मे भी प्रासगिक है जैसे काल, क्रिया, जाति कला, लय, यति, प्रस्तार आदि । वर्तमान तालो के ठेके और उनका राग, लय और रस के अनुसार प्रयोग का उल्लेख किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय मे "छन्द" की विवेचना की गयी है । छन्दो का आविर्भाव वेदो से हुआ है । नाट्यशास्त्र और छन्दशास्त्र मे भी उद्धृत छन्दो का वर्णन किया गया है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ताल का आधार छन्दो मे समाहित है । वैदिक, वर्णिक और मुक्तक छन्दो के प्रकार, लय, चलन, मात्रा आदि के आधार पर ताल मे व्याप्त होकर रस की अभिव्यक्ति करता है । कहरवा, दादरा रूपक, दीपचंदी, झपताल, धुमाली, गजल, लावनी अद्धा आदि तालो के ठेके और उनके विभन्न प्रकार की चलनो का उल्लेख मैंने इस शोध प्रबध में किया है । छन्दो का लोक सगीत मे भी अत्यन्त सुन्दर प्रयोग होता है और रसाभिव्यक्ति मे सहायक होता है । इसके प्रमाण स्वरूप कई उदाहरण जैसे कजरी, कहरा गीत, सावन, डेढताल जिनमे चाचर, कहरवा और चाचर छन्द प्रस्तुत किया गया है । सगीत मे छन्द, लय, ताल और रस का समन्वित प्रस्तुतिकरण निश्चय ही भावविभोर करने वाला सिद्ध हुआ है ।

पचम अध्याय मे "रस" विषयक सिद्धान्त को प्रस्तुत किया गया है क्योंकि सगीत रूपी शरीर की रस आत्मा है । नाट्यशास्त्र मे प्रतिपादित रस सिद्धान्त की अविरल धारा नाट्य साहित्य और सगीत सभी मे समान रूप से बहती है । उसकी ग्राह्यता भिन्न विधाओ से भिन्न भिन्न प्रकार से हुई है किन्तु मूल सिद्धान्त मे कोई परिवर्तन नही हुआ है । श्रोता मे उत्पन्न आत्म विश्रान्तिमयी आनन्द चेतना ही रस का मूल है । नाट्यशास्त्र मे प्रतिपादित रस के कारक भाव विभाव, अनुभाव पूर्ण रूप से सगीत मे रस निष्पत्ति के कारक के रूप मे लागू नही होते । सगीत रत्नाकर मे रस निष्पत्ति उच्चारण लय, काकु तथा विश्रान्ति के माध्यम से होने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है । नाट्यशास्त्र मे उल्लिखित आठ रस शान्त,श्रृगार, करूण, रौद्र, वीर,भयानक, वीभत्स और अद्भुत रसो का सगीत मे सम्पूर्ण रूप से व्याप्ति नही अनुभव की जा सकती । शास्त्रीय और उपशास्त्रीय सगीत मे मुख्य रूप से श्रृगार (सयोग, वियोग) करूण,वीर रस, शान्त रस, अद्भुत रस ही अनुभूत किया जा सकता है । लोक सगीत मे, नाट्यशास्त्र मे उल्लिखित सभी रसो का अनुभव-उनके काव्य, लय और ताल मे उपलब्ध होता है । स्वरो का रस से सम्बन्ध स्थापित करते हुये नाट्यशास्त्र मे रसनिष्पत्ति की परिकल्पना की गयी है किन्तु व्यवहारिक रूप से यह सम्भव नही है क्योंकि दो स्वरो से राग की उत्पत्ति नही हो सकती और उसके लिये कम से कम पॉच स्वरो का होना आवश्यक है । इसी प्रकार राग को भी निश्चित रस से आवद्ध करना सम्भव नहीं है क्योंकि एक ही राग मे ख्याल (विलम्बित, द्रुत) तराना, ठुमरी और धमार आदि सुनने को मिलते है इसके उदाहरण के रूप मे क्रमिक पुस्तकमाला चौथी पुस्तक मे राग जैजैवती मे उपलब्ध बदिशे है । इन बदिशो मे काव्य मे रचना शैली के अनुसार अन्तर होने के साथ ही साथ इसकी लय और ताल मे भी भिन्नता होना स्वाभाविक है और जब वदिश काव्य, लय और ताल भिन्न हो गये तो निश्चित रूप से उनका प्रस्तुतिकरण भी भिन्न प्रभावोत्पादक होगा और इस प्रकार रस निष्पत्ति भी भिन्न भिन्न होगी ।

षष्टम् अध्याय के अन्तर्गत "सगीत मे रस उत्पन्न करने वाले कारको का" वर्णन किया गया है जैसे–रागो की प्रकृति, राग ध्यान, रागमाला चित्र, काकु, राग का समय, राग का ऋतु के अनुसार गायन, स्थान तथा अवसर विशेष के वातावरण के अनुसार राग का प्रस्तुतिकरण और इन्ही के अनुसार लय और ताल तथा अनुकूल काव्य की रचना आदि सब मिलकर रसाभिव्यक्ति करने मे सफल होते है । सगीत रत्नाकर मे रस निष्पत्ति के लिये काकुओ का महत्वपूर्ण स्थान बताया गया है । काकु के अन्तर्गत स्वरो का या वाद्य की ध्वनि का ऊँच, नीच स्थान द्रुतविलम्बित लय, विराम आदि सगीत मे रसनिष्पत्ति करने मे सहायक होते है । वाद्यो की ध्वनि भेद और लयात्मक परिवर्तन, ताल की लय मे परिवर्तन आदि के द्वारा पृष्ठभूमि सगीत मे श्रोताओ तक रसात्मक सम्प्रेषण सफलता पूर्वक हो जाता है । वाद्यो की ध्वनियाँ कुछ विशेष अवसर से सम्बद्ध भावनाओ को जन्म देती है । कलाकार की विद्वता उसकी व्यक्तिगत क्षमता और श्रोता की ग्राह्यताशक्ति भी लय, ताल और रस सिद्धान्त से सम्बन्ध समझने और अनुभव करने मे सहायक होती है । कलाकार के कार्यक्रम प्रस्तुत करते समय कुछ अन्य कठिनाइयो के कारण रसाभिव्यक्ति सम्भव नही हो पाती जसे मच पर अधिक प्रकाश व्यवस्था, ध्वनि विस्तारक यत्र का ठीक न होना , वाद्य यत्रो का वाछित स्वरो से उतरना या चढना, सगतकार और कलाकर मे सही सामजस्य न होना, कलाकार की मानसिक और शारीरिक थकान और व्यक्तिगत कुठा आदि ।

सगीत की रचना का साहित्य या काव्य, यदि राग शैली के अनुरूप, लय और ताल के अनुरूप नही होगा तो भी रसाभिव्यक्ति सम्भव नही हो सकेगी । इसी प्रकार यदि शैली के अनुसार ताल की लय या ठेका का चयन नही होगा तो भी रसाभिव्यक्ति नही हो पायेगी ।

सप्तम् अध्याय मे सगीत की 'तीनो विधाओ' मे लय ताल और रस का सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिए गायन के अन्तर्गत विभिन्न गायनशैलियो, उनके काव्य, लय और ताल तथा उनके द्वारा रसाभिव्यक्ति का वर्णन उदाहरण सहित किया गया है । प्रबधगायकी के क्रियात्मक, लिपिवद्ध उदाहरण उपलब्ध न होने के कारण शास्त्र का ही वर्णन नाट्यशास्त्र के आधार पर किया गया है । इसी प्रकार ध्रुपद गायन मे डॉगुर वानी, नोहार वानी और खँडारवानी, गोबरहारीवानी के क्रियात्मक उदाहरण उपलब्ध न होने के कारण उनका भी शास्त्र पक्ष ही उजागर हो पाया है । वर्तमान समय मे जो ध्रुवपद गायन और उसका क्रियात्मक पक्ष उपलब्ध है उसका उदाहरण सहित वर्णन किया गया है । ख्याल, ठुमरी, टप्पा, धमार होरी, तराना, तिरवट, भजन, गीत आदि मे लय, ताल, काव्य और रस का उल्लेख स्पष्ट किया गया है । वादन मे तवले और पखावज की रचनाओ के उल्लेख द्वारा लय, ताल और रस का सम्बन्ध स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । पखावज के बोलो से युक्त रामकथा से सम्बन्धित कथानक, काव्य के आधार पर बोलों की रचना उद्धृत है जो कि कथानक के अनुसार लय और ताल मे निबद्ध होकर रसाभिव्यक्ति करती. है । इसी प्रकार गणेशपरन, शिव परन, दुर्गापरन आदि भक्तिभावना से ओत प्रोत रचनाओ का उदाहरण है। लय और ताल के प्रदर्शन नृत्य के द्वारा प्रस्तुत होकर . लय , ताल और रस का सम्बन्ध पूर्ण रूप से स्पष्ट करते है । उदाहरण के लिए चौसठ "धा" की कमाली चक्करदार परन, कृष्णलास्य, कवित्त छन्द, यतियो का प्रदर्शन, रासपरन, होलीपरन, वीररसपरन आदि मे नृत्य की भाव भंगिमाओं और पद सचालन के द्वारा अद्भुत रस की अभिव्यक्ति होती है । तवले के वर्णो से युक्त रचनाये, उसके ताल के ठेके, पेशकारा, कायदा, टुकड़े आदि बोलो की योजना और लयवैचित्र्य के कारण शान्तरस, श्रृगार रस, वीर रस और अद्भुत रस की अभिव्यक्ति करती है । इनका उदाहरण सहित विश्लेषण इस अध्याय मे किया गया है ।

अष्टम अध्याय मे "लोक सगीत" शब्द की उत्पत्ति का उल्लेख करते हुये उसका अर्थ स्पष्ट किया गया है । लोक-सगीत के विषय मे भरतमुनि का मत व्यक्त किया गया है । लोक सगीत की विषय वस्तु सामान्य जनता की भाषा, बोली, परम्परा , रीति रिवाज, और सहज भावनाओ का वर्णन करते हुये सगीत पक्ष का विश्लेषण किया गया है जनमानस के भावोद्वेग के समय जो स्वर नि सृत होते है वे ही लोक सगीत की धुनो का आधार बनते हैं । इन स्वरावलियो की आश्चर्यजनक बात यह दिखाई पडती है कि वे भावानुकूल और प्रसगानुकूल होती है। साथ ही उनकी लय और तालें भी प्रसगानुकूल होती है। तालो की दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि भिन्न भावो के अनुकूल लय गति का विविध विनियोग लोक सगीत मे सहज रूप से हुआ है। काम करने के अवसर के गीत, सोडश सस्कारो के गीत ऋतुओ के गीत, पर्वो और त्योहारो के गीत, पारिवारिक सम्बन्धो मे हास परिहास, व्यग आदि के गीत रसो को अभिव्यक्त करने मे सहायक है । लोक गीतो मे श्रृगार का वियोग पक्ष , वीर रस , रौद्र रस, हास्य रस , भक्ति रस , वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति के लिये कथानक दृष्टान्तो का उल्लेख किया गया है। सोहर, जनेऊ गीत, मगल गीत , विवाह गीत, वर्षा ऋतु , कजली, सावन, धमार, फाग राग , डेढताल आदि लोकगीतो को उदाहरण देकर उक्त रचनाओ मे लय, ताल और रस का विश्लेषण, विषय वस्तु को अधिक स्पष्ट करने के लिये किया गया है ।

नवम् अध्याय मे लय, ताल और रस के सम्बन्ध को "मनोविज्ञान" की दृष्टि से अध्ययन किया गया है । जिसमे मनोविज्ञान क्या है ? श्रोता और कलाकार के बीच मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध के परिपेक्ष्य मे लय, ताल और रस का सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिये मन , भाव, सवेद का अध्ययन किया गया है । सगीत-रत्नाकर मे श्रोता और कलाकार की तीन श्रेणियो का उल्लेख भावुक, रजक तथा रसिक के रूप मे, इसी सदर्भ मे किया गया है । रागों के समयानुकूल गाने बजाने मे श्रोता और कलाकार की

मन स्थिति का, प्रदर्शन शक्ति और ग्राहयता शक्ति से गहरा सम्बन्ध है प्रात की बेला मे कलाकार और श्रोता की मन· स्थिति, सधिकाल मे दोनो की मन स्थिति साय और रात्रि काल मे दोनो की मनः स्थिति मे और उस मन. स्थिति के अनुरूप राग, लय और ताल मिलकर निश्चित रूप से अधिकतम रसाभिव्यक्ति करने मे सफल होगे । यह भी आवश्यक नही कि एक ही कलाकार के द्वारा प्रस्तुत एक ही रचना हर बार प्रस्तुत होने पर एक सा ही आनन्द प्रदान करेगी क्योंकि प्रत्येक श्रोता और कलाकार की मन. स्थिति उसकी व्यक्तिगत परिस्थिति, स्थान, वातावरण आदि मे कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य होगा और कुल मिलाकर लय, ताल और रस की अनुभूति मे कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य आयेगा। कई बार तो परिवर्तन बिल्कुल विपरीत भी हो सकता है । जैसे यदि कलाकार, काव्य, लय और ताल के अनुसार सयोग श्रृगार रस की अभिव्यक्ति करना चाहता है किन्तु कुछ ही समय पूर्व उसकी पत्नी का देहान्त हुआ है कलाकार वास्तव मे करूण रस की ही अभिव्यक्ति कर सकेगा उस कार्यक्रम में और श्रोता भी सयोग श्रृगार रस की अनुभूति नही कर सकेगा।

उपरोक्त सभी अध्यायो मे मैने यह भरपूर प्रयास किया है कि "भारतीय सगीत मे लय और ताल का रस सिद्धान्त से सम्बन्ध" पूर्ण रूप से स्पष्ट कर सकूँ । इसके लिये विद्वान गुणी जनो से वार्तालाप करके, उस वार्तालाप के सार का स्वत. अनुशीलन करके अपनी विषय सामग्री के अनुसार सगीत के क्रियात्मक पक्ष को गहराई से अनुभव करने के लिये कलाकारो के कार्यक्रमो को सुनकर, उपयुक्त रिकार्डो को खोजकर उसको सुनकर , समझकर उनका विश्लेषण करके अनुभूत तथ्यो को लिखा गया है ।

आशा है , मेरे इस शोध प्रबध से सगीत जगत के जिज्ञासुओ को विशिष्ट और विस्तृत ज्ञान प्राप्त हो सकेगा ।

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1	अवधी लोकगीत	-	डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय
2	अवधी लोकगीत : समीक्षात्मक अध्ययन	-	डॉ० विद्याविन्दु सिंह
3	अवधी और उसका साहित्य	-	डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित
4	अवधी लोकगीत और परम्परा	-	इन्दु प्रकाश पाण्डेय
5	अवधी का लोकसाहित्य	-	सरोजनी रोहतगी
6	अष्टाध्याय	-	पाणिनि
7	अभिज्ञान शाकुन्तल	-	द्वितीय अंक - डॉ० कपिल देव द्विवेदी आचार्य
8	उर्दू साहित्य का इतिहास	-	डॉ० रामबाबू सक्सेना
9	ऊँची अटरिया रंगभरी (लोक संग्रह)	-	राधावल्लभ चतुर्वेदी
10	एक सांस्कृतिक अध्ययन	-	हर्षचरित
11	क्रमिक पुस्तक मलिका	-	भाग - एक, श्री वि०ना० भातखंडे
12	क्रमिक पुस्तक मलिका	-	भाग - दो, श्री वि०ना० भातखंडे
13	क्रमिक पुस्तक मलिका	-	भाग - तीन, श्री वि०ना०भातखंडे
14	क्रमिक पुस्तक मलिका	-	भाग - चार, श्री वि०ना०भातखंडे
15	क्रमिक पुस्तक मलिका	-	भाग - पाँच, श्री वि०ना० भातखंडे
16	क्रमिक पुस्तक मलिका	-	भाग - छः, श्री वि०ना० भातखंडे
17	कथकलि नृत्यकला	-	गायनाचार्य अविनाश चन्द्र पाण्डेय
18	काव्य शास्त्र	-	डॉ० भगीरथ मिश्र

19 कानड़ा के प्रकार - जयसुख लाल त्रि0 शाह

20 कुमार सम्भव - कालिदास

21 गढ़वाली लोकगीतः एक सांस्कृतिक अध्ययन - डॉ0 गोविन्द चातक

22 ताल मार्तण्ड - पं0 सत्यनारायण वशिष्ठ

23 ताल परिचय - भाग - एक, श्री गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव

23 ताल परिचय - भाग - दो, श्री गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव

24 नारदीय शिक्षा - नारदमुनि

25 निबन्ध संगीत - लक्ष्मी नारायण गर्ग

26 नाट्यशास्त्र - भरत

27 प्रणव भारती - पं0 ओंकारनाथ ठाकुर

28 बुन्देली का फाग साहित्य - श्याम सुन्दर बादल

29 बुन्देल खण्ड की संस्कृति और साहित्य - रामचरण ह्यारण मित्र

30 ब्रजलोक साहित्य - डॉ0 सत्येन्द्र

31 भारतीय समाज और संस्कृति - कैलाश नाथ शर्मा

32 भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन - डॉ0 गोविन्द चातक

33 भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन - डॉ0 अरुण कुमार सेन

34 भारत के लोकनृत्य - लक्ष्मी नारायण गर्ग

35 भारतीय संगीत का इतिहास - भगवत शरण शर्मा

36 भारतीय संगीत वाद्य - डॉ0 लालमणि मिश्र

37 भारतीय काव्य शास्त्र - डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय

38 भोजपुरी लोकगाथा - सत्यव्रत सिन्हा

39 राग परिचय, भाग - एक - हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव

40 राग परिचय, भाग - दो - हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव

41 राग परिचय, भाग - तीन - हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव

42 राग परिचय, भाग - चार - हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव

43 रसमीमांसा - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

44 रीतिकाव्य की भूमिका - डॉ० नगेन्द्र

45 लोकायन की भूमिका - देवराज उपाध्याय

46 लो[illegible] की [illegible]जक व्यवस्था - श्री कृष्णदास

47 लोक साहित्य - जगदम्बा प्रसाद पाण्डेय

48 लोक साहित्य: समीक्षा - डॉ० कृष्णदेव शर्मा

49 वैदिक शिक्षा और वैतिक शिक्षा - महात्मा गांधी

50 विवाह [illegible] विधि - ठाकुर प्रसाद मणि वैद्य

51 वाड्.मय विमर्श - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

52 हिन्दू संस्कार - डॉ० राजबली पाण्डेय

53 हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति - प्रथम भाग - वि० ना० भातखंडे

54 हिन्दुस्तानी शास्त्र - भगवत शरण शर्मा

55 [illegible] सारोद्धार - गायकवाड़ सीरीज

56 संगीत - पारिजात - अहोबल

57 संगीत सार - गागर

58 संस्कृति और सभ्यता - नारायण दत्त श्रीमाली

59 संगीत शास्त्र - के० वासुदेव शास्त्री

60 रस, छन्द, अलंकार — — प्रो. [illegible] प्रताप ओझा

61 संगीत चिन्तामणि - प्रथम खंड - आचार्य बृहस्पति

62 संगीत चिन्तामणि - द्वितीय खंड - आचार्य बृहस्पति

63 संगीत रत्नाकर - शारंगदेव

64 संगीतशास्त्र प्रवीण - पंडित जगदीश नारायण पा[illegible]

65 सिन्धु सभ्यता - सतीश चन्द्र काला

66 सिद्धान्त कौमुदी - वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

67 समाज शास्त्र के मूल तत्व - सत्यव्रत विद्यालंकार

68 साहित्य लोचन - डॉ० श्याम सुन्दर दास

69 The Music & Musical Instruments of Southern and the Deccan - C.R. Day

70 Natya Sastra Sangraha - Vol. 1, K. Vasudeva S

71 Natya Sastra Sangraha - Vol. 2, K. Vasudeva S

72 Pre Historic Civilisation of the Indus Valley - Kashi Nath Dixit

73 Musical Instruments - B.C. Deva

74 Music of India - Focks Strangvege

75 कत्थक नृत्य — पुरु दधीची

76 अभिनव गीतांजलि भाग-1,2,3 — पं. रामाश्रय झा

77 ठुमरी — लीला करवाल

78 संगीतसमय सार — पार्श्व देव

पत्रिका

1. काव्य संगीत अंक - प्रकाशक, प्रभूलाल गर्ग
2. कल्याण अंग - लक्ष्मीनारायण गर्ग
3. काफी अंग - लक्ष्मी नारायण गर्ग
4. खमाज अंग - लक्ष्मी नारायण गर्ग
5. ताल अंक - संपादक प्रभूलाल गर्ग
6. भैरव अंग - लक्ष्मी नारायण गर्ग
7. भारत के लोकनृत्य - लक्ष्मी नारायण गर्ग
8. संगीत महिला अंक - लक्ष्मी नारायण गर्ग
9. संगीत कला विहार - लक्ष्मी नारायण गर्ग
10. संगीत शिक्षा अंक - लक्ष्मी नारायण गर्ग
11. संगीत ताल अंक - प्रकाशक, प्रभूलाल गर्ग
12. ध्रुपद धमार अंक - संगीत कार्यालय, हाथरस
13. लोक संगीत अंक - संगीत कार्यालय, हाथरस
14. तराना अंक - संगीत कार्यालय, हाथरस